

॥ श्रीः ॥

❀ इन्द्रविजयः ❀

❀ भारतवर्षीयाद्यर्थोपाख्यानम् ❀

समीक्षाचक्रवर्ति, विद्यावाचस्पति, महामहोपदेशक विद्वद्भर
स्व० पण्डित श्रीमधुसूदनशर्म्ममैथिल विरचितः ।

सोऽयम्

तदात्मजेन पण्डित श्रीप्रद्युम्नशर्म्मणा संपादितः ।

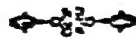
श्रीमान् धर्मरत्नक, न्यायपरायण, वीराग्रगण्य, रघुकुलभूषण, नरुवंशावतंस,
भारतधर्मसुधाकर, राजराजेश्वर, अलवरेन्द्र — महाराजाधिराज
लैफ्टिनेन्ट कर्नल सर

सवाई श्री १०८ श्री तेजसिंहजी वहादुर

के० सी० एस० आई

सहाय्येन

मुद्रापयित्व प्रकाशितः ।



द्वितीयावृत्तिः ५०० }

वि० सं० २००९

{ मूल्यम् २

सर्वेऽधिकारा. सन्पादकायीनाः

* निवेदन *



इस इन्द्रविजय का प्रथम संस्करण पूज्य पिताजी के समक्ष ही सन् १९३० ई० में लखनऊ के राजा फाइन आर्ट प्रेस से पण्डित श्री आद्यादत्त जी ठाकुर एम-ए के निरोक्षण में प्रकाशित हुआ था। यह अभूतपूर्व ऐतिहासिक ग्रन्थ शिक्षित समाज को बहुत उपयोगी प्रतीत हुआ जिसके फलस्वरूप इसकी मांगें अधिक आने लगीं और इसका क्रमशः बड़ा प्रचार हुआ यहाँ तक कि यह संस्कृत कालेज के पाठ्य पुस्तकों में अध्ययनार्थ रखा गया जो यथावत् चल रहा है।

पूज्य पिताजी ने इस अलौकिक ग्रन्थ के मुद्रित होने के अनन्तर इसके कुछ मन्त्रों के अर्थ लिखकर उसका पूर्णरूपेण स्पष्टीकरण कर दिया और कुछ स्थानों में इसके विषय को भी थोड़ा बढ़ाया तथा हिरण्यगर्भ नामक एक मानचित्र भी बनाया जो सब कुछ इस द्वितीयावृत्ति में दिये गये हैं।

यह हम पूर्व में कह आये हैं कि इस ग्रन्थ का उपयोगी सिद्ध होने के कारण बड़ा प्रसार हुआ और मांगें भी दिन प्रतिदिन बढ़ती चली गईं जिससे इस ग्रन्थ की प्रथमावृत्ति समाप्त होगई और द्वितीयावृत्ति (2nd addition) के लिये हमें शीघ्र ने शीघ्र प्रयत्न-शील होना पड़ा।

यद्यपि इस ग्रन्थ की भाषा संस्कृत है किन्तु वह पाठकों के लिये तब के लिये अत्यन्त सरल लिखने का प्रयास किया गया है। इस ग्रन्थ का मार्गदर्शन करने विशेष उपयोगी बनाने के लिये श्रीमान् १०८ श्री अल्लवरैन्द्र नारायण ने हिन्दी भाषा में अनुवाद-सहित प्रकाशित करने की मुझे आज्ञा प्रदान की थी किन्तु कुछ दिनों में मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं रहना है, इस कारण मैं ऐसा न कर सका और न तज्योग्य किसी विद्वान् या समाजसेवक हुआ जिससे यह कार्य हो सकता। पं० श्री आद्यादत्तजी ठाकुर एम-ए का स्वास्थ्य अनुकूल नहीं है अतः वे भी प्रयत्नरहित हैं। महानन्द गणेश्वर पं० श्री गिरिधरशर्मा चतुर्वेदीजी इस कार्य को भरोसे प्रारम्भ कर रहने के लिये हैं परन्तु वे वार्धक्यता के कारण कुछ स्थगित से रहते हैं तथा कार्य प्राकृतिक रूप से अति न्यूनता रहती है फिर भी उनसे समय-समय पर जितना उचित प्रयत्न हो सकेगा

नुसार शनैः इस कार्य को करना स्वीकार किया परन्तु उनसे यह कार्य निकट भविष्य में
 ॥ असम्भव था । वर्ष दो वर्ष या कितना समय लग जाता इसका कोई निश्चय नहीं । अतः
 : प्रकाशित करना परमावश्यक होने के कारण अब इसकी हिन्दी भाषानुवाद का इस
 ॥ प्रयत्न न कर "भूमिका" उन्हें म० म० जी द्वारा हिन्दी भाषा
 उद्धृत करा दिया है जिससे हिन्दी जानने वालों को इस ग्रन्थ के विषय
 ॥ इसकी उपयोगिता का भली प्रकार दिग्दर्शन हो सके ।

हमारे इस ग्रन्थ प्रकाशन कार्य के सम्पादन आदि कार्यों में जितनी सहायता म० म०
 श्रीगिरिवरशर्माजी से मिल सकती थी उनका पूज्य पिताजी के अन्य किसी भी विद्यार्थियों
 होना सम्भव नहीं था क्योंकि अन्य किसी को हमारे इस कार्य में विशेष रुचि नहीं
 , एक स्वामी सुरजनशसजी एम० ए० कुछ समय से बड़ी अभिरुचि रखते हैं और वह
 अपने सुविधानुसार मनोयोग देते हैं । म० म० जी पूज्य पिताजी के ग्रन्थों के विषयों
 और शैलियों से इतने अभिज्ञ हैं जितना शायद ही कोई हो और उनकी सहानुभूति में भी
 भी नहीं । वह मेरे इस कार्य से बड़े सन्तुष्ट रहते हैं साथ ही कैसे यह कार्य सुचारु रूप से
 तीव्र से तीव्र सम्पन्न होजाय इसकी भी उन्हें बड़ी इच्छा रहती है परन्तु इतना होने पर
 भी मुझे इस बात का खेद है कि वह अपने हार्दिक सहानुभूति को कार्यरूप में परिणत नहीं
 कर पाते । अभी तक उनकी इच्छा कुछ समय इस कार्य को करने की हो ही रही है और मुझे भी
 पूर्ण आशा बनी हुई है, परन्तु इसके लिये हम अब तक सफल मनोरथ होंगे यह भविष्य
 ही जाने ।

यद्यपि हम श्रीमान् अलवरेंद्र के आदेशानुसार इस ग्रन्थ का अनुवाद नहीं करा सके
 किन्तु विद्यानुरागी श्रीमान् महाराज ने आवश्यक समझ कर इस ग्रन्थ को प्रकाशित करा देने
 की उदारता प्रदान की है । श्रीमान् इससे पूर्व भी १-यज्ञसंस्कृति और २-छन्दोभ्यस्ता
 ये दो ग्रन्थ प्रकाशित कराकर बड़ी सहायता कर चुके हैं । इनके अतिरिक्त जब जब हम इस
 महान् कार्य में हतोत्साह होने लगते हैं, श्रीमान् अलवरेंद्र महाराज आर्थिक सहायता
 देकर हमारे उत्साह को पुनर्जागृत करने की महान् कृपा करते हैं जिससे हमारा यह
 कार्य स्थगित होने नहीं पाता ।

श्रीमान् के उपरोक्त सहानुभूति के लिए हम बड़े कृतज्ञ हैं और भगवान् से निरन्तर
 शुभकामना सहित यही प्रार्थना करते रहते हैं कि श्रीमान् को सपरिवार सर्वदा सुखी रखें ।

जयपुर ।

ता० ७-१-४३ }

प्रद्युम्नशर्मा ओझा ।

॥ श्री ॥

* सूचिका *

गुरुप्रवर श्रीश्री विद्यावाचस्पति पं० मधुमूदनजी ओझा ने जिन वेद-विषयक शताधिक ग्रन्थों की रचना की है, वे ग्रन्थ चार भागों में विभक्त हैं—१-यज्ञ-२-विज्ञान-३-इतिहास ४-प्रकीर्णक। इनमें विज्ञान-विषयक ग्रन्थ सबसे अधिक हैं। इसलिये उसे प्रथम श्रेणी में समझना चाहिये। प्रकीर्णक विषय में वेदाङ्ग धर्मशास्त्र आदि अनेक विषयों का समावेश है। इनमें इतिहास-रचना दो प्रकार की है, एक स्वतन्त्र, दूसरी विज्ञान के प्रसङ्ग से। विज्ञान-ग्रन्थों में जो इतिहास-ग्रन्थ हैं, उनका शीर्षक 'विज्ञानेतिवृत्तवाद' नाम से उनमें निश्चित किया है। विज्ञानेतिवृत्तवाद में पाँच उपाख्यान हैं, उनमें तीसरा यह 'इन्द्र-विजय' है। इसका दूसरा नाम 'भारतवर्षीयायौपाख्यान' भी है। यह ग्रन्थ ऐतिहासिकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है और इसका प्रसार भी देश में बहुत हुआ है। श्रीमान् विद्यावाचस्पतिजी के जीवनकाल में ही यह ग्रन्थ मुद्रित हो गया था और उनमें द्वितीय संस्करण के लिये इसमें कुछ परिवर्धन भी कर दिये थे। वह प्रथमावृत्ति समाप्त हो चुकी, अब यह द्वितीयावृत्ति प्रकाशित हो रही है। गुरु ने संस्कृत भाषा से अनभिज्ञ विद्याप्रेमी बान्धवों के अनुरोध से इस ग्रन्थ के विषयों का ज्ञान संक्षिप्त परिचय हिन्दी भाषा में दे दिया जाता है।

ग्रन्थ के आरम्भ में तीन प्रकार की त्रिलोकी का निरूपण है, स्थल, जल और भौम। भौम त्रिलोकी में भी पृथ्वी, अन्तरिक्ष और दिव्य नाम के तीन भाग हैं। अर्धरात्रि से हिमालय तक पृथ्वी लोक है। अर्द्धाई पहाड़ से उत्तर समुद्र तक दिव्य लोक है। अर्द्धाई पहाड़ के बीच का भाग अन्तरिक्ष है। इनके भी अधिपति अग्नि, वायु और इन्द्र नाम से प्रसिद्ध थे। इस त्रिलोकी को आजकल 'एशिया' कहा जाता है। इनमें भी अनेक जे दो दो विभाग हैं। वर्तमान में इन देशों को क्या क्या कहते हैं इसका विवरण स्पष्ट दिया गया है और वैज्ञानिक युक्ति से यह सिद्ध किया है कि उत्तर समुद्र प्रान्त परने उन प्रान्तों का विवरण नहीं था। वहाँ भी निवास-देश थे। सब भी जो उन प्रान्तों के पुराने नाम मिलते हैं उनका विवरण भी यहाँ दिया गया है।

भौम और दिव्य दोनों त्रिलोकियों का प्रसङ्ग श्रुति-स्मृतियों में मिलता है । उनका विभाग समझने की युक्ति संक्षेप में बताई गई है और सप्रमाण यह स्पष्ट किया गया है कि स्वर्ग दो प्रकार का है, एक सूर्यमण्डल रूप चुलोक स्वर्ग कहलाता है और दूसरा यह भौम स्वर्ग, इन दोनों में देवता भी दो प्रकार के हैं । सूर्य मण्डल प्राणरूप देवता है जो कि अमर वा नित्य हैं, किन्तु भू-स्वर्ग के निवासी देवता मनुष्यविशेष ही थे । हमारी अपेक्षा उनकी आयु अधिक होती थी, यह दूसरी बात है (ग्रन्थ के अन्त में दिखाया गया है कि यह भौम स्वर्ग संस्था वा भौम देव संस्था महाभारत युद्ध के अनन्तर नष्ट हो चुकी है । अब वह देश अनार्य्य जातियों का देश बन गया है ।) आगे भारतवर्ष के चार नाम पुराण प्रसिद्ध बताये गये हैं और भारत नाम पड़ने के चार कारण विस्तार से निरूपित हैं । उनमें मन्त्रप्रमाणों से एक विशेष खोज है कि भरत नाम का अग्नि स्वर्गीय इन्द्र के द्वारा दूत रूप से नियुक्त होकर वहाँ रहता था । उसी के कारण इसका नाम भारत पड़ा । आगे कहा गया है कि हिन्दुस्तान शब्द से जो देश आज कहा जाता है वह भारत का एक छोटा अंश है । हिन्दुस्तान नाम का कारण ही जिन्दावस्था के प्रमाण से निरूपित है ।

आगे भारतवर्ष की सीमा बताते हुए पूर्व में फार्मोसा और पश्चिम में लाल-समुद्र (Red sea) को भारतवर्ष की सीमा बताया गया है । इसी सीमाप्रसङ्ग के चौदह प्रमाण यहाँ विस्तार से उपस्थित किये हैं जो विशेष मनन के योग्य हैं । इसी प्रसङ्ग में इन्द्र और वरुण के महत्त्व के सम्बन्ध में ब्राह्मणों का परस्पर विवाद विस्तार से श्रुतियों में दिखाते हुए भारतवर्ष के सिन्धुस्थान (हिन्दुस्तान) और पारस्थान (फारस) नाम के दो विभाग होजाने का विस्तृत वर्णन किया है । इसमें वैज्ञानिक इन्द्र, वरुण और मनुष्य शरणधारी इन्द्र, वरुण दोनों का बड़ा विस्तृत विवेचन है और भिन्न भिन्न ऋषियों के सूक्तों का विस्पष्ट समग्र है तथा भारतवर्ष के उपद्वीप जो पुराणों में बताये गये हैं, उनका भौगोलिक पता भी बड़ी खोज के साथ दिया गया है । यवन शब्द प्राचीन काल में यूनानियों के लिये प्रयुक्त होता था । इसका भी विस्पष्ट विवेचन है । त्रिपुरासुर की तीनों पुरियों का ऐतिहासिक रूप में विवरण दिया गया है । यह प्रकरण बहुत ही विस्तृत और बहुत ही मननीय है ।

इसके आगे जम्बू द्वीप के अठ्ठ उपद्वीपों का भौगोलिक पता दिया गया है । इसी प्रसङ्ग में, आजकल लोग (Ceylon) सीलोन को लंका कहते हैं । इस अन्तिम किंवदन्ति का बारह प्रमाणों से विस्तृत खण्डन किया गया है और इसके बहुरित दक्षिण लंका द्वीपानामों का जो छोटा सा भूखण्ड अवशिष्ट है, वही मुख्य तर्क था । यह सिद्धान्त स्थिर किया है ।

आगे भारत की भाषा लिपि, सभ्यता और धर्म का वित्तार से निरूपण है। 'प्राचीन (वैदिक) काल में लिपि नहीं थी, इस पाश्चात्यों के मत का आठ प्रमाणों से खंडन है।

धर्म के प्रसङ्ग में वर्णाश्रम धर्म का विवेचन बहुत ही रोचक और मननीय है। ज्ञाने भारतवर्षीय विद्याओं का प्रसङ्ग उठाकर बहुत विस्तृत विवेचन लिखा है और कई प्रकार के विद्याओं के ६४, ६४ विभाग सप्रमाण निरूपित हैं। इस प्रकरण के अध्ययन से किसी भी भारतीय का आत्मगौरव जागृत हो सकता है और किस किस प्रकार के विद्या और ज्ञानों के आविष्कार भारत में थे, यह देख सुनकर विद्वानों को भी आश्चर्य-चकित होना पड़ता है।

वर्णभेद से विद्याओं का भेद भी इस प्रसंग में विशिष्ट रूप से निरूपित है। इस प्रसङ्ग को प्रत्येक भारतवासी को अपने आत्माभिमान के लिए और देश की भविष्योन्नति के लिये मननपूर्वक पढ़ना चाहिये। यहाँ भारत-परिचय नामके ग्रन्थ का पहला प्रकरण समाप्त होता है।

इसके आगे द्वितीय प्रकरण आर्यदासीय नाम का है। पश्चात्त्य विद्वानों ने जो यह कल्पना बद्धमूल कर रखी है कि भारतीय आर्य वाहर से आकर भारत में रहे हैं और यहाँ के प्राचीनवासी अनार्यों को युद्धों में परास्त कर उनमें अपना प्रभुत्व यहाँ जमाया है, इस कल्पना का इस प्रकरण में समूल उन्मूलन किया गया है। आरम्भ में हिन्दुओं को सामान्य संस्कृति का दिग्दर्शन किया है। आगे पश्चात्त्य विद्वानों के उन पाँच प्रमाणों का प्रत्युत्तर है जिन्हें वे आर्यों के वाहर से आने में उपरिस्त करते हैं। इनमें चार प्रमाणों का संक्षेप में उल्लेख है और पाँचवाँ प्रमाण जो उनमें दिया है कि वेनों में जो देवानुर संग्राम वर्णित है वे पश्चिम देशों के ही संग्राम हैं इस प्रमाण का यहाँ विवृत खटवटन है और दस प्रमाणों से सिद्ध किया गया है कि इस ही पृथ्वीमण्डल पर देव, मनुष्य और देवविरोधी अर्देव इन तीनों ने ऐतद्भित्तक हैं। उनमें अर्देवों के चार विभाग थे, दानव, दैत्य, दम्बु और पक्षि। उन अर्देवों में दानव, दैत्य, दम्बु और पक्षि के पाँच प्रकार के संग्राम हुए थे जिनका वर्णन वेदग्रन्थों में है। इनके पारस्परिक भिन्न निमित्त भी दिखाये गये हैं।

एक संग्राम गौत्रों के उद्देश्य से हुआ था। एक कृषि के विनाश-निमित्त, एक शक्ति-
भवन में प्रतिष्ठापित नूर्य के निमित्त, एक सोन के निमित्त ये पारंगत साम्राज्य हैं। इनमें
भूमि-निमित्त का संतान बहुत प्रवल है और पंचमो प्रतीति-संग्रह है, जिसमें, जहाँ-तहाँ, वे
भी आराम में लड़े थे। यह भी दिखाया गया है कि एसासों में जहाँ-तहाँ, वे
निरूपित हैं, जिन्हु वे इन्हीं के प्रचान्तर भेद मल्लों लगे हैं। एसासों में वे इस देश के
सदा ही आर्यों के साथ रहा। उनका जहाँ-तहाँ में कोई संतान हुआ तो वे इस देश के जहाँ-तहाँ में

सिद्ध नहीं होता। आगे अनार्यों के बहुत से अवान्तर प्रभेद और इनके देश विभाग भी विस्तार से बताये गये हैं और भारत की सीमा का यहाँ भी पुनः विस्तृत विवेचन है। भारत से बाहर के अनार्यों का आर्यों से कहीं कहीं संग्राम मन्त्रों में श्रुत है किन्तु भारतीय अनार्य भारतीय आर्यों से कहीं लड़े हो ऐसा वेद मन्त्रों में कहीं प्राप्त नहीं होता। इसी प्रकरण में भारत के कुछ अद्भुत वैज्ञानिक शिल्प भी मन्त्र प्रमाणों से दिखाये गये हैं जिनमें ऋमुओं के शिल्प बहुत ही अद्भुत थे उनका विस्तार से निरूपण है और उन ऋमुओं को अद्भुत शिल्पों के कारण ही देवत्व प्राप्त होगया यह भी सिद्ध किया गया है। वैदेशिक विद्वानों को कल्पना को विध्वस्त करते हुए मन्त्रों में यह स्पष्ट दिखाया है कि जिस समय देवासुर संग्राम हो रहे थे उस समय भारतवर्ष में सुदृढ़ राज्य-व्यवस्था चल रही थी और भारत के नरेश देवताओं की सहायता के लिये स्वर्ग में गये यह भी विस्पष्ट वर्णन है। तब ये युद्ध आर्यों और अनार्यों के थे, और उनके अनन्तर आर्यों ने भारत में प्रभुत्व जमाया इस कल्पना को स्थान ही नहीं मिलता। इस पाश्चात्य कल्पना के खण्डन में ही यह दूसरा प्रकरण समाप्त होगया है। इसका मनन करने से वैदिक इतिहासों का स्पष्ट तात्पर्य सबकी समझ में आसकता है।

इससे आगे विज्ञानभवन नाम का तीसरा प्रकरण है। इसके आदि में सिद्ध किया गया है कि वितस्ता और सिन्धु इन दोनों नदियों के बीच में एक सरस्वती नाम की नदी बिल्ल्यात थी और उसके तट पर ही एक सरस्वती नाम की पुरी भी थी। इन दोनों का ऋग्वेद के मन्त्रों में विस्तार से वर्णन आता है। इसी सरस्वतीपुरी में वासिष्ठ आदि ऋषियों ने एक विज्ञानभवन बनाया था और उसमें एक सूर्य्य स्थापित किया था। यहीं बैठकर ये ऋषि लोग तारा मण्डलों की वैज्ञानिक परीक्षा किया करते थे। किस प्रकार का यह भवन था ? कैसा वहाँ सूर्य्य बनाया गया था ? किस प्रकार वहाँ परीक्षाएँ होती थी ? इन सब बातों का बड़ा अद्भुत निरूपण यहाँ है जिसे देखकर बड़े बड़े रिसर्च के विद्वानों को आश्चर्य में डूब जाना पड़ता है। आगे यह भी दिखाया गया है कि बहुत काल के अनन्तर इन्द्र इस सूर्य्य को स्वर्ग में ले गया और तब से स्वर्ग में (भू-स्वर्ग) सूर्य्य-भवन की प्रतिष्ठा की गई। यहीं तीसरा प्रकरण समाप्त हो जाता है।

इसके आगे चतुर्थ प्रकरण दस्युनिग्रह नाम का है। इसमें यह दिखाया गया है कि देवासुर संग्रामों के अनन्तर बहुत समय बाद भारतवर्ष के आर्यों पर दस्युओं का आक्रमण हुआ। इस आक्रमण से कुत्स आदि कई राजाओं को बहुत हानि पहुँचाई गई और सिन्धु आदि नदियों का जल भी भारत में आने से रोका गया। पूर्वोक्त सूर्य्यस्थान (विज्ञानभवन) पर भी इन दस्युओं ने पुनः आक्रमण किया। तब खिन्न हो कर कुत्स आदि राजाओं ने स्वर्गाभिपत्ति इन्हें से रक्षा का निवेदन किया और बहुत विकल हो कर कुत्स स्वयं इन्द्र की नगरी

अमरावती में गये। इन्द्र त्वयं भी सूर्यस्थान (विज्ञानभवन) की रक्षा चाहने थे इस निमित्त उन्हें चढ़ाई कर इन राजाओं की रक्षार्थ आये और गान्धार देश से पश्चिम भाग में दसुओं का हनन किया। इस प्रसङ्ग का वर्णन इस प्रकरण में विन्नार ने किया गया है। इसका पश्चिम भाग इस प्रसङ्ग के वैदिक सूक्तों से ही परिपूरित है। इन्द्र कहीं कहीं ठहरे, वहाँ जाकर उनका कैम्प लगा; उनको भोजनादि प्रबन्ध किस प्रकार हुआ और जिस किस तरह उनमें युद्ध और दसुओं का संहार किया। इत्यादि सब बातों का विस्तृत वर्णन इसमें है जो कि ऐतिहासिकों के बहुत काम की वस्तु है। जिन जिन देश, नदी, पर्वत आदि का नाम मन्त्रों में आया है, वे सब किस नाम से प्रसिद्ध हैं, यह भी भौगोलिक दृष्टि से युक्तिपूर्वक इसमें बताया है। इनोसिपे भूगोल के विचार से भी इस प्रकरण का बहुत महत्व है।

इस युद्ध के विजय के अनन्तर जहाँ जहाँ अभिनन्दनोत्सव हुए और उनमें भिन्न भिन्न प्रकार से भिन्न भिन्न ऋषियों ने जो सूक्त इन्द्र के पढ़े उनका समग्र विजयाभिनन्दन नामक पञ्चम प्रकरण में है। यह भी प्रकरण वैदिक सूक्तों से ही अधिगंश परिपूर्ण है। यद्यपि इन सूक्तों और मन्त्रों का वैज्ञानिक अर्थ भी है। यज्ञ प्रकरण में वही अर्थ उपगुप्त है। इन्हीं ग्रन्थकार ने अन्यान्य स्थान में इन मन्त्रों का वैज्ञानिक अर्थ लिखा है। मन्त्र प्रकरण में ही अन्यान्य ग्रन्थों में कई जगह यह सिद्धान्त प्रकट किया है कि वैदिक मन्त्र अनेक भू-प्रगति होते हैं। वे वैज्ञानिक अर्थों का प्रकाशन करते हुए ही ऐतिहासिक मन्त्र भी समझाये जा सकते हैं। इन्हीं ऐतिहासिक संकेतों के आधार पर यहाँ का यह मन्त्र है। इनके पश्चात् दसुओं ने सूर्यस्थान पर पुनः आक्रमण कर उस वैज्ञानिक सूर्य का अपहरण कर लिया और उसे सीरीया में लेजाकर 'चालबल' नाम के भवन में स्थापित किया इसका वर्णन है। इस प्रकार यह वैज्ञानिक सूर्य तीन स्थानों में रहा। उन तीनों स्थानों का पूरा पता दिया गया है। इस भी बतलाया गया है कि इसके अनन्तर प्रायः ने पुनः समीप देश में सूर्य को लाने का प्रयत्न किया जो स्थान आज भी मार्तण्ड (मटन) नाम से प्रसिद्ध है और उसका वर्णन, वर्णन है। आगे यह रहस्यमय वर्णन है कि इतना उन्नत भारत में मन्त्र प्रकरण में पराधीन क्यों हो गया उसका कुछ देवधारण भी है, यहाँ विस्तृत वर्णन नहीं है, जो कि मन्त्र के अनुकूल होने पर पुनः भारत बँसा ही उन्नत होगा इन मन्त्रों के माध्यम से बताया किया गया है।

यह ग्रन्थ के विषयों का संक्षिप्त वर्णन है। इसमें प्रत्येक विषय के वैदिक प्रमाण विस्तार से हैं यह स्थान स्थान में यह चुग है। इस ग्रन्थ का सम्मेलन यह ग्रन्थों से करने से पुराणों का समन्वय भी इन विषयों में प्रतीत होगा ऐतिहासिकों के लिये, जो कि इसकी यह एक बहुत बड़ी सान्नी प्रस्तुत की जाती है। इस ग्रन्थ का विषय मन्त्रों के अर्थों के अनुवाद परमावश्यक है। जिससे इसकी उपयोगिता और भी विशेष रूप से होगी।

इस संबंध में विद्वानों का मतभेद है कि वेद में इतिहास है या नहीं । किन्तु इसकी विस्तृत विवेचन मैं महर्षि कुलबैभव की भूमिका में कर चुका हूँ, इसलिए यहाँ उसको पुनरावृत्ति करना आवश्यक प्रतीत नहीं होता । भारतवासियों के स्वरूप-परिचय और स्वाभिमान की जागृति के लिये इस ग्रंथ का अधिकाधिक प्रचार ईश्वर से वाञ्छनीय है, इति ।

जयपुर
२५-१०-५२

गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी
महामहोपाध्याय, वाचस्पति,
आनरेरी संस्कृत-शिक्षा-संचालक
हिन्दूयूनिवर्सिटी, काशी

ॐ श्री. ॐ

समीक्षाचक्रवर्ति महामहोपदेशक विद्वद्वर्य पं० श्रीमधुसूदन विद्यावाचस्पति प्रणीते ब्रह्मविज्ञानशास्त्रे द्वादशवादग्रन्थाः

१—विज्ञानेतिवृत्तवादः

२—सदसद्वादः

३—रजोवाद

४—व्योमवादः

५—अपरवादः

६—आवरणवाद

७—अम्भोवाद

८—अमृतमृत्युवाद

९—प्रयोगप्रवाद

१०—संशयवादः

११—सत्योन्नेषणवादः

१२—निर्दिष्टवादः

एषु प्रथमे विज्ञानेतिवृत्तवादे

पञ्चोपाख्यानानि

१—जगद्गुरुब्रह्मोपाख्यानम्

२—स्वर्गदैवतोपाख्यानम्

३—भारतवर्षीयायां पान्थानन्दोपाख्यानम्

४—परियन्तमेतादृशान्

५—द्वादशविज्ञानोपाख्यानम्

तेषु तृतीयो भारतवर्षीयायां पान्थानन्दोपाख्यानम्

* इन्द्रविजयः *

* इन्द्रविजयः *



तत्र पञ्च प्रक्रमाः

(१) भारतपरिचयः.....भौगोलिकरहस्यम् ।

(एकादशप्रसङ्गाः)

१—त्रैलोक्यप्रसङ्गः ।

२—नामधेय प्रसङ्गः

३—सीमाप्रसङ्गे प्रमाणानि ।

४—उपद्वीप प्रसङ्गाः ।

५—लङ्का प्रसङ्गः ।

६—भाषा प्रसङ्गः ।

७—वर्णमातृका प्रसङ्गः ।

८—लिपिप्रसङ्गः ।

९—सभ्यता प्रसङ्गः ।

१०—धर्म प्रसङ्गः ।

११—विद्या प्रसङ्गः ।

(२) आर्यदासीयः.....दस्युपद्रवाभिज्ञानम् ।

(३) विज्ञानभवनम्.....सूर्यसदनाभिज्ञानम् ।

(४) दस्युनिग्रहः.....दस्युसंहारयुद्धम् ।

(५) विजयाभिनन्दनः.....युद्धशान्तिमहोत्सवः ।

अथेन्द्रविजयनाम्नि वैदिके ऐतिहासिके काव्ये पञ्चप्रक्रमाः । नहं यथा—भारत-
परिचयप्रक्रमः । आर्य्यदासीयप्रक्रमः । विज्ञानभवनप्रक्रमः । दम्बुनिग्रहप्रक्रमः । विजया-
मिनन्दनप्रक्रमः—इति । तत्रादौ भारतपरिचयस्य विषयमृचां प्रदर्शयते—

भारतपरिचयप्रक्रमे ११ प्रसङ्गाः—

विषयाः

१२

१—त्रैलोक्यप्रसङ्गः ।

१-२

१— दिव्यशारीरभौमभेदान् त्रैलोक्यं त्रिविधम् ।

१—दिव्यत्रैलोक्यम् ।

२—शारीरत्रैलोक्यम् ।

३—भौमत्रैलोक्यम् ।

२—भौमत्रैलोक्यवात्सिपु औपचारिका. शब्दव्यपदेशा ।

३—प्राचीनत्रैलोक्ये एशियादेशेऽद्यापि त्रैलोक्यविभागोऽस्ति ।

४—तातारस्य रूसदेशस्य च पुराणेषु भौमभवनम् ।

५—सायिबीरियोत्तरीयकनिचिद्रागस्य मनुजमग्न्यम् ।

६—स्वर्गीयचिष्टपत्रचविधंसे द्वौ द्वौ ।

७—विज्ञाने दिव्याया इवेतिहासे भौम्यान्त्रिलोक्ये ।

८—भारतवर्षस्य भौमत्रैलोक्यान्तर्गतद्वीपलोक्यम् ।

२—नामधेयप्रसङ्गः ।

५-२

१—भारतवर्षस्य चत्वारि नामानि ।

२—भारतशब्दव्यपदेशे मन्त्रचतुष्टये पौराणिके प्रसङ्गे ।

३—पौराणिकं द्वितीयं मतम् ।

४—वैदिकमतानुन्यायम् ।

५—लोकमतम् ।

६—हिन्दुमतानुन्यायं भारतवर्षस्य नामम् ।

३—सौमाप्रसङ्गः ।

१०—७१

१—पौरस्त्यपाश्चात्यभेदात् भारतवर्षद्वैविध्ये चतुर्दशप्रमाणानि ।

११

(१) पुरायुगीयाः संज्ञाशब्दविशेषाः प्रथमं प्रमाणम् ।

११

१—सिन्धुस्थानपारस्थानशब्दावन्योन्यसापेक्षौ प्रान्तवचनौ ।

११

२—पौरस्त्यभारते आर्य्यावर्तशब्दवत्पश्चिमभारते आर्य्यायणशब्दः ।

१२

३—पश्चिमभारतस्य ओरियंससंज्ञाऽप्यार्य्यवंशनिवासमूला ।

१२

४—ओरियंसशब्दाभिधानेऽन्यहेतूपन्यासः ।

१२

५—एरियानाशब्दोऽप्यार्य्यनिवासमूलः ।

१३

६—इण्डियावामनियादिशब्दा अप्यार्य्यनिवासमूलाः ।

१३

(२) अरवयुगीयाः संज्ञाविशेषा द्वितीयं प्रमाणम् ।

१३

१—ओरियंसशब्दवत् पश्चिमे भारते पश्चात् खुरासानशब्दः ।

१३

२—पश्चिमभारते ईरानशब्दोऽप्यार्य्यनिवासमूलकः ।

१४

३—पश्चिमभारते ओरियंसपारस्थानखुरासानादिशब्दानां शासनभेदेन भिन्नकालप्रयोगाः ।

१४

४—ईरानखुरासानपर्सियादिशब्दानां महादेशवाचिनामपि कालभेदेन तत्प्रान्तमात्राभिधायित्वम्

१५

५—नियतसंज्ञाव्यवस्थापकभारतीयानां भुवनकीशशास्त्रे शासनमूलकसंज्ञाप्रभेदानामनादरः ।

१५

(३) इन्द्रवरुणनिमित्ते ब्राह्मणानां वैज्ञानिकं वाग्युद्धं तृतीयं प्रमाणम् ।

१५

आसुरधर्मे प्रविशतो जरथुस्तस्य देवेन्द्रनिन्दकत्वं विरोधहेतुः

इन्द्रप्रियसोमप्रतिद्वन्द्वितया वरुणेन सुरानिर्माणम् ।

१६

आर्ज्यैर्वैरिन्द्राधिक्षेपः ।

१६

इन्द्राणीकृतः क्रोधः

१७

इन्द्राणी प्रति इन्द्रकृता परिसान्त्वना

१७

इन्द्राणीं प्रति वृषाकपिकृता परिसान्त्वना

१८

एतदाख्यानस्य ऋगवेदसहितायामुल्लेखः

१८

विषयाः

५८

इन्द्राणीक्रोधविषया वेदमन्त्रा ।	१०
देवेन्द्रवृषाकपिकृवपरिसान्त्वना मन्त्राः ।	११
असुरेन्द्रवृषाकपिकृवपरिसान्त्वना मन्त्रा ।	११
देवेन्द्रासुरेन्द्रयोर्वृषाकप्योः सन्धिशान्ति ।	११
क्रमशस्तत्रैव ब्राह्मणानां वैज्ञानिकविप्रतिपत्तिप्रारम्भ ।	११
तत्र तावत्संक्षेपतो वरुणपरमासुरविज्ञानम् ।	११
अथ प्रतिपादे संक्षेपत इन्द्रपरं देवविज्ञानम् ।	११
अथेन्द्रपक्ष्यैर्ब्राह्मणैरुद्घोषितं देवेन्द्रमहत्त्वम् = काण्वः । नृमेधाः । हिरण्य-	१२
स्तूपः । चामदेव । रेणुर्वैश्वामित्रः । पूरणो वैश्वामित्र । गर्गः ।	१२
इत्येतेषां ब्राह्मणानामभ्यर्थनाभिरुक्तेजितेन स्वयं देवेन्द्रेणासुरनिर्जनम् ।	१२
असुरपराभवान्ते—“परुच्छेप पुरुहन्मा श्रुतवत्तः हैमरवि — “न्येनेवा पुनर्भगवान्”	
प्रमहणम् ।	११-१२
वरुणनप्तुर्वृहद्विषय कालेन ब्रह्मनष्टत्वम् ।	१२
आथर्वणेन बृहद्विवेन देवेन्द्राभिनन्दनम् ।	११
औतथ्येन दीर्घतमसा आद्विरसेन कुन्नेन च वरुणभ्याग्निवाग्गतम् ।	१२
अथ वरुणपक्ष्यैर्ब्राह्मणैरुद्घोषितं वरुणमहत्त्वम् ।	१२
अपरे सुपर्णभरद्वाजवामदेवादयो ब्राह्मणा उभयो गन्धेन मन्त्रिण्यन्त- ११-१२	११-१२
गच्छन्ति स्म ।	११-१२
पञ्चत्रयवतां ब्राह्मणानां विज्ञानविरोधे विचान्तिमिति ।	१२
इन्द्रपक्ष्याणां विचारसमितौ इन्द्राय पुन सोमाभिवार्धं हिरण्यसं- १२	१२
हिरण्यगर्भेणोन्द्राय हविर्धानप्रत्याग्यानम् ।	१२
हिरण्यगर्भतात्पर्यविषये विज्ञानम् ।	१२
इन्द्राय सोमाभिवार्धं वसिष्ठनिर्गण ।	१२
वसिष्ठेनेन्द्रपरितोषार्थं सोमयज्ञपररणम् ।	१२
(वसिष्ठ (७ । ३२) इन्द्राय भर्तारम् ।	१२
(पुनर्वसिष्ठ (७ । २७ । २६) इन्द्राय भर्तारम् ।	१२
वरुणेन बृहदेन वसिष्ठनिर्गण ।	१२
वसिष्ठस्य वरुणभ्यर्धनागन्त्रा ।	१२
निगडसूतेन वसिष्ठेन नेशानिधित्वेन नान्येन नान्येन नान्येन नान्येन ।	१२

विषयाः

पृष्ठः

त्र्यम्बकेण त्रिपुरध्वंसः ।

६७

महीसागरोपरिष्ठात् त्रिपुरासुरपलायनम् ।

६८

तारकासुरसंग्रामः ।

६९

असुरराजविध्वंसेऽप्यसुरप्रजाविध्वसाभावः ।

६९

प्रकरणोपसंहारः ।

६९

(११) नवानां भारतीयद्वीपानां मध्ये हिन्दुस्तानस्य कुमारिकानाम्ना नवम-
द्वीपत्वाख्यानं भारतवर्षस्य हिन्दुस्तानमावपथ्यवसायित्वाभावे एकादशं
प्रमाणम् ।

६९

(१२) तुरुष्कदेशस्य भारतवर्षीयोत्तरसीमात्वाख्यानं द्वादशं प्रमाणम् ।

७०

(१३) पश्चिमसमुद्रस्य भारतवर्षीयपश्चिमसीमात्वाख्यानं त्रयोदशं प्रमाणम् ।

७१

(१४) ईरानविलोचिस्तानाफगानस्तानादिशब्दानां शासनक्रान्तिभेदमूलकत्वे-
नाव्यवस्थितत्वात् तेषां गणितव्यवस्थितभारतवर्षशब्दप्रयोगप्रतिरोध-
कत्वासम्भवश्चतुर्दशं प्रमाणम् ।

७१

४—उपद्वीपप्रसङ्गः ।

७२-७४

जम्बूद्वीपस्याष्टोपद्वीपाः ।

७३

५—लङ्काप्रसङ्गः ।

७५-८२

द्वादशविप्रतिपत्तिभिः सिंहलद्वीपस्य लङ्कात्वभ्रमखण्डनम् ।

७५

१ भारतीयशास्त्रे सिंहललङ्कायाः पृथक्त्वेनाख्यानम् ।

२ निरुद्धे लङ्काशब्दस्य निरुद्धत्वात् सान्तस्य सिंहलस्य लङ्कात्वाभावः ।

३ उज्जयिनीसदेशस्य लङ्कात्वसिद्धान्तात् पञ्चभिर्देशान्तरांशैः पूर्वस्य सिंहलस्य
लङ्कात्वाभावः ।४ उज्जयिनीतो लङ्कायाम्ब्रनोविशाशान्तराख्यानाञ्चतुर्विशांशान्तरस्य सिंहलस्य
लङ्कात्वाभावः ।५ महेन्द्रगिरितो लङ्कायाश्चतुःशतकोशान्तरितत्वाख्यानाच्छत्रार्द्धं प्रायक्रोशान्तरि-
तस्य सिंहलस्य तत्वाभावः ।

६ लङ्कायारचतुःशतक्रोशदीर्घत्वाख्यानत् पञ्चत्रिंशदधिकशतक्रोशदीर्घस्य मित-
लस्य लङ्कात्वाभावः ।

७ लङ्काया गङ्गाया अनुक्तेर्महावलिगङ्गायुक्तस्य सिंहलस्य लङ्कात्वाभावः ।

८ सिंहलस्य रावणविहारस्थानतया तत्राशोकवाटिकादिप्रसिद्धानपि नन्या. लङ्का-
त्वसिद्धौ प्रामाण्याभावः ।

९ सिंहलाभिप्रायेण प्रयुक्तस्य टापरोवेनशब्दस्य ताम्रपर्णशब्दापभ्रान्तया टाप-
रावणत्वकल्पनीया असारत्वम् ।

१० रामेश्वरसिंहलयोरन्तरतो गिरीणां प्राकृतत्वात् प्लवमानसेतुसम्भकल्पनाया
असारत्वम् ।

११ कालेन लङ्कायाः समुद्रगर्भे प्रवेशादनुपलब्धावपि लङ्काया लङ्कात्वाभावः
साहसमात्रम् ।

१२ लङ्काभग्नावशिष्टप्रान्तयोर्लङ्कादीवमालदीर्घयोरेवाप्युपलब्धत्वात् तद्विषय मित-
लस्य लङ्कात्व ख्यानं साहसमात्रम् ।

लङ्कादीवमालदीवयोर्लङ्कादीपत्वाभ्युपगमे पलुपट्टम्भकारि प्रमाणानि ।

६—भाषाप्रसङ्गः ।

८३-८४

१०—देवीव्राह्मीभेदाद् भारत्या भाषाया द्वैविध्यम् ।

११—छन्दोभाषा ।

१२—छन्दोभाषायाः सर्वभाषामूलत्वम् ।

१३—छन्दोभाषाया एव इटोयूरोपियनभाषात्वम् ।

१४—भारतीभाषा ।

१५—प्राच्योदीच्यभेदाद् ब्राह्मीभाषाद्वैविध्यम् ।

१६—नागरीभाषा ।

७—वर्णमातृकाप्रसङ्गः ।

८४

८—लिपिप्रसङ्गः ।

८५-८६

१७—भारतीयब्राह्मीलिपेण प्रचलन्तीति ।

८६

विषयाः

पृष्ठाः

वैदमन्त्रनिर्माणकाले लिपिसामान्याभावमतखण्डनाय श्रुतिशब्दव्यप-

देशस्य मौलिकरहस्योपपादनम् ।

८४

मन्त्रनिर्माणकाले लिपिसत्त्वे वैदिकं प्रथमं प्रमाणम् ।

८७

” ” ” द्वितीयं प्रमाणम् ।

८८

” ” ” तृतीयं प्रमाणम् ।

८९

” ” ” चतुर्थं प्रमाणम् ।

९०

” ” ” पञ्चमं प्रमाणम् ।

९१

” ” ” षष्ठं प्रमाणम् ।

९१

” ” ” सप्तमं प्रमाणम् ।

९१

” ” ” अष्टमं प्रमाणम् ।

९२

मन्त्रनिर्माणकाले विद्यमानाया लिपेर्ब्राह्मी संज्ञा ।

९२

९—सभ्यताप्रसङ्गः ।

९३

देवयुगेभारतवर्षस्य परमोन्नतिः ।

९३

१०—धर्मप्रसङ्गः

९४—१०४

भारतीयधर्माणां वैज्ञानिकत्वम् ।

९४

भारतीयधर्मस्वरूपम् ।

९४

वैज्ञानिकधर्मनिबन्धनं भारतवर्षमहत्त्वम् ।

९६

पौराणिकं भारतवर्षमाहात्म्यम् ।

९६

भारतीयमहर्षीणां वैज्ञानिकतया दूरदर्शित्वम् ।

९७

लघ्यवर्णनविचारे भारतीयानां प्राचां विदुषां सिद्धान्तः ।

९८

क्षीणभारतोपहासानौचित्यम् ।

९८

धर्मरक्षोपेक्षायां भारतावनतिहेतुत्वम् ।

९८

चातुर्वर्ण्यव्यवस्थायां अवनतिहेतुत्वाभावः ।

९८

चातुर्वर्ण्यव्यवस्थायां एव भारतीयोन्नतिहेतुत्वम् ।

९९

विद्वान्तेजसोः संपत्त्यै प्रथमतः शिल्पद्वारा धनाप्तेरपेक्षा ।

९९

शिल्पविद्वान्स्य आत्मोन्नतिहेतुविद्वानत्वाभावाच्च ।

१००

विषयाः

पृष्ठः

३ भोजन्यपेक्षया धनोन्नतेरत्यन्तनिकृष्टत्वम् ।	१००
ते । विज्ञानाभ्यामिव धनेन स्वावलम्बन स्वातन्त्र्याभावः ।	१००
धनोन्नतेर्निकृष्टत्वे त्रिदोषोत्पादकत्वहेतुः ।	१००
नैसर्गिकोत्साहतेजसोर्मध्यमकक्षाकात्मोन्नतित्वम् ।	१०१
बाह्यसंपत्त्यपेक्षया प्राणसंपत्तेरन्तरङ्गत्वादुत्कृष्टत्वम् ।	१०१
प्राणसंपत्त्यपेक्षया विज्ञानसंपत्तेरत्यन्तकोन्नतिहेतुत्वम् ।	१०२
अपस्वार्थिनां धनहेतुकसुखभोगप्रवणानां मोघजीवत्वम् ।	१०२
विज्ञानतेजसोर्ब्रह्मज्ञत्रवीर्य्ययोरुत्पत्तौ चातुर्वर्ण्यधर्मानुपालनं हेतुः ।	१०२
अथथाकृतस्य चातुर्वर्ण्यधर्म्मस्य वीर्य्योत्पत्तौ हेतुत्वाभावः ।	१०३
भारतस्य पुनरभ्युत्थाने चातुर्वर्ण्यधर्म्मनुपालनस्यैव हेतुत्वम् ।	१०३
चातुर्वर्ण्यधर्म्मप्रवृत्त्यर्थं वैदिकविज्ञानप्रचारबाहुल्यस्यावश्यकत्वम् ।	१०४

११—विद्याप्रसङ्गः ।

१०५—१३६

भारतवर्षीय ब्रह्मवीर्य्याख्यानम् ।	१०५
भारतवर्षमहत्त्वहेतवश्चतुःषष्टिः विद्याः ।	१०५
निगमविद्याप्रभेदा अष्टादशः ।	१०५
आगमविद्याप्रभेदा विंशतिः ।	१०५
दिव्यविद्याप्रभेदाश्चतुःषष्टिः ।	१०७
आत्मोन्नतिहेतुभूतदिव्यविद्याप्रदर्शनी तालिका	१०८
दिव्यविद्यानां प्रयोगोदाहरणानि	१०९
मनःसंयमाद्योगबलसिद्धयोऽष्टौ	१०९
इन्द्रियसंयमाद्विष्यदृष्टिसिद्धयोऽष्टौ	१११
हृदयसंयमात्तपोबलसिद्धयोऽष्टौ	११४
प्राणसंयमाद् दैवबलसिद्धयोऽष्टौ	११६
नैगमीयमन्त्रबलसिद्धयोऽष्टौ	११८
आगमीयमन्त्रबलसिद्धयोऽष्टौ	१२३
महौषधिवलसिद्धयोऽष्टौ	१२३
यन्त्रबलसिद्धयोऽष्टौ ।	१२६
संवाहदयो यन्त्रविशेषाः ।	१२६

विषयाः

पृष्ठः

ब्राह्मणानामष्टभ्यो वीर्य्येभ्यः सर्वासां विद्यानां प्रादुर्भावः ।	१२६
सर्वविद्यानां सर्वार्थसिद्धौ हेतुत्वं तुल्यम् ।	१३०
नवनिधयः ।	१३०
निधिविशेषा आथर्वणवेदोक्ता अष्टौ मणयः ।	१३०
विद्याप्रकरणोपसंहारः ।	१३२
भारतवर्षीयचतुर्वीर्य्याख्यानम् ।	१३२
युद्धोद्योगीनि चतुःषष्टि दिव्यास्त्राणि ।	१३२
दिव्यास्त्रतालिका ।	१३३
रामायणोक्तानि पञ्चाशद् दिव्यास्त्राणि ।	१३४
पञ्चाशद् दिव्यास्त्रतालिका ।	१३४
पञ्चाशद् दिव्यास्त्रसंहाराः ।	१३५
अष्टादशानां लौकिकास्त्राणां भाषानामानि ।	१३६
भारतवर्षीयं विडवीर्य्याख्यानम् ।	१३६
भारतीयानां भग्नावशिष्टानामपि शिल्पानामतुलनीयत्वम् ।	१३६

इति भारतपरिचयस्य विषयसूची समाप्ता ।



आर्यदासीयाख्यो द्वितीयः प्रक्रमः ।

विषयाः

पृष्ठ

भारतीयार्याणां मौलिभारतीयत्वसिद्धान्ताद् वैदेशिकत्वमतखण्डनम् ।

१

पुरायुगीयानां नराणां संक्षेपतत्त्रैविध्यम् ।

४

वैदोक्तसंग्रामाणामारम्भकनिमित्तभेदात् पाञ्चविध्यम् ।

४

(१) विप्रकीर्णार्थे देवानामार्यैः संग्रामः ।

५

(२) गवार्थे पणिभिः संग्रामः ।

७

(३) भूम्यर्थे देवानां दैत्यदानवैः संग्रामः ।

७

देवत्रैलोक्यादसुराणां बहिष्कारः ।

८

देवयजनभूमेस्त्रैलोक्यविभक्ताया ऐश्या संज्ञा ।

८

दहरैशिया स्वायम्भुवी । (एशिया माइनर)

८

आसुरदेशास्त्रैलोक्यविभक्ता ।

९

देवत्रिलोक्यामसुराक्रमणम् ।

१०

इन्द्रविष्णुभ्यां वराहासुरप्रतीकारः ।

११

(४) सोमार्थे देवानां दैत्यैः संग्रामः ।

१३

सोमोच्छेदकासुरप्रतियोधार्थं गन्धर्वचिनियोगः ।

१७

सोमसंरक्षणाय दैत्यान् प्रतियोद्धुं नियुक्ता गन्धर्वाश्चतुर्धा ।

१७

विश्वावसुप्रधानानां गन्धर्वाणामाधिपत्ये चन्द्राभिपेक्षः ।

१८

दैत्यैः कृत सोमबल्लीविध्वंसः ।

२०

सोमप्रातिनिध्येन सरोत्पादनम् ।

२१

सोमरसगुणप्रकाशका वेदमन्त्राः ।

२१

इन्द्रभवने प्रत्यहं त्रिशत सोमसरसामुपयोगः ।

२३

ब्रह्मवीर्यम् ।

२४

सोमध्वंसाद् ब्रह्मवीर्यापिध्वंसः । - -

२४

विषयः

पृष्ठः

(५) सूर्यार्थे देवानां दस्युभिः संग्रामः ।

२४

विज्ञानौपयिके सूर्येऽसुरप्रेरितानां दासानामाक्रमणम् ।

२५

मनुष्यामनुष्यभेदात् दासानां त्रैविध्यम् ।

२५

अमनुष्यदासानां प्रभवः ।

अमनुष्यदासप्रकृतिः ।

२६

अमनुष्यदासप्रभेदाः ।

२७

अमनुष्यदासानां प्रमुखाः कतिपये वेदे नामतो निर्दिष्टाः ।

२८

अमनुष्यदासानां हिमवत्प्रदेशे सिन्धुनदप्रान्ते निवासः ।

२८

सिन्धुनदप्रान्ते सप्तनदत्रयम् ।

२८

पूर्वसप्तनदः ।

२९

पश्चिमसप्तनदः ।

२९

उत्तरसप्तनदः ।

३०

पूर्वसप्तनदे दासकुलाभिजनासत्वात् तत्र युद्धाभावः ।

३०

उत्तरसप्तनदवासिनां दासानां भारतवर्षीयत्वाभावः ।

३१

भारतवर्षसीमाचतुष्टयी ।

३१

भारतवर्षस्यैन्द्रवारुणाभ्यां पूर्वपश्चिमाभ्यां विभागः ।

३२

पश्चिमभारते गान्धारदेशे दासकृतं प्रथमं युद्धम् ।

३२

परमतनिरासेन सिद्धान्तस्थापनम् ।

३४

दस्युयुद्धाद् बहुपूर्वमार्याणां भारतवर्षनिवासित्वे पूर्वमनुष्याणां ऋभूणां

भारतीयत्वं हेतुः ।

३४

ऋभुपरिचयः ।

३४

ऋभुभ्यः स्वकौशलं दर्शयितुं देवानामादेशः ।

३५

पञ्चदशादिष्टान्यनादिष्टानि च ब्रह्मन् शिल्पानि प्रदर्शयितुमृभूणां स्वर्गे गमनम् ।

३६

ऋभुकौशलविमुखैर्देवैर्ऋभुभ्यो देवत्वेन्द्रसन्धित्वादि पारितोषिकप्रदानम्

३८

ऋभूणां यशस्थैर्याच देवेन्द्रनिदेशाद्देवसभाविद्धिः कीर्तिसूक्तनिर्माणम् ।

४०

दीर्घतमसा कृतमृभूणां कीर्तिसूक्तम्

४०

वामदेवकृतमृभूणां कीर्तिसूक्तम्

४१

द्राक्षप्राक्कनानामृभूणां भारतीयमनुष्यतया दस्युयुद्धात् प्रागेवार्याणां भारतीयत्वसिद्धान्तः ।

४५

युयुद्धात् बहुपूर्वं सभ्यानामार्याणां भारतनिवासित्वसिद्धान्तः ।

४५

विज्ञानभवनं तृतीयः प्रसङ्गः ।

विषयाः

प्रश्न

पुरायुगे दिव्यप्राणपरीक्षार्थं विज्ञानशालानिर्माणम् ।	४७
आर्यानार्यविद्रोहनिमित्तभूतं सिन्धुसरस्वतीसंभेदे सूर्याधिष्ठानम् ।	४७
सूर्यसंस्थानस्वरूपम् ।	४६
सूर्यचक्रस्वरूपम् ।	५०
सूर्यविज्ञानादाधिदैविकसिद्धिः ।	५१
सूर्यविज्ञानादाधिभौतिकसिद्धिः ।	५१
सूर्यविज्ञानादाध्यात्मिकसिद्धिः ।	५३
सूर्योषसोः प्रथमतः सूर्यायतनप्रबन्धकृतं त्वम् ।	५४
एतशम्य मानुषस्याप्याधिदैविकवद्वृत्तिः ।	५६
एतशाश्वकृतपरीक्षा ।	५७
अहोरात्रवृत्तानां छन्दःसंज्ञानामेतशानाम्ना विवक्षितानां सूर्यशयत्वम् ।	५७
तत्परोक्षकत्वात् सुषिराजस्य मनुष्यस्याप्येतशत्वम् ।	५७
उषसः सूर्यायतनस्थाया बहवः प्रभेदाः ।	५८
उषसो मानुष्या अप्याधिदैविकवद्वृत्तिः ।	५६
विश्वामित्रो महर्षिरुषसं स्तौति ।	६०
वसिष्ठो महर्षिरुषसं स्तौति ।	६०
प्रस्कण्वः काण्व उषसं स्तौति ।	६३
कक्षीवान् दैर्घतमस उषसं स्तौति ।	६५
अष्टादंष्ट्रो धैरुष इन्द्रं स्तुवन्नुषसं स्तौति ।	६६
विज्ञानशालास्थितत्वात् सूर्यचक्रद्वयादेकस्य देवेन्द्रेण परोहरणम् ।	६७
उषःकारणात् सूर्याधिष्ठाने दत्तयूनामाक्रमणमिन्द्रकुत्साभ्यां तन्निर्वाणञ्च ।	६७
सूर्यसंस्थानसंरक्षणार्थं देवेन्द्रकृतः स्थानिकः प्रबन्धः ।	६८
अग्निपुरस्कृतानां देवानां स्वर्गे सहगमनम् ।	७०
एतशेन सूर्यरथवहनम् ।	७२
दिवि सूर्यारोपणस्थानम् ।	७२

दस्युनिग्रहश्चतुर्थः प्रक्रमः ।

विषयाः

पृष्ठः

भारतीयार्यराष्ट्रे वैदेशिकानार्यदाम्पानामाक्रमणम् ।

७५

दस्यूनामुपद्रावकाणां पुनराक्रमणम् ।

७५

कुयवकृतः कुत्सपराभवः ।

७६

प्रगाथस्याभ्यर्थनासूक्तम् ।

७८

मेधातिथेरभ्यर्थनीयं चाग्रहः ।

८०

मेधातिथेरभ्यर्थनासूक्तम् ।

८१

नीपातिथेरभ्यर्थनासूक्तम् ।

८२

भर्गस्य प्रगाथस्याभ्यर्थनासूक्तम् ।

८३

दस्युपरिपीडितानामार्याणामिन्द्रशरणे गमनम् ।

८४

इन्द्राय कुत्सप्रमुखानां स्वदुःखाश्रावणम् ।

८५

देवेन्द्रस्य दस्युनिग्रहणार्थं भारतवर्षे सपरिकरमागमनम् ।

८५

दस्युनिग्रहणार्थमिन्द्रस्याभिक्रमणम् ।

८५

इन्द्रस्य निषधगिरौ समुपनिवेशः ।

निषधपर्वताभिज्ञानम् ।

८६

निषधगिरौ विश्रान्तायन्द्राय कुत्सस्य यत्कालेतिकर्तव्यानुमन्त्रणम् ।

८८

स्वागतीयसभां प्रस्तुत्य नाभाकृता इन्द्राग्नयोः स्वागतप्रशस्तयः ।

८८

इन्द्रस्यातिथ्यपरिचर्या ।

८९

विश्वामित्रकृतो देवेन्द्राय भोजनसमये मधुवाकः ।

९०

देवभेदेन सोमपानसमयभेदः ।

९१

निषधगिरौ समरारम्भणीयः सोमाभिषवः प्रमहाख्यः ।

९१

वीरपानप्रमहे विश्वामित्रकृतो दस्युवधाभ्यर्थनासूक्तपाठः ।

९२

नाभाकस्य काण्वस्य दस्युवधाभ्यर्थनासूक्तम् ।

९३

दस्युनिग्रहोपायचिन्तायां कुत्सेनोपायप्रदर्शनम् ।

९४

विषयाः

पृष्ठः

दस्युनिग्रहार्थं कुत्सप्रदर्शितमार्गाश्रयणम् ।	६५
आयुराजस्य प्रतिष्ठानपुराधिष्ठातुः परिचयः ।	६५
अप्रतिरथमहोवाकः ।	६६
युद्धयात्रारम्भे राजपुरुषेणाप्रतिरथेनाप्रतिरथसूक्तपाठः ।	६६
नृमेधपुरुमेधकृता मरुद्गणाभ्यर्थना ।	६७
नृमेधपुरुमेधयोः इन्द्राय बृहद्गानम् ।	६८
निपधात् प्रस्थितेनेन्द्रेण आदौ सरयुपारस्थार्यराजद्वयहननम् ।	६८
सरयुनदीपरिचयः ।	६९
अर्णोच्चित्ररथयो स्वजातिविद्वेषो वधे हेतुः ।	१००
सरस्वतीप्रान्तवासिचित्रराजापेक्षया सरयुप्रान्तवासिनश्चित्ररथस्य भिन्नत्वम् ।	१०१
अर्णोच्चित्ररथयोर्गन्धर्वत्वम् ।	१०१
सप्तदस्युराजराष्ट्राभिक्रमणम् ।	१०१
पर्वतयात्रायां रासभरथादयः परिकराः ।	१०१
रौहिणासुरनिपातः ।	१०२
अहिनिर्व्यातिनम् ।	१०२
शंवरहत्यम् ।	१०३
कृष्णासुरत्वगुत्कर्तनम् ।	१०५
बङ्गुदादिदस्युग्रामाणां निर्मूलनम् ।	१०८
शुष्णस्य निगडबन्धनम् ।	१०९
कुत्सयवीयम् ।	१०९
पञ्चाशत्सहस्रदस्युनिग्रहणम्	१०९



इन्द्रविजयाभिनन्दनं पञ्चमः प्रक्रमः ।

विषयाः

पृष्ठः

विज्ञानशालायां भारतीयाय्यैः कृतः कृतज्ञतासूचको विजयमहोत्सवः । १११-१३४

सारस्वते सूर्यसदने विजयाभिनन्दनमहोत्सवः । १११

वीरपानप्रमहाध्यक्षविश्वामित्रकृतमिन्द्राभिनन्दनम् । ११२

शान्तिकवीरपानानन्तरं प्रमहमुखेन कृतसेन कृतमिन्द्रविजयाभिनन्दनसूक्तम् । ११२-११५

इन्द्रविजयाभिनन्दने वार्षागिराणां कुत्ससहयोगेनात्मसमर्पणं सूक्तम् । ११६-११७

कुत्सवदन्येपामप्यार्याणां धन्यवादरूपाः सूक्तवाकाः । ११७-११६

हिरण्यस्तूपः । ११६

आङ्गिरसः सव्यः । १२१

गृत्समदः । १२३

वामदेवः । १२५

वामदेवं प्रति इन्द्रेण स्वचरितानुवर्णनम् । १२७

पुनर्वामदेवकृतमिन्द्रानुकीर्तनम् । १२७

चभ्ररात्रेयः । १३०

अवस्युरात्रेयः । १३०

गातुरात्रेयः । १३१

संवरणः प्राजापत्यः । १३१

वसुकः । १३१

अष्टादंष्ट्रो वैरूपः । १३२

शतप्रभेदनो वैरूपः । १३२

बृहदुक्त्यो वामदेवः । १३२

वत्सः काण्वः । १३३

भुष्टिगुः काण्वः । १३३

मेध्यः काण्वः । १३३

नोधा गौतमः । १३३

अङ्गना औरवः । १३४

विषयाः

पृष्ठः

कृतज्ञतास्तुतिस्त्रकपाठानन्तरमिन्द्रेण कुत्साय देवभूषापचिच्छदैः स्वसारूप्यं सोम- सग्विश्वेति द्विविधं प्रीतिप्रसाददानम् ।	१३४-१३५
देवेन्द्रस्य पुनः स्वर्गे गमनम् ।	१३५
सभाविसर्जनावसरे जिगमिषुं देवेन्द्रं प्रति विश्वामित्रस्य प्रणयवचनम् ।	१३५
इन्द्राकुत्सयोर्वपादिसाम्यकृतसारूप्ययोः स्वर्घाय सहप्रस्थानम् ।	१३६
स्वर्गे विजयाभिनन्दनीयः प्रमहः ।	१३७
इन्द्रस्तुतिविधानाय नृमेधपुरुमेधभ्यां मरुद्गणमभिलक्ष्य मन्त्रपाठः ।	१३७
नृमेधपुरुमेधकृता देवेन्द्रस्तुतिः ।	१३७
पुनर्नृमेधपुरुमेधकृतं देवेन्द्राभिवर्णनम् ।	१३८
तिरश्चीर्द्युतानो वा ।	१३८
बभ्रो बैलानसः ।	१३९
सप्तगु स्वर्णरः ।	१३९
अभिगरप्रतिगरनियमः ।	१३९
सप्तगुमुखेन देवानामभिगरे देवेन्द्रस्य प्रतिगरः ।	१४०
उदयनीयं परिशिष्टाख्यानम् ।	१४१-१४२
दस्युभिः सारस्वतमूर्यापहरणम् ।	१४१
सीरियादेशे बालवकभवननिर्माणम् ।	१४१
सरस्वत्याख्यत्राह्णीसूर्यप्रतिनिधित्वेनात्राह्णीसूर्यप्रातःपाना ।	१४२
पूर्वभारतस्य पश्चिमसीम्नि सूर्येऽस्तमिते पश्चिमभारतस्य पश्चिमसीम्नि किञ्चित्कालं सूर्यदर्शनम् ।	१४३-१४४
भारतवर्षीय वैदिकधर्मस्योत्थानपतनयोर्देवो हेतुः ।	१४६
पश्चिमदेशीयसूर्योदयानन्तरं पुनः पूर्वदिशार्यसूर्योदयः ।	१४७
वैदेशिकदस्युभिः परिपीडितानां स्वदेशीयानामन्ततो विजयः ।	१४७

॥ ग्रन्थसम्पूर्तिः ॥



॥ ॐ तत् सत् ॥

विज्ञानेतिवृत्तवादस्य पञ्चोपाख्यानस्य तृतीयोपाख्यानरूपं
भारतवर्षीयाध्योपाख्यानं प्रारम्भ्यते ।
भारतपश्चिमोपक्रमे त्रैलोक्यप्रसंगः ॥ १ ॥

देवयुगे त्रैलोक्यं त्रिविधमिदं ब्रह्मणाऽऽदिष्टम् ॥
अग्निदैवतमध्यात्मं तत्साम्प्रेनाग्निभूतं च ॥ १ ॥

तद्विष्यं शारीरं भौमं चेति क्रमदुक्तम् ॥
अग्निर्वायुश्चेन्द्रश्चेति त्रिलोक्याः प्यते दिव्यम् ॥ २ ॥
पृथ्वीयमग्निलोकः सूर्यो द्यौरिन्द्रलोकः सः ॥
अनयोर्मध्ये वायोर्लोकः स्यादन्तरिक्षमिदम् ॥ ३ ॥
एतेऽतिप्रावानो देवास्तेषु त्रयस्त्रिंशत् ॥
वसुरुद्रादित्याख्या द्वावन्यावश्विनौ चेति ॥ ४ ॥

गुहनाभ्यन्त पृथ्वीर्धौ ह स्तकान्तरन्तरे व्योम ॥
 छरमुरश्च शिरश्चेत्यधवा देहे त्रिलोकी त्वान् ॥ ५ ॥
 उदरगुहाऽग्नेर्लोको लोको वायोरुरोगुहाऽध्यत्मम् ॥
 लोकः शिरोगुहैन्द्रः सर्वे प्राणात्तदायत्ताः ॥ ६ ॥

	अत्रिलोक पृथ्वी १	वायुलोक. अतः स्थ २	अन्तर्लोक गौ ३
अधिदेवम्	६ मिश्र (२११.१०.०.) वि ६।११।२१	१४ पञ्चम ३३० म मिश्र ११।२०।३०	३१ मिश्र ११।२०।३० ३३।३०।३०
अधनालं	७ अधनालं	३३ अधनालं	३३ अधनालं
अधिभूतं	१० अधिभूतं	३३ अधिभूतं	३३ अधिभूतं

भौमत्रैलोक्यम् ।

एवं कृतमग्निभूतं भूमौ त्रैलोक्यमत्र देवयुगे ॥
 अधिदेवतवत् तत्र च विहितानि हि नामरूपकर्माणि ॥ ७ ॥
 मनुजार्तैर्यग्योना देवा भौमत्रिलोकीति ॥
 वैवस्वतमनुविद्वं व्यवस्थितं त्वत्र मनुजत्वम् ॥ ८ ॥
 मानुःलोकः पृथ्वी तैर्यग्योऽन्तरिक्षं स्यात् ॥
 दैवं लोको द्यौरिति भौमं त्रैलोक्यमाख्यातम् ॥ ९ ॥
 अधिपतिरग्निः पृथ्वा वायुरधीशोऽन्तरिक्षस्य ॥
 इन्द्रो दिवस्पतिश्चाध्यक्षाख्या दिव्यवत् कल्पाः ॥ १० ॥
 दक्षिणसमुद्रतोऽग्नेर्लोकोऽस्ति हिमालयं यावत् ॥
 अलतायिगिरैन्द्रो लोकत्रोत्तरसमुद्रान्तः ॥ ११ ॥
 यस्तु हिमाचलशैलादलतारथचलान्त आन्तरो देशः ॥
 वायेर्लोकः स इदं त्रैलोक्यं भूतले विद्यात् ॥ १२ ॥
 भारतमग्नेर्लोकोऽस्त्यैरावतवपमिन्द्रलोकोऽन्यः ॥
 अनयोर्मध्ये मरुतां लोको देवाः स्थितास्तेषु ॥ १३ ॥
 उत्तरकुरुवः कथिताः श्रृङ्गिरेरुत्तराः पुराणेषु ॥
 नीलगिरेरुत्तरतत्तूकार्ते भारते भैष्मे ॥ १४ ॥

भौमत्रैलोक्यवासिषु औपचारिकाः शब्दव्यपदेशाः ।

भारतवर्षस्थानामासीत् कल्पतं मनुज्यदेवत्वम् ॥
 उत्तरकुरुस्थितानां देवत्वं वा मरुत्त्वमन्येषाम् ॥ १५ ॥
 अग्नेः प्रजा मनुष्या भारतवर्षं नियन्त्रिता मनुना ॥
 ऐन्द्री प्रजा तु देवा उत्तरकुरुषु स्थिता अभवन् ॥ १६ ॥

प्राचीनत्रैलोक्ये एशियादेशेऽद्यापि त्रैलोक्यविभागाभासः ।

भौमं यत् त्रैलोक्यं तदिदानीमेशियानाम्ना ॥
 ख्यातं, तत्र च देवासुरसन्ताना वसन्त्यद्य ॥ १७ ॥
 अद्याप्येते देशास्त्रिधा विभक्ता प्रदृश्यन्ते ॥
 ते च त्रयोऽपि लोकाः प्रत्येकं सृष्टिंवा मित्राः ॥ १८ ॥

हिन्दुस्तानं पारस्तानं चेत्यस्ति दक्षिणतः ॥

चीनस्तातारो वा मध्ये रूसो द्विधोत्तरतः ॥ १३ ॥

तातारस्य रूसदेशस्य च पुरायुगे भौमवर्गत्वम् ।

जुडैशियान्ततः प्राक् चीनात् प्रत्यक् तु विष्टप ब्राह्मन् ॥

रुक्केशियादिपञ्चमरूसप्रान्तोऽत्र विष्टपं विष्णोः ॥ २० ॥

आसीद् विष्टपमन्द्रं प्राग्रूसः सायिवीर्याख्यः ॥

इत्थं प्रसिध्यति स्म त्रिविष्टपं स्वर्गलोकोऽसौ ॥ २१ ॥

सायिवीरियोत्तरीयकतिचिद्भारास्य समुद्रग्नत्वम् ।

यावानद्य स रूसस्तावानखिलः पुराऽभवत् स्वर्ग ॥

अपराजिता दिगेषा यो देश सायिवीरिया नाम ॥ २२ ॥

इह सायिवीरियासौ यद्यप्यद्यात्स्यसभ्यजनताढ्या ॥

कृच्छ्रप्रधानभूमिं किन्त्वासीत् सा न चेदशी पूर्वम् ॥ २३ ॥

इह सायिवीरियातो यदुदकप्रान्ते समुद्रतटम् ॥

यश्च समुद्रप्रान्तो भूरितुपारावृतोऽद्यास्ति ॥ २४ ॥

न्यू सायिवीरिया या प्रसिध्यति स्लेच्छभापायाम् ॥

तत्र पुराऽसीन्नगरं सोद्यान विबुधजनताढ्यम् ॥ २५ ॥

अपि वनमासीन्नानावृक्षचित् पशुभिरावृतं वटुभिः ॥

कालेन तत् तुपारप्रवर्षणाद् भ्रंशमायातम् ॥ २६ ॥

अतएव तत्र कूले समुद्रगर्भे कदा च लभ्यन्ते ॥

मेमाथनम करिणां दन्ता बहुधाऽस्थिपञ्जरा अपि वा ॥ २७ ॥

सपादपड्डस्तमितः स उच्च पादोनिर्तैकादराहस्तदीर्घः ॥

सपादपड्डस्तमितेन दन्तद्वयेन मेमाथकरी युक्तोऽभूत् ॥ २८ ॥

दन्तोस्य वक्रो महिषस्य शृङ्गवत् कृष्णानि लोमानि तनां तद्वर्णवत् ॥

न चेदृशः सप्रति दृश्यते करी यथा स मेमाथकरी पुनऽभवत् ॥ २९ ॥

एके दराश्च द्विशिरोधराः पुरा मेरुवृत्तामान इगभवन् जगत् ॥

न चेदृशा संप्रति पक्षिण कचिद् दृश्यन्तः प्रागे तु युगे जगत्पुनः ॥ ३० ॥

विज्ञायते तेन पुरा युगेऽभवद् वनं पशुनान्मितेत्तरान्गवे ॥

स्थाने जनानां च पुराणि भूयसा तदैव सन्ति न च तर्हि देयता ॥ ३१ ॥

स्वर्गीयविष्टपत्रयविध्वंसे दैवो हेतुः ।

नाकस्थविष्णोः परितस्तु वेद दृग् व्यासार्धजे सञ्चरति ध्रुवं ध्रुवः ॥

वृत्ते ध्रुवतत्र तदा पुगं युगे प्राग्मेरुखस्वस्तिकगोभिर्जित्यभूत् ॥ ३२ ॥

ध्रुवादध्वन्तादतिशय्य शैत्यं प्रवर्तते तेन तदा पुरात्वे ॥

प्राग् मेरुदेशे बहुशैत्यमासीत् नत्तत्तराम्भोधितटप्रदेशे ॥ ३३ ॥

एव ध्रुवे जनयते च तुषारवर्षा विभ्रंशयत्यपि पुराननवासिलोकान् ॥

तौषारवर्षाणवशाद्विव नाशमायन् प्राग् मेरुगाः कचिदुदककुरुभूमिखण्डाः ॥ ३४ ॥

विज्ञाने दिव्याया इधैतिहासे भौम्यास्त्रिलोक्या व्यवहारः ।

इत्थं त्रिलोकी त्रिविधा निरुक्ता दिव्या च भौमी च शरीरगा च ॥

त्रियाग्निभिः सा शवसोनपाद्भिर्धृता पृथग् देवनिकायपूर्णा ॥ १ ॥

विज्ञानभाषासु यदि त्रिलोकीप्रसंग आयाति स दिव्य एव ॥

ऐतिह्यभाषासु यदि त्रिलोकीप्रसङ्ग आयाति स भौम एव ॥ २ ॥

दिव्यत्रिलोकीमन् दिव्यदेवा भौमत्रिलोकीमन् भौमदेवा ॥

ऐतिह्यमत्र प्रवदामि तस्माद् भौमा हि भाव्या इह लोकदेवाः ॥ ३ ॥

ब्रह्मा गुरुः शिष्यतीह विद्यया शक्रः प्रभुः शास्त्यनुगृह्य वा वलीः ॥

विष्णुः सुहृद् यज्ञजसंपदाऽवति त्रयोऽपि भौमा इतिहासगा इह ॥ ४ ॥

विज्ञानेऽस्ति यथैतेषु त्रिषु सव प्रतप्तिम् ॥

तथेह भौमस्वर्गेऽपि त्रिषु तेष्ववलम्बितम् ॥ ५ ॥

भारतवर्षस्य भौमत्रैलोक्यान्तर्गतपृथ्वीलोकत्वम् ।

ॐ दिवमधिजगुर्वृथा यां पूर्वयुगे सा बभूव वसुधायाम् ॥

उत्तरमेरौ स्वर्गतत्र स वसति स्म देवतावर्ग ॥ १ ॥

दक्षिणतः प्राग् मेरोरिरावतीनिगमाद् गिरेस्तूदक् ॥

अग्रमन्नरिक्तलोको वसतिः सा देवयोनीनाम् ॥ २ ॥

देशो य उदग् विपुवत इरावतीनिर्गमाद् गिरेस्त्वर्वाक् ॥

तदिदं भारतवर्षं पृथ्वीलोकस्त्रिलोक्यां स ॥ ३ ॥

भारतवर्षं मानषदेशः शिखिराशिरविकुलजोऽत्र नरेशः ॥

धेनुभिरन्नधनैरपि धन्यः स हि देशानामिह मूर्द्धन्य ॥ ४ ॥

यावान् मनुष्यलोकः सा पृथ्वी तत्र भारतं वर्षम् ॥

तत्र च मनुष्यजन्तः पृथ्वीजन्तश्च लाक्षणिकः ॥ ५ ॥

इति भारतपरिचये त्रैलोक्यप्रपङ्गः समाप्तः ॥ १ ॥

ॐ परद्वज उवाच — अमलनोक्तस्वर्गे लोकः श्रूयते नोपलभ्यते ॥ तमहं ज्ञानुमिच्छामि तद्भ-

वान् वक्ष्यमहति ॥ १ ॥ भृगुवाच । उत्तरे हिमवत्पार्श्वे पुण्ये सर्वगुणान्विते ॥ पुण्य क्षेत्रे च

यो देशः स परो लोक उच्यते ॥ २ ॥ स स्वर्गसदृशो देशः तत्र युक्ताः शुभाः शुभाः काले मृत्युः

प्रभवति स्पृशन्ति व्याधयो न च ॥ ३ ॥

भारतं शान्तिं प. मोक्षधर्मे

नामधेयप्रसङ्गः ॥ २ ॥

भारतवर्षस्य चत्वारि नामानि ।

(४) (१)
यदिदं भारतवर्षं स्कान्दे तन्नामिवर्षमप्युक्तम् ॥

(२) (३)
आर्षभवर्षं चान्यैर्हैमवतं वर्षमप्यन्यै ॥१॥

भरतस्यायं देशस्तस्माद् भारत इति प्रथितः ॥

भरतं त्वेतामनेकं स्मरन्ति पौराणिकाः सर्वे ॥२॥

(१) भारतशब्दव्यपदेशे मतचतुष्टये पौराणिकं प्रथमं मतम् ।

स्वायंभुवस्य हि मनोरागनीधः सूनुरस्य नाभिस्तु ॥

नाभेर्ऋषभस्तस्माद् भरतस्तस्यैव देशोऽभूत् ॥३॥

१—“आग्नीध्रसूनोर्नाभिस्तु ऋषभोऽभूत् सुतो द्विज ॥

ऋषभाद् भरतो जजे वीरः पुत्रशताद्वरः ॥४॥

हिमाह्वं दक्षिणं वर्षं भरताय पिता ददौ ॥

तस्मात्तु भारतं वर्षं तस्य नाम्ना महात्मनः” ॥५॥ (इति मार्क० अ० ५०)

२—ततश्च भारतं वर्षमेतल्लोकेषु गीयते ॥

“भरताय यतः पित्रा दत्तं प्रातिष्ठता वनम्” ॥६॥ (इति अथर्ववे १ अ० २

अ० ३२ श्लो०)

३—“नाभेः पुत्रश्च ऋषभः ऋषभाद् भरतोऽभवत् ॥

तस्य नाम्ना त्विदं वर्षं भारतं चेति कीर्त्यते” ॥७॥ (इति स्कान्दे मार्क०

कौमार ३७ अ०)

४—पौराणिकं द्वितीयं मतम् ।

विदुरपरे दौप्यन्तिर्भरतः शाकृन्तलेयो यः ॥

वीरः स सर्वदमनस्तन्नाम्ना देश एषोऽस्ति ॥१॥

१—“तुमुरोधाच्च दुप्यन्तो दुप्यन्ताद् भरतोऽभवत् ॥

शकुन्तलायां तु वली यन्त्र नाम्ना तु भारताः” ॥२॥ (अग्निपु० २७८)

एष जगद्विजयीति प्रथितो वेदे पुराणे च ॥

काण्डे त्रयोदशे सोऽश्ममेधकृच्छ्रतपधृत्तबुध् ॥ ३ ॥

२—‘अष्टा सप्तति भरतो दौष्यन्तिर्यमुना मनु ॥’

गङ्गायां वृत्रघ्नेऽवधत्तात्पञ्चपञ्चाशत् हयान् ॥ ४ ॥

शकुन्तला नाढपित्यप्सरा भरतं दधे ॥

पुरा सहस्रानिन्द्रायाश्चान्मेध्यान् य आहरत् ॥

विजित्य पृथ्वीं सर्वाम् ॥ ५ ॥

महद्दध भरतस्य न पूष नापरं जनाः ॥

दिवं मर्त्यं इव बाहुभ्यां नोदापुः पञ्चमानवाः” ॥ ६ ॥ (शतपथेः १३-का०)

स्कान्दे प्रभासखण्डे द्वासप्ततिशततमेऽध्याये ॥ (१७२)

यत्त्वापभ भरतस्याश्वमेधकर्तृत्वमित्यमाख्यातम् ॥ ७ ॥

तत इह भिन्नं मन्ये तस्मिन्मेधं यमाहरद् भरतः ॥

दौष्यन्तिः संख्याया भेदाद् वेदे पुराणे च ॥ ८ ॥

३—“भरतो नाम राजाऽऽसीदः प्रोध्रः प्रथितः क्षिनौ ॥

यस्येदं भारतं वर्षं नाम्ना लोकेषु गीयते ॥ ९ ॥

पट्पञ्चाशदश्वमेधान् गङ्गामनु चकार यः (१६) ॥

त्रयस्त्रिंशद् यमुनाप्रान्ते (३०) भरतो लोकपूजितः” ॥ १० ॥

भरतरयैताः कीर्तिर्गाथाः पूर्वैः पुरा गीताः ॥

भरतो हीमां पृथिवीं मनुष्यलोकं शशास चिरमेतम् ॥ ११ ॥

तन्नाम्नायं देशो भारत इति विश्रुतो लोके ॥

पौराणिकमतमेतत्सा भरताय प्रशस्तिचादृक्किः ॥ १२ ॥

भरतेनैतं नैते न भारता इति किल श्रुता देशाः ॥

कुलमेव तेन भारतमस्योक्तं भारताख्याने ॥ १३ ॥

४—दुष्यन्तस्तु ततो राजा पुत्रं शाकुन्तलं तदा ॥

भरतं नामतः कृत्वा यौवराज्येऽभ्यपेचयत् ॥ १४ ॥

स राजा चक्रवर्त्यासीत् सार्वभौमः प्रतापवान् ॥

भरताद्भारती कीर्तिर्येनेदं भारतं कुलम् ॥ १५ ॥ (आदिप० अ० ७४)

(३) वैदिकमतानुसन्धानम् ।

१—ऋषो वयं तु पूर्व देवयुगेऽप्यत्र मानुषे लोके ॥

अग्निर्भरतोऽधिपतिर्नियुक्त इन्द्रेण मनुरासीत् ॥ १ ॥

२—आसीद् व्यवस्थितं तु त्रैलोक्यं यत्र देवयुगे ॥

तत्र च भारतवर्षं पृथ्वीमाहुर्मनुष्यलोकः सं ॥ २ ॥

३—स्वर्गेश्वरो यथेन्द्रो यथान्तरिक्षेश्वरो वायुः ॥

पृथ्वीश्वरस्तथाऽग्निर्भरत इति ह्यस्य नामासीत् ॥३॥

४—देवेश्वरो यथेन्द्रो वायुरयं देवयोनीशः ॥

अग्निस्तथा मनुष्येश्वरो मतो भारतो नाम्ना ॥४॥

५—शवसोनपात एते दिवि मरुतो वायुरन्तरिक्षेऽस्मिन् ॥

भूमावग्निर्भरत एवं वरुणः समुद्रेऽप्यु ॥५॥

६—“दिवा यान्ति मरुतो भूम्याऽग्निरयं वातो अन्तरिक्षेण याति ॥

अद्विर्याति वरुणः समुद्रेऽप्यमानिच्छन्तः शवसोनपातः” ॥६॥ (ऋ० सं० ११६११४)

७—ऋग्वेदस्य तुरीयकर्मण्डलसूक्ते हि पञ्चविंशतिके ॥ (४१२५१४)

भारत इत्याख्यातं नामाग्नेर्भूमनुष्यलोकपतेः ॥७॥

८—“तस्मा अग्निर्भरतः शर्म यं सज्ज्योक् पश्यात्सूर्यमुच्चरन्तम् ॥

य इन्द्राय सुनवामेत्याह नरे नर्याय नृतमाय नृणाम्” ॥८॥ (११२५१४)

९—अपि च यजुर्वेदस्यावृत्ति चोक्तो दर्शपूर्णमासेष्टौ ॥

ॐ अपि सामिवेन्यक्रमणि उपमदनं भारतत्याग्नेः ॥९॥

१०—अग्ने मह्यं असि ब्राह्मण भारतेति ॥

अस्मिन्निगदे मन्त्रे भरतोऽग्निः पठ्यते स देवेभ्यः ॥

हव्यं भरति स्मेति ब्राह्मणवाग् भारतं वतः प्रथितम् ॥१०॥

११—अग्निर्व भरतः । स वे देवेभ्यो हव्यं भरति ॥ (इति कोपोनकीब्राह्मणम्)

एष हि देवेभ्यो हव्यं भरति तस्माद् भरतोऽग्निरित्याहुः ॥

एष हव्यं देवाः प्रजाः प्रारो

भूत्वा विभर्ति तस्माद्वेवाहुः—भारतेति—तस्माद्वेवाहुः भरतवदिति ॥११॥

(इति वाजसनेयब्राह्मणम्)

१२—वैवस्वतमनुभिन्नो मनुरग्निरयं मनुष्यलोकेऽशः ॥

भरतो नाम्ना तस्य च भवनानि त्रिषु समुद्रक्षेत्रेषु ॥ १ ॥

॥ अत्रापिशब्दे दर्शपूर्णमासेष्टौ प्रगावब्राह्मणेऽग्निनिविदुपसंभ्रमः ॥ स यथा—“अग्निर्भरतः दैव्यो होता देवान् यज्ञद्विदाश्च कित्वान् मनुष्यदं भरतवद्—इति—अग्नेः मनुष्यलोके स दैव्यः प्रवश्ये अग्निं प्रवृणीते ॥ अत्राभिदै विक् अष्टात्मिको वा प्राणोऽग्निर्भरतश्च एष । एष यः तेन तादात्म्यविवक्षणाच्च मनुष्यलोकेऽश्वस्य देवदूतस्यनेर्भरतवत्त्वं भासते भरतः च निबन्धावशादिष्यते ॥ उभयथा व्यवहारदर्शनात् ॥

विवस्वद्दूतत्वमस्याग्नेः श्रूयते ॥

१३—अग्निर्जातो अथर्वणा विदद्विश्वा न काव्या ॥

भुवद्दूतो विवस्वतः ॥ (ऋ० सं० १०।२२।५)

१४—एतं भारतवर्षाधीश्वरमग्निं मनुष्यलोकपतिम् ॥

शवसोनपातमैन्द्रं महर्षयो वर्णयन्ति स्म ॥ २ ॥

१५—त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः ॥

देवेमभिर्नुप्रे जने ॥ ३ ॥ (६।१६।१११ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः)

१६—यो अग्निः सप्तमानुषः श्रितो विश्वेषु सन्विषु ॥

तमागन्मन्त्रिपत्स्यं मन्धातुर्दस्युहन्तममग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ॥ ४ ॥ (तोभाकः)

काण्वः । ८ । ३६ । ८)

१७—६।१५।८। त्वां दूतमग्ने अमृतं युगे युगे हव्यवाहं दधिरे प्रायुमीद्व्यम् ॥

देवासश्च रतांसश्च जागृन्नि विभुं विश्वपतिं नमसा विपेदिरे ॥ ५ ॥

१८—६।१५।९। विभूषयन्नम्र उभयां अनुव्रता दूतो देवातां रजसीं समीपसे ॥

यत्तेवीति सुमतिमावृणोमहेऽधमा नृस्त्रिवरुथः शिवो भवः ॥ ६ ॥

१९—६।१५।१३। अग्निर्होता गृहपतिः स राजा विश्वावेद जज्ञिमा जातवेदाः ॥

देवानामुतया मर्त्यानां यजिष्ठः स प्रयजता मृता वा ॥ ७ ॥

२०—६।१६।१६। अग्निरमामि भारतो बृहदा पुरुचेतनः ॥

दिवोदासस्य सप्ततिः ॥ ८ ॥

२१—६।१६।४५। उदग्ने भारत शुसदजज्ञेः णदविद्युत्तः ॥

शोभा विभाद्यज्ञः ॥ ९ ॥

२२—६।१६।४६। त्वाम्रीडे अभद्रिताभरतो वाजिभिः शुनम् ॥ ईजेः ऋषेः

यज्ञियम् ॥ १० ॥

२३—इत्थं बहुया बहवो महर्षयो भारतं वदन्त्यग्निम् ॥ तत्समयो भरतः

स दिवोदासः स मान्वाता ॥ ११ ॥

२४—मत्स्यपुराणध्याये चतुर्देशाधिकशतप्रमिते ॥ (११४) मनुसंख्याद्

भारतमुक्तं स मनुन्तु लोकपालोऽग्निः ॥ १२ ॥

२५—“भरणात्प्रजनाच्चैव मनुर्मरुत उच्यते ॥ एतन्निस्कवचनाद् वर्षं तद् भारतं

सृजाम् ॥ १३ ॥

२६—यत्त्वयं मानवो द्वीपेस्तिर्यग्यामः प्रकीर्तितः ॥ य एनं जयते कृत्स्नं स

सम्राडिति कीर्तितः ॥ १४ ॥

(४) लोकमतम् ।

भूमौ क्षेत्रीयाग्निः सस्यं भरते नरस्य देहेऽपि ।
अग्निर्विश्वजनानां भरणप्रवणां मर्निं घत्ते ॥ १ ॥
दातारो नोऽभिवर्द्धन्तां वेदा मन्ततिरेव च ।
श्रद्धा च नो मा व्यगमद्बहुदेयं च नोऽग्नित्ति ॥ २ ॥
अन्नं च नो बहु भवेद्वृत्तिर्यश्च लभेमहि ।
याचितारश्च न सन्तु मा च याचिष्म कचन ॥ ३ ॥ इति ॥
एता आशिष एषामपेक्षिता भारतीयानाम् ।
व्यवहारे मन्तव्या नीतिरियं भारतयास्य ॥ ४ ॥
अन्नैषनैर्यतोऽयं देशस्त्वेपां परेपां च ।
उदरं भरति ततोऽयं देशो भारत इति प्रथितः ॥ ५ ॥

हिन्दुस्तानशब्दस्य भातैकदेशमत्रान्वयवस्था ।

हिन्दुपदेन च हिन्दुस्तानपदेन च यद्वहुरव्यतना ।
भारतवर्षं तन् खलु नामाद्वैत्याय जानीयात् ॥ १ ॥
सिन्धुनद्योऽयं यद्विशि तद्विश्वं भारतं पृथ्वम् ।
सिन्धुस्थानपदेन व्यवजह्नु सिन्धुपश्चिमगा ॥ २ ॥
ॐ अपि पारमीकजातेरस्ति वसातीरनामके ग्रन्थे ।
पौरुष्य भारताय हिन्दुपदं सर्वतः प्रथम् ॥ ३ ॥
+ जरथुस्तस्य यदायतमस्त्यस्मिन् पञ्चपश्चिमम् (६५) ।
तत्र व्यासो हिन्दुस्तानं गत उदीरितो भक्त आ ॥ ४ ॥
व्यासो नाम ब्राह्मण आयातो हिन्दुदेगाद् य ।
तत्सदृशो धीमानिह कश्चिन्नः नीति तन्मयाय ॥ ५ ॥

* 'वैव हिद आ जगडते !'

म पुन (न्यास) वि मय न प्र १८८ ।

— "अकृन् विरहनेन व्यास नाम । त्वं मया यथा श्रुतम् ।"

ਕੀ ੬੫ ਵੀਂ ਆਪਣੇ ।

एको ब्रह्मणो व्यसो नाम सिद्धा तनादग- २ पुनं पुनः ५ ३ ११ ॥

= अपि सत्रिषष्टिशततम आयत उक्तं पुनस्तत्र ।

व्यासमुनेर्बाह्मीके गमनं गस्तापनृपसमये ॥ ६ ॥

स प्रेत्यभावविषये व्यासात् संवदितुमेव गस्तापः ।

जरथुस्तमाजुहाव च धर्माचार्यं स्वदेशस्थम् ॥ ७ ॥

गुप्ताश्वापभ्रंशो गस्तापः क्षितिप ईराने ।

व्यासात् स पुनर्जन्मनि संदेहं स्वं निराचक्रे ॥ ८ ॥

× गस्तापेन तु पृष्टतद्व्यवहारानुसारतो व्यासः ।

हिन्दुस्तानाभिजनं विज्ञपयामास चात्मानम् ॥ ९ ॥

इति भारतपरिचये नामधेयप्रसङ्गः समाप्तः ॥ २ ॥



= चूं व्यास हिंदी बलख आमद । गस्तस्य जरतुस्तग बखवॉट" । १६३ वीं आयत ।

यतो व्यासः सिन्धुस्थानीयो बाह्मीके आगतेः । (ततः) गुप्ताश्वः (ईरानभूपः) जरथुस्त-
माजुहाव ।

× "मनमरदे अमि हिन्दी नङ्गादे ।" अम्महं पुरुषः सिन्धुस्थानीयोऽनुजातः ।

सीमाप्रसङ्गः ॥ ३ ॥

(१) पौरस्त्यपाश्चात्यभेदाद् भारतवर्षद्वैविध्ये चतुर्दशप्रमाणानि ॥ १४ ॥

पौरस्त्यं पाश्चात्यं भारतवर्ष द्विधाकृतं भवति ।
 अनयोरिति विभाजक एष नदः सिन्धुरिति विद्यात् ॥ १ ॥
 प्राच्यां दिशि तु समुद्रे यो देशः फारमोसाख्यः ।
 भारतवर्षस्यैषा सीमा पूर्वाति पूर्वस्य ॥ २ ॥
 यच्च बित्तूचिस्तानं ह्यपगानस्तानमद्य यद् ब्रुवते ।
 ईरानदेश एवं मेसोपोटेमिया देशः ॥ ३ ॥
 अर्ब्रप्रान्ते यवनास्तत्पश्चाल्लोहिताम्भोधिः ।
 एतावत्खलु पश्चिमभारतवर्षं विजानीयान् ॥ ४ ॥
 चीनसमुद्रारब्धं रक्तसमुद्रान्तमिष्यते यदिदम् ।
 भारतवर्षं तत्र च हेतव एते प्रदर्श्यन्ते ॥ ५ ॥

(२) तत्र पुराद्युगीयाः सज्ञाशब्दविशेषाः प्रथमं प्रमाणम् ॥ १ ॥

सिन्धोः पश्चिमतो यः प्रदेशः आलोहिताम्भोधे ॥ तस्य च सज्ञाराब्धः प्रमाणनित्यार्थ-
 देशत्वे ॥ १ ॥

(३) सिन्धुस्थान-पारस्थानशब्दावन्योन्यसापेक्षां प्रान्तवचनौ ।

अद्यत्वे यद् ब्रुवते भारतवर्षस्य सीमानम् ।
 ❀ सिन्धुनदं सा हिन्दुस्थानस्यैतस्य सीमा स्यात् ॥ १ ॥
 पूर्वं भारतवर्षं सिन्धुस्थानाख्यया ब्रुवते ।
 पश्चिमभारतवर्षं पारस्थानं पुरातना ऊचुः ॥ २ ॥
 ईरानमात्रमद्य तु पारस्थानं ब्रवीति किन्चासीत् ।
 निखिलं पारस्थानं सिन्धोरालोहिताम्भोधे ॥ ३ ॥

* यत्तु—आ हिमवत आ च कुमाय्याः सिन्धुर्वैतगणं नदीः नन्दस्योद्भूतः पुः । एतद्वा हिन्दु-
 विचरति तावद् द्रष्टव्यं किम्—इति पैठ न मना निष्ठाः समानमन्तर एते तद्वैदिकस्यैव नाम्नाः प्रदेश-
 शपारिच्छेदपेक्षमर्वाचीन न तु तत्पुराद्युगीयं भारतवर्षं न वेदन् । एतद्वैदिकस्यैव नाम्नाः प्रदेश-
 र्थावर्तदेशस्यापि चर्मसंज्ञेन परिनिष्ठसत्त्वात् ।

(४) पौरस्त्यभारते आर्यवर्तशब्दवत्पश्चिमभारते आर्यायणशब्दः ।

आर्यवर्तः शब्दो भवति यथा भारते पूर्व्ये ।

पाश्चात्येऽपि तथाभिन् आर्यायण शब्द ईराने ॥ १ ॥

(५) पश्चिमभारतस्य ओरियंससंज्ञाऽप्यार्यवंशनिवासमूला ।

रक्तसमुद्रात्प्रागथ सिन्धुनदात् प्रत्यगर्णवात्तूदक् ।

आरालकाश्यपीयनजलधिभ्यां दक्षिणान् देशान् ॥ १ ॥

प्रागोरियंस [ORIENS.] नाम्नाऽनार्यः पूर्वे वदन्ति स्म ।

तेन च पश्चिमभारतमार्यनिकेतनमिति प्रतीतं नः ॥ २ ॥

(६) मतान्तरेण ओरियंसशब्दाभिधानेऽन्यहेतूपन्यासः ।

ऋज्ज्वाधो नामासीत् पश्चिमभारत ऋषिः कश्चित् ।

जरथुस्तत्यामूढोहित्रो ब्राह्मणद्वेषी ॥ ३ ॥

ब्राह्मणविद्वेषात् स हि तेषां ब्राह्मी लिपिं त्यक्त्वा ।

विपरीतां तु खरोष्ठीं लिपिमन्यां कल्पयामास ॥ ४ ॥

ऐन्द्रं देवाराधनधर्मं त्यक्त्वा स वारुणं विद्वान् ।

असुराराधनधर्मं लोके बलवत् प्रचारयामास ॥ ५ ॥

विपरीताचरणात् ते मगा इति ख्यातिमायाताः ।

शाकद्वीपाभिजना मगा इमे ब्राह्मणा अभवन् ॥ ६ ॥

ब्राह्माकानुप्रान्तः शाकद्वीपः प्रसिद्ध आसीत् प्राक् ।

शाकद्वीपाध्यक्षाः शका इति क्षत्रियाः प्रथिताः ॥ ७ ॥

ते म्लेच्छभाष्योक्ताः स्कीथीया स्कीदिया देशाः ।

शकबलदृप्तास्तु मगा युध्वा धर्मं प्रचारयामासुः ॥ ८ ॥

आर्ज्ज्वाधो जरथुस्तस्त्वसुरैरुक्तः स ओरियस्य इति ।

तन्मतधराश्च लोकास्तन्नाम्नेवारियस्य नाम्नोक्ताः ॥ ९ ॥

एषां यावान् देशो युद्धजितस्तन्मतानुगतः ।

सोऽवारियस्य उक्तः कालेनाभूत् स ओरियंस इति ॥ १० ॥

इत्थं केचिद् ब्रुवते तथापि नैतावत् प्रदेशस्य ।

आर्य्यक्षिता हीयत ऋज्ज्वाधोदेहिहर्ष्यत्वात् ॥ ११ ॥

ऋज्राश्ववंशजातैराय्यैर्धृत आसुरो वर्म ।
तेन च पश्चिमभारतमार्यनिकेतनमिति ब्रूम ॥ १२ ॥

(७) एरियाना शब्दोऽप्यार्यनिवासमूलः ।

प्रान्तोऽस्ति मार्गियाना तदधो हिन्दूकुशस्य दक्षिणतः ।
निर्गत्य पश्चिमां प्रागथोत्तरां या शरीफिशैलस्य ॥ १३ ॥
पश्चिमलम्बा वहते तामाहुर्वैदिका नदीं सरयूम् ।
तस्याः प्रान्तो दक्षिण उक्तोऽनार्यैः पुरैरियानेति ॥ १४ ॥

(८) इण्डिया—वामनियादिमब्दा अप्यार्यनिवासमूलाः ।

प्राच्यां तदेरियानाप्रान्तात्प्रत्यगिरेः सुलेमानात् ।
प्रान्तोऽयमिण्डियाख्य कथितोऽनार्यैः स अप्यार्यवसतित्वान् ॥ १५ ॥
अत एव वेदमन्त्रश्चतुर्थमण्डलगते त्रिंशे ।
सूक्तेऽष्टादश आर्योः सरयोः पारे समामनति ॥ १६ ॥
“उतत्या सद्य आर्या सरयोरिन्द्र पारतः ।
अर्णा चित्ररथावधी” इति (४ । ३० । १८) ॥ १७ ॥

इति पुरायुगीया प्रादेशिकसंज्ञाविशेषाः प्रथमं प्रमाणम् ॥ १ ॥

अवरयुगीयाः संज्ञाविशेषा द्वितीयं प्रमाणम् ॥ २ ॥

ओरियंसशब्दवत् पश्चिमे भारते पश्चात् गुरासानगच्छः ।

१—विश्वामित्रः पूर्वं राजासीत् कान्यकुब्जदेशराजः ।
स वसिष्ठस्य कष्टाचिद्वर्तुं गां नन्दिनीमन्त्र्य ॥ १ ॥
सा नन्दिनी तु नैच्छत् तं विद्वानिन्द्रमनुगन्तुम् ।
क्रोधात्सा बहुवारं गुरतो भूमिं तदा व्यग्नन् ॥ २ ॥
तत्र वसिष्ठो वरुणादैच्छत् साहाय्यमात्मनुगन्तुम् ।
उक्तं वेदे सत्यं वरुणेन हि तद्वनिष्ठम् ॥ ३ ॥
वाहीकदेशराजो वरुणोऽयं देवयुगं प्राप्नोति ।
पारस्थानाधीशः सप्तसमुद्रेश्वरोऽसुराधीश ॥ ४ ॥

जग्मुर्वरुणाज्ञप्ताः पारस्थानाधिवासिपञ्चगणाः ।

पह्व—पारद—यवनाः, शककाम्बोजौ परे च दरदाद्याः ॥ ५ ॥

नन्दिन्या तु खुरं ते मूढ्न्यादाय प्रणम्य तां भक्त्या ।

बैश्वामित्रं सैन्यं व्यमर्दयन्नञ्जसा निखिलम् ॥ ६ ॥

तद्वधि ते किल कथिताः खुरधाः खुरदास्तथा कुर्दाः ।

तेषां जनपदसंघः खुरैस्थानं खुरासानम् ॥ ७ ॥

मोगलसम्राट् चावर आह खुरासानमात्मजीवन्याम् ।

अफगानाश्च बलूचिन एकेऽद्याप्याहुरेवमिव ॥ ८ ॥

भारतवर्षीया अपि चक्रुस्तावत्प्रदेशस्य ।

तच्छब्दव्यपदेशं यथोदितं शक्तिसंगमे तन्त्रे ॥

हिङ्गुपीठं समासाद्य मक्केशान्तं सुरेश्वरि ।

खुरासानभिद्यो देशो म्लेच्छमार्गपरायणः ॥ इति ॥ १० ॥

पश्चिमभारते ईरानशब्दोऽप्यार्यनिवासमूलकः ।

२—एवं पुनरिदमखिलं जनपदवृन्दं च सिन्धुतः पश्चात् ।

भूमध्यसागरात् प्रागासीदीराननाम्नैकम् ॥ ११ ॥

ईरानव्यपदेशे त्वार्य्याय एतेणत्वमरणत्वम् ।

मूलमथर्वणि तदरणमुक्तं त्वार्य्यद्विपां वासात् ॥ १२ ॥

आर्य्यद्वेपिजनानामरणानां बाहिका देशाः ।

अपि मूजवन्त एवं महावृषा वा विशिष्यासन् ॥ १३ ॥

अथवा कम्पनशीले प्रयुज्यते शब्द ईराणः ।

भीतानां चानियताभिजनानां देश ईराण ॥ १४ ॥

द्वादशकारणैः प्रथमे सूक्तेऽष्टाविंशके मन्त्रे (अथ० १२ । १ २८) ।

आथर्वणे स शब्दः प्रयुक्त आन्दोलितेऽर्थेऽस्ति ॥ १५ ॥

उदीराणा उतासीनातिष्ठन्तः प्रक्रामन्तः ।

पदभ्यां दक्षिणसव्याभ्यां मा व्यथिष्म हि भूम्याम् ॥ १६ ॥ (अथ० १२ । १ २८)

पश्चिमभारते ओरियंसपारस्थानखुरासानादिशब्दानां शासनभेदेन भिन्नकाले प्रयोगाः ।

३—इत्थं पश्चिमभारतमुक्तं कचिदोरियंसनाम्ना प्राक् ।

पारस्थानं कचन कचन खुरासानमोरानम् ॥ १७ ॥

ईरानखुरासानपर्सियादिशब्दानां महद्देशवचिनः अपि बालभेदेन तत्प्रान्तान्त्रमिदोपि नम् ।

४—अथ तु नवं ब्रूयते नायं देशः समग्र एवोऽस्ति ।

प्रान्तः पारस्थानं प्रान्त इरानं खुरासानम् ॥ १८ ॥

राज्ञां शासनभेदाद् व्यवहर्तृणां च भेदतोऽज्ञानम् ।

प्रान्तं हिरातसंज्ञं केवलमाहुः खुरासानम् ॥ १९ ॥

शासनभेदात् पश्चाद्फगान्तानतः खुरासानम् ।

तत ईरानमिराको रोमकसामोऽथ पश्चिमाश्वोवि ॥ २० ॥

अपि सीरियेति रोमकसानप्रान्तं विदुस्तथैराकम् ।

कैलडिया चासुन्या मेसोपोटेमिया चेति ॥ २१ ॥

मिडिया नाम्नाऽप्यासीत् च खुरासानमन्विता प्रान्तः ।

अथत्वे पर्यायासीरान पर्सियेत्याहुः ॥ २२ ॥

अपि वास्ति काश्यपीयनसिन्धोरानेयतः खुरासानम् ।

तदक्षिणत इराकं तदक्षिणतस्तु पारथियम् ॥ २३ ॥

५—क्रान्तिप्रधान एवोऽस्त्यापृथिवी जन्मतो देशः ।

इह परचक्रक्रांतिययाऽभवत् हि तथाऽन्यत्र ॥ २४ ॥

तस्मादनेकसीमा नामविभागोऽत्र ह्यन्यन्ते ।

क्षुद्रैशियाप्रदेशादामिन्धोरान्य देशस्य ॥ २५ ॥

नियतसंज्ञाव्यवस्थापकभारतीयानां भुवनकोशज्ञाने ज्ञानतुल्यकं तदभेदानामनित्यः ।

६—अस्तु तु यद्वा तद्वा शासनभेदात् देशभेदोऽस्मि ।

न च तच्छास्त्रं यत्कुं शक्यं तस्याव्ययथानाम् ॥ २६ ॥

तस्मादिह भूगोलग्रन्थो वैदेशिभिर्नितराम् ।

शास्त्रं तथा यथेवं व्यवस्थितं भारत शान्तिम् ॥ २७ ॥

शासनदेशविभागो नियतो न भवति किं तेन तदुच्यते ।

आर्या व्यवस्थितं प्राग् देशविभागं निनर्गज इत्तम् ॥ २८ ॥

देशप्रकृति शान्ता न तु शान्तिप्रकृतिर्यो देशः ।

अस्तु च शान्ताऽन्योऽन्यो ह्यनित्यो देशो न शान्तः प्रकृतम् ॥ २९ ॥

तस्मान् सिन्धो पश्चिमदेशोऽस्ति तु शान्तभेदेन ।

यद्यपि पृथग्विद्य दृष्टो यत्तु तदर्थं न भारतं परम् ॥ ३० ॥

इत्यवरयुगीयाः संज्ञादिशेषा इति च प्रसङ्गम् ॥ २ ॥

इन्द्रवरुणनिमित्ते ब्राह्मणानां वैज्ञानिकं वाग्युद्धं तृतीयं प्रमाणम् ॥ ३ ॥

भारतवर्षविभागद्वयहेतुब्राह्मणानां प्राक् ।

वैज्ञानिकवाक्समरभृतीयमस्ति प्रमाणमिह ॥ ३१ ॥

आसुरधर्मं प्रविशतो जरथुस्तस्य देवेन्द्रनिन्दकत्वं विरोधहेतुः ॥

वाह्मीके यो जज्ञे जरथुस्तस्य समये प्राक् ॥

सौत्रामण्यामिष्टौ ब्राह्मणवृन्दे विरोधोऽभूत् ॥ ३२ ॥

आर्ज्याश्चो जरदष्टिर्ब्राह्मण आसीत् तथाययं धृष्टः ।

विद्विष्य देवमिन्द्रं वरुणस्तुद् धर्ममासुरं दध्रे (१)

येऽसून् प्राणान् दधते तेऽमी असुरा महाप्राणाः ।

असुरत्वं तु न येषां तेऽमी देवा. "सुरास्म" इत्यूचुः (२)

इन्द्रप्रियसोमप्रतिद्वंद्वितया वरुणेन सुरानिर्माणम् ।

असुरा विनाश्य सोमं जनयामासुस्तु वारुणी मदिराम् ।

तां च सुरामिति जगद्. पीतामनुतां सुरान् पित्राम इति (३)

असुरवदेव त्वार्या अपि तां पातुं क्रमात्-क्रमन्ते स्म ।

अपि देवेन्द्रः सौत्रामण्यामिष्टौ सुरामपिवत् (४)

गुरुरसुराणामार्योऽनार्याणां यो न्युवास वाह्मीके ।

आर्यैः सुरा न पेया बुद्धिहरीत्युपदिदेश तान् स भृगुः (५)

"सुरा वं मलमन्नानां पाप्मा च मलमुच्यते ।

तस्माद् ब्राह्मणराजन्यौ वश्यश्च न सुरां पिबेत्" (६) (मनुस्मृतौ भृगुः)

आर्ज्याश्चैरिन्द्राधिक्षेपः ।

इन्द्रस्याधिक्षेपं कर्तुमिवन्तेऽसुराः सुरायज्ञम् ।

सौत्रामणीं विधातुं वृषाकपिं ग्रयामासुः ॥ ३३ ॥

गप वृषाकपिरासीदसुरेन्द्रः प्राक् प्रियः सखेन्द्रस्य ।

पुत्रत्वेन तमिन्द्रः प्रेम्णा ह स्मानुगृह्णाति ॥ ३४ ॥

वेकुण्ठस्य विकुण्ठागर्भोत्पन्नस्य देवतेन्द्रस्य ।

नाम वृषाकपिरासीत् नामैकयात् सख्यमेतयोरभवत् ॥ ३५ ॥

देवेन्द्रः स वृषाकपिरसुरवृषाकपिकृते यज्ञे ।

सोमं पातुमिहागादिन्द्राण्या सह तु सख्याभिधया ॥ ३६ ॥

गप वृषाकपिरसुरस्तेने सौत्रामणीयज्ञम् ।

तत्र सुरामपि सोमं देवेन्द्राय न्यवेदयत् पातुम् ॥ ३७ ॥

इन्द्रः पिबति सुरामिति पारन्थानाः प्रचक्रिरे निन्दां ।
 सौत्रामण्यामिष्टौ घोरविरोधं प्रचक्रिरेऽनिन्द्राः ॥ ३८ ॥
 मन्त्रेष्वनिन्द्रशब्दं पट् न्याम्नातः पुरा ध्रुवम् ।
 आराधयन्त एते नेन्द्रं देवं त्वमंमन हि ॥ ३९ ॥
 इन्द्रः पिबति सुरामिति हन्त पिबामो वयं सोमम् ।
 इत्युक्त्वा तेऽनिन्द्रा असुरा सोमं बलाद्बहरन् ॥ ४० ॥
 इन्द्रनिवेदितसोमं यज्ञादपहृत्य तं पातुम् ।
 तत्र वृषाकपिसुरं न्ययुज्जतासौ पपौ सोमम् ॥ ४१ ॥
 सोमं तत्र पिबन्तं दृष्ट्वेन्द्राणी वृषाऽपि पुत्रम् ।
 क्रोधादपगतचेताः स्वामिनमेवोपधर्षयामासुः ॥ ४२ ॥

इन्द्राणीकृतः क्रोधः ।

हन्त न किन्तेऽन्यत्रोपलभ्यते पीतये सोम ।
 यदतिव्यथितो धावसि वृषाकपेरत्र यत्नमिमम् ॥ ४३ ॥
 किमनेनोपकृतं ते पुष्टमृगेणेति यस्मै त्वम् ।
 वितरसि सोमसदृजं बहुमूल्यं धनमनुग्रहान् नमस्ते ॥ ४४ ॥
 यत्त्वं प्रियमिव रक्षसि तं शूकरभक्षक इवाऽहम् ।
 कर्णेपि गृह्य भक्षतु मा जीवतु दृष्टजीवोऽयम् ॥ ४५ ॥
 अहमस्मि वीरपत्नी वीरवती तानवीगमम् ।
 अवसन्तुतेऽयं धृष्टतर्हि नमस्ते ज्यं दृष्ट्वा ॥ ४६ ॥
 इत्थं वृषाकपे खल्वपराधानं जान्यते तदेन्द्राय ।
 क्रोधादधिकपिपत्नीमिन्द्राणी तामुवाचेन्द्र ॥ ४७ ॥

इन्द्राणीं प्रति इन्द्रकृता परिणाम्यना ।

एष वृषाकपिरीजे सोमं सोतुं मयातजः ।
 अन्ये त्वसुरा नेदं भन्वन् इति तद्व्यासं मे नमस्ते ॥ ४८ ॥
 अयि भद्रकेशपागे न त्वपराध्यति वृषाकपिन् ।
 किमभिक्रुध्यसि मत्स्यं वृषाऽपि जेह्वन्ते त्वम् ॥ ४९ ॥
 न वृषाऽपि मत्स्यं जिह्वा रमे रोगं ददातु ।
 इदमासुरखलतोऽप्यं प्रियं त्विदं नि देहेन ॥ ५० ॥
 सोमं पातुमिहा न चाकतः गिन्तु त्वमिह ।
 एमि समीक्षितुमेव त्वार्यं दामं गिन्तुमिह ॥ ५१ ॥

इन्द्राणीं प्रति वृषाकपिकृता परिसान्त्वना ।

अथ च वृषाकपिरपि तामिन्द्राणीं प्रत्युवाच विनयेन ।
 इन्द्राणि नित्यसुभगे जरया म्रियते न जातु ते दयितः ॥ ५२ ॥
 पञ्चत्रिंशन्मममयानुक्ष्णः संप्रति पंचन्ति भुक्तिकृते ।
 यानहमस्मि स्थूलो याभ्यां कुक्षी उभौ पृणन्ति मम ॥ ५३ ॥
 ऐन्द्रं सोमं पिबतो मम पुनरेतान् पशून् भक्ष्यान् ।
 काचित्करं हविः प्रियमेव नवेन्द्रः स्वन्त्रमश्नातु ॥ ५४ ॥
 इन्द्रोऽयमसुरकन्यागर्भज एतस्य पत्नी च ।
 अस्ति पुलोमासुरजा तत इन्द्रोऽश्नातु गोमांसम् ॥ ५५ ॥
 अयमिन्द्रो विश्वस्मादुत्तर इति हि प्रतिज्ञातम् ।
 इन्द्राण्यापीन्द्रेणापि वृषाकपिनाऽसुरेन्द्रेण ॥ ५६ ॥

एतदाख्यानस्य ऋग्वेदसंहितायामुल्लेखः ।

ऋग्वेदसंहितायां दशमे तन्मण्डले तदा सूक्ते (१० । ८६)
 आख्यानमेतदुक्तं तन्मन्त्रा अत्र दर्श्यन्ते ॥ ५७ ॥

इन्द्राणीक्रोधविषया वेदमन्त्रा यथा ।

- (१) पराहीन्द्र धावसि वृषाकपेरिति व्यथिः ।
 नो अहं प्रविन्दस्यन्यत्र सोमपीतये ॥
 विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ (१० । ८६ । २) ॥ १ ॥
- (२) किमयं त्वां वृषाकपिश्चकार हरितो मृगः ।
 यस्मा इरस्यसी दुन्वयौ वा पुष्टिमद्वसु ॥
 विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ (१० । ८६ । ३) ॥ २ ॥
- (३) यमिमं त्व वृषाकपि प्रियमिन्द्राभिरक्षसि ।
 ध्रान्वस्य जम्भिपर्दापि कर्णं वराहयुः ॥
 विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः (१० । ८६ । ४) ॥ ३ ॥
- (४) अवीरामिव मामयं शरारुभिमन्यते ।
 उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा ॥
 विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ (१० । ८६ । ६) ॥ ४ ॥

देवेन्द्रवृषाकपिकृत परिसान्त्वनामन्त्रा यथा

- (१) वि हि स्रोतोरसृक्षत नेन्द्रं देवममंसत ।
यत्रामदद् वृषाकपिरर्यः पुष्टेषु मत्सखा ॥
विश्वस्मादिन्द्र उत्तर ॥ (१० । ८६ । १) ॥ ५ ।
- (२) कि सुवाहो स्वङ्गुरे पृथुश्रो पृथुजाह्वने ।
कि शूरपत्नि नस्वमभ्यमीपि वृषाकर्पि ॥
विश्वस्मादिन्द्र उत्तर ॥ १० । ८६ । २) ॥ ६ ॥
- (३) नाहमिन्द्राणि रारण सख्यवृषाकपेऋते ।
यस्येदमप्यं हवि प्रिय देवेषु गच्छति ॥
विश्वस्मादिन्द्र उत्तर ॥ (१० । ८६ । १२) ॥ ७ ॥
- (४) अयमेमि विचाकशद्विचिन्वन् दासमार्यम् ।
पिवामि पाकमुत्वनोऽभिधोरमचाकशं ।
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः (१० । ८६ । १६) ॥ ८ ॥

असुरेन्द्रवृषाकपिकृत परिसान्त्वनामन्त्रा यथा ।

- १—इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगामहमश्रवम् ।
नहत्या अपर चन जरसा मरते पति ॥
विश्वस्मादिन्द्र उत्तर ॥ (१० । ८६ । ११) ॥ ९ ॥
- २—उद्धणो हि मे पञ्चदश साकं पचन्ति विशानिम् ।
उताहमद्वि पीव हृदुभा कुक्षी पृणन्ति मे ॥
विश्वस्मादिन्द्र उत्तर ॥ (१० । ८६ । १४) १० ॥
- देवेन्द्रासुरेन्द्रयोर्वृषाकप्याः सन्धिशनन्तिः ।
अपिवत् सुरां सुरेन्द्रः स चासुरेन्द्रोऽपिवन् नोमम ।
तत्रेन्द्रयोर्विवादोऽशान्धत्यमपि तयोर्नीतिः ॥ ११ ॥

क्रमशस्तत्रैव ब्राह्मणानां वैज्ञानिकविप्रतिपत्तिप्रारम्भः ॥

वरुणस्य राजधानीनगरेऽस्मिन् क्रिन्तु बार्हीके ।
यज्ञे समवेतानां विप्राणां दिनहोऽत्यमघ्न ॥ ५६ ॥
अग्निर्वसुभिः क्रमते सोमो रुद्रैर्नरुद्रिन्द्रोऽयम् ।
आदित्वरय वरुणो विश्वेदेवैर्दृहन्पति क्रान्त ॥ ६० ॥

- अग्निर्वसुभिः क्रमते, रुद्रैरिन्द्रोऽथ वरुण आदित्यैः ।
 सोमः पितृभिः क्रमते विश्वेदेवैर्वृहस्पतिः क्रान्तः ॥ ६१ ॥
- अग्निर्वसुभिः क्रमते वायू रुद्रैरथेन्द्र आदित्यैः ।
 सोमः पितृभिर्वरुणस्त्वद्भिर्विश्वेर्वृहस्पतिर्देवैः ॥ ६२ ॥
- इत्थं त्रयः प्रवादा अभवन् वैज्ञानिके समरे ।
 असुराः प्रथमं पक्षं जगृहुस्तत्रोत्तमं त्वेन्द्राः ॥ ६३ ॥
- ❀ परमर्पयस्त्वपश्यन् न विसंवादावकाशमिह ।
 शवसोनपात एते युञ्जन्त्यधिदैवतैस्तैस्तैः ॥ ६४ ॥
- अग्निर्वायुश्चेन्द्रो रोदस्यां क्रन्दसी देवा ।
 सन्ति बृहस्पतिसोमौ वरुणः स्वस्तेऽधिदैवतैः संयुजः ॥ ६५ ॥
- पूर्वेषामयमुत्तम एष बृहस्पतिरथेन्द्रस्तु ।
 प्रथमोऽयमुत्तरेषामित्युपिभिर्हि स्थितिर्दृष्टा ॥ ६६ ॥
- इत्याह संयतीतोऽर्वाक् क्रमतो रोदसीहृष्ट्या ।
 पृथ्वीक्रमतस्तुग्निः प्रथमस्तुर्ग्या बृहस्पतिः सोस्ति ॥ ६७ ॥
- अग्निश्च वायुसोमौ सहेन्द्रवरुणौ बृहस्पतिश्चान्ते ।
 लोकचतुष्टयदेवा इत्थं क्रमसंनिविष्टास्ते ॥ ६८ ॥
- अग्निर्वसुभिः प्रथमो विश्वेदेवैर्वृहस्पतिः क्रमते ।
 वायू रुद्रैः सोमो रुद्रैः पितृभिश्च संयुङ्क्ते ॥ ६९ ॥
- आदित्यैरपि रुद्रैर्मरुद्भिर्इन्द्रैः सजूर्भवति ।
 वरुणोऽद्भिश्चादित्यैर्युनक्ति नान्यैरिति ज्ञेयम् ॥ ७० ॥
- इत्थं कृतसिद्धान्ते विज्ञाने निर्विवादेऽपि ।
 अधिकृत्येन्द्रं वरुणं विप्रो विप्रोदिरे तत्र ॥ ७१ ॥

	१	२	३	४	५	६
❀	अग्निः	वायुः	सोमः	वरुणः	इन्द्रः	बृहस्पतिः
	वसुभिः	रुद्रैः	रुद्रैः पितृभिः	आदित्यैः अद्भिः	आदित्यैः रुद्रैः मरुद्भिः	विश्वेदेवैः
	पृथ्वी	अन्तरिक्षम्	अन्तरिक्षम्	द्यौः	द्यौः	दिवः पृष्ठम्
	१	२	२	३	३	४

असुरो वरुणो मान्यो न त्विन्द्रो देव इत्यन्ये ।
 इन्द्रो देवो मान्यो नत्वसुरो वरुण इत्यन्ये ॥ ७२ ॥
 जरहृष्ट्यादय केचिन्नेन्द्रं देवममंसत ।
 बृहद्दिवाद्यस्त्विन्द्रमाराध्यं निरधारयन् ॥ ७३ ॥

तत्र तावत्संक्षेपतो वरुणपरमासुरविज्ञानम् ।

वरुणेऽध्याहितमिन्द्रं पश्यन्तश्चक्षते त्वमी असुरा ।
 वरुणो भवतु स्वाराडिन्द्रः सम्राट् तथा हि विज्ञानम् ॥ ७४ ॥
 भूयस्य आप एताः कनीय एवात्र चेतना ज्योतिः ।
 अप्रवेव तु चैतन्यं बुध्यति वरुणः परस्ततो हीन्द्रात् ॥ ७५ ॥
 भूतानि दैवतानि च जातान्यद्भ्योऽत एव ता आप ।
 प्राणः प्रज्ञा चेन्द्रो भूतान्यालम्बते तानि ॥ ७६ ॥
 देहेऽप्यधिका आपो लवणं चाधिकमिदं द्वयं वरुणः ।
 प्राणः प्रज्ञाचेष्टावहः स इन्द्रोऽप्सु संश्रितो भाति ॥ ७७ ॥
 अन्नमभुक्त्वा जीवति नापीत्वापस्तदाप एवात्मा ।
 अन्नैरपीह भुक्तैस्तद्रस एवात्मनि ध्रियते ॥ ७८ ॥
 परमेष्ठ्यपां समुद्रः प्रतिपत् तत्रानुचरवद् द्यौः ।
 योऽसाविन्द्रो द्युस्थः स वारुणीस्वप्सु संश्रितस्तपति ॥ ७९ ॥

अथ प्रतिपादे संक्षेपत इन्द्रपरं दैवविज्ञानम् ।

१—इन्द्राध्याहितवरुणं पश्यन्तश्चक्षतेऽथ देवास्तु ।
 इन्द्रः स्वाराड् वरुणः सम्राडेवं हि विज्ञानम् ॥ ८० ॥

भूयस्यो विश एता एकः स्वाराट् प्रशास्त्यधिष्ठाय ।

स्वाराट् विक्ष्वनुवुद्धो विभवति तास्वेक उद्रिक्तः ॥ ८१ ॥

	अग्निः	वायुः	इन्द्रः	वृहस्पतिः	सोमः	वरुणः	शवसोनपातः
प्रथममते	१ वसुभिः ८	०	मरुद्भिः ७	विश्वेदेवै	रुद्रैः ११	आदित्यैः १२	आसुरमतेऽ-
मध्यममते	२ वसुभिः ८	०	रुद्रैः ११	विश्वेदेवै	पितृभिः ८	आदित्यैः १२	धिदेवाः—
उत्तममते	३ वसुभिः ८	रुद्रैः ११	आदित्यैः १२	विश्वेदेवै	पितृभिः ८	अग्निः ४	ऐन्द्रमतेऽधिदेवाः
	१	१	३	१	२	२	
३	रोदसी—देवाः			३	क्रन्दसी देवाः		द्यावापृथिव्यौ

आत्मानः

३ द्यौः संयत्यां { द्यौः—अन्तर्यामी—अश्वम् = ३ कर्मरूपनामानि ।
अं०—सूत्रात्मा—सूत्रम् = २ ऋतं सत्यम् ।
पृ०—वाचस्पतिः—वेदाः = ३ ऋक्, साम, यजूंषि ।

ॐ

२ अं० क्रन्दस्यां { द्यौः—वरुणः—आपः = ४ अम्भः मरीचिः मरः श्रद्धा ।
अं० सोमः—पितरः = ३ भृगवः अङ्गिरसः अथर्वणः ।
पृ०—वृहस्पतिः—विश्वेदेवाः = २

ॐ

१ पृ० रोदस्याम् { द्यौः—इन्द्रः—आदित्याः = १२
अं०—वायुः—रुद्राः = ११
पृ०—अग्निः—वसवः = ८

हिरण्यगर्भमते

रोदस्याम् { द्यौः { वृहस्पतिः विश्वेदेवाः ।
इन्द्रः आदित्याः—रुद्राः—मरुतः ।
वरुणः आदित्याः—आपः ।
अं० { सोमः रुद्राः—पितरः ।
वायुः रुद्राः ।
पृ० { अग्निः वसवः ।

- २—आत्मेन्द्रो ह्यवितिष्ठति रक्षति वा दैवतानि ।
 नश्यन्ति तानि सद्यो यदात्मना तानि हीयन्ते ॥ ८२ ॥
 आपः शरीरमेतद्भोगाधिष्ठानमात्मनस्तदिन्द्रस्य ।
 आलोम चानलानं विभक्त्यात्मा स देहेऽस्मिन् ॥ ८३ ॥
 आत्मा शरीरवष्टि धत्ते तेनोत्थितेऽत्र चेष्टान्ति ।
 अथात्मना विहीनं निपतति सद्योऽथ पृथगे ज्वयति ॥ ८४ ॥
 आप सोम सोमं मुनक्ति हीन्द्र पिवन्ति तेनाप ।
 रोगा जलोदराद्या दृष्टा नात्मास्ति तेनाप ॥ ८५ ॥
- ३—अपि च भवन्ति द्वावाभूम्यस्तिष्ठो मिथोऽनुगता ।
 अर्वागहीयस्य परावरीयस्य आन्नाता ॥ ८६ ॥
 प्रथमा तु रोदसीयं तद्वर्गं क्रन्दसी मध्या ।
 तदुभयगर्भा सान्या वा संयुक्ता मा महती ॥ ८७ ॥
 प्रतिपद् द्यौरथ भूम्योऽनुदरन्त्यन्ताय बह्व्यः स्युः ।
 एकैकस्यां द्वावाभूम्या द्यौरैकवैव स्यात् ॥ ८८ ॥
 एकैकस्यां द्वावाभूम्यां ब्रह्मेन्द्रविष्णवो हृदये ।
 सयुजोऽध्यक्षा कुर्वन् एते विश्वानि कर्माणि ॥ ८९ ॥
 रोदस्यामिह मृग्यो विरेण्यगर्भाऽस्ति स ब्रह्मा ॥
 क्रन्दस्यां तु परमेष्ठी सदस्यां तु न्वयंभू न ॥ ९० ॥
 त्रिविधं च वैश्वनाथं सयत्नां दृष्टेऽस्मद्वत् परम् ॥
 क्रन्दस्यां तु समुद्रो ब्रह्माण्ड रोदसीविषयम् ॥ ९१ ॥
 इन्द्रोऽस्ति विश्वकर्मा ज्योतिर न द्वाक्षपतिन्तु वेदस्य ।
 वरुणस्तु विश्वकर्मा स समुद्रेऽणपतिर्नव्य ॥ ९२ ॥
 ब्रह्माण्डविश्वकर्मा त्विन्द्र सोऽग्निर्गर्गस्तृणः ।
 वेदा आपोऽग्नय इति तेपातिर् नर्मद्योनयविविदा ॥ ९३ ॥
- ४—पृष्ठे दिवस्तु वरुण स्मृद्गन्धर्वेति परमेष्ठिनो य ।
 ऊर्ध्वं ततोऽन्य इन्द्रमणनि तपोलोचनायश्चरेता ॥ ९४ ॥
 दिव्यादित्यस्त्रिभुवो दिव्यादित्यं प्रगाः न च गन्धर्वम् ।
 वरुणस्ततः स भिन्न स्वायंभुव इन्द्र एव यं गान्ति ॥ ९५ ॥
 दिव्यादित्यं त्विन्द्रं गान्ति न वरुण गन्धर्वान्तरम् ॥
 परमे ज्योतिर्न न्याराडिन् गान्ति स स्मृद्गन्धर्वम् ॥ ९६ ॥
- ५—वाग् वै स इन्द्रोऽस्ति स सयन्तेन द्वालोनेऽग्नेऽनुदरा पृथग् ।
 द्वापां ननुतो जन्वन्ति लोक स सयन्तेनान्न प्रवर्त ॥ ९७ ॥
- ६—परमं तु वैश्वनाथं स्वायम्भुवमिति परमेष्ठिनः ॥
 तज्वरन्तथ पुनरदरं न्योः सौमं ततोऽनुदरा ॥ ९८ ॥

प्रति वैश्वरूपमिन्द्रो ब्रह्मा विष्णुर्नियम्यन्ते ।

वरुणस्तु पारमेष्ठ्ये सौरे वा वैश्वरूप्येऽस्ति ॥ ६६ ॥

इत्थं परावतीन्द्रो वरुणादवाचनीन्द्र आभाति ।

अन्तर्बहिरुभयेन तु वरुणोऽनुगृहीत इन्द्रेण ॥ १०० ॥

७—तस्मादिन्द्रः स्वाराङ् वरुणः सम्राडिदं हि विज्ञानम् ।

विज्ञानादनपेतो योऽर्थः स ब्राह्मणैर्ग्राह्यः ॥ १०१ ॥

अथेन्द्रपक्ष्यैर्ब्राह्मणैरुद्धोपितं देवेन्द्रमहत्त्वम् ।

[ब्राह्मणैरर्पितमिन्द्रमहत्त्वे स्वसंमतिरूपं स्वीकारपत्रम्]

(१) तत्र प्रक्रान्ते ब्राह्मणानां विचारयुद्धे प्रथमं तावत् काण्वो देवेन्द्रपक्षपाती स्ववर्ग्या-
नार्थानभ्यादिदेश ।

मा चिदन्यद् विशंसत सखायो मा रिपय्यत ।

इन्द्रमिस्तोता वृषणं स चासुते मुहुरुक्था च शंसत ॥ ८ । १ । १ ॥

(२) नृमेधा आह ।

इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत ।

धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥ (८ । ६८ । १)

(३) हिरण्यस्तूप आह ।

सूर्यस्येव रश्मयो द्रावयिन्नवो मत्सरासः प्रसुपः साकमीरते ।

तन्तुं ततं परिसर्गास आशवो नेन्द्राद् ऋते पवते धाम किञ्चन ॥ (६ । ६६ । ६)

(४) वामदेव आह ।

न किरिन्द्र त्वदुत्तरो न ज्यायां श्वं अस्ति वृत्रहन् ।

नकिरेवा यथा त्वम् ॥ (४ । ३० । १) ।

त्वोतासो मधवन्निन्द्र विप्रा वयं ते स्याम सूरयो गृणन्तः ।

भोजानासो बृहद्विस्य राय आकाय्यस्य दावने पुरुक्षोः ॥ (४ । २६ । ५) ।

(१) विशंसत = वृथोच्चारयत । रिपय्यत = वृथोपक्षीणा भवत ॥ वृषणं = कामदम् । इत् = एव । स चा = सह । उक्था = स्तोत्रैः ॥

(२) धर्मकृते = मंदकारकर्त्रे । विपश्चिते = विवेचकबुद्धये । पनस्यवे = स्तुते कामाय ॥

(३) द्रावयिन्नवोः = द्रवणशीलाः । मत्सरासः = मदकनः । प्रसुपः = स्वर्पाग्नितारः । आशवः = अश्वानाः । सर्गासः = सृज्यमानाः । सोमाः रश्मयो वा । ततं विस्तृतं तन्तुं सूत्रं परितः सहैव प्रेरयन्ति ॥

(४) नकिः = नत्वेव । त्वोतासः = त्वया रक्षिताः । गृणन्तः = स्तुवन्तः । बृहद्विस्य = महाप्रकाशस्य । आकाय्यस्य = समन्तात् स्तुत्यर्थः । रायो धनस्य । दावने = दाननिमित्तं । भोजानासः = भजमानाः स्याम । पुरुक्षोः = ब्रह्मण्य ॥

(५) रेणुर्वैश्वामित्र आह ।

इन्द्रा दिव इन्द्र ईशे पृथिव्या इन्द्रो अपामिन्द्र हत् पर्वतानाम् ।

इन्द्रो वृधामिन्द्र इन्मेधिराणामिन्द्रः क्षेमे योगे हव्य इन्द्रः ॥ (१० । ८६ । १०)

(६) पूरणो वैश्वामित्र इन्द्रं संबोध्याह ।

तुभ्यं सुतास्तुभ्यमुसोत्त्वासत्त्वां गिरः श्वाच्या आहवन्ति ।

इन्द्रेदमद्य सवनं जुपाणो विश्वस्य विद्वाथं इह पाहि सोमम् ॥ (१० । १६० । २)

अथ स स्वचर्येभ्य इन्द्रं प्रशंसति ।

अनुस्पष्टो भवत्येपो अस्य यो अस्मे रेवान्न मुनोति सोमम् ।

निररन्नौ मघवा तं दधाति ब्रह्मद्विपो हन्त्यननुदिष्टः ॥ (१० । १६० । ४)

(७) अथ गर्ग आह ।

तस्य वयं सुमती यज्ञियस्यापि भद्रे सीमनमे न्याम ।

स मुत्रामा स्वर्वा इन्द्रो अस्मे आराधिद्वेपः सनुतयुयोतु ॥ (९ । ४७ । १३)

इन्द्रः मुत्रामा स्वर्वा अयोभिः सुमृढीको भवतु विश्ववेदा ।

वाधतां द्वेपो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतय न्याम ॥ (९ । ४७ । १२)

अभ्यर्थनाभिरुत्तजितेन स्वयं देवेन्द्रेणामुरनिहननम् ।

तत्र विवादावसरे गर्गाहूत क्षणादुपस्थाय ।

इन्द्रोऽनिन्द्रानेतान् क्षिपन्नुवाच स्वयं धृष्टवन् ॥

(५) अथा = तरलाना । पर्वताना = ऋत्विगाना । वृधाम् = वृद्धान् । मेधिराणां = प्रातनानां । क्षेमे = प्राप्तस्य गच्छणे । योगे = अप्राप्तलाभाय प्रयोगे ॥

(६) सुताः = अभिपुत्राः । सोमाः । सोत्वाः = अभिपोतव्याः । श्वाच्या = छिप्रं चरन्मानवाः । आहवन्ति = आक्रोशन्ति । जुपाणः = सेवमानः । पाहि = विव । अनुस्पष्ट = प्रस्पष्ट । रेवान्न = पतय । मुनोति = निर्वहति । हस्ते = गृह्णाति । अनुदिष्टः = अप्रायश्चित्तः । ब्रह्मद्विपो = ब्रह्मविद्विपो ।

(७) स्ववान् = घनवान्, आन्मीयतावान् वा । अस्मे = अस्मानाम् । रेप = मघवाः । सुमृढीको = सुमृढीको, सुमृढीको वा । विश्ववेदा = सर्ववेदः । अन्तर्हितो वा । आराधिन् = दूत एव । सुमृत्तु = सुमृत्तुः । अन्तर्हितः = अन्तर्हितः । प्रदः । विश्ववेदाः = सर्ववेदः ।

(८) अभीदमेकमेको अस्मि निःपाड् अभिद्रा किमु त्रयः करन्ति ।

खलेन पर्पान् प्रतिहन्मि भूरिं किं मा निन्दन्ति शत्रवोऽनिन्द्राः ॥ (ऋ० सं० १०।४।७)

ॐ

एवं क्रुध्यन्निन्द्रोऽभिवृद्धायाभिचक्रमे सद्यः ।

युद्धाभिषङ्कया प्राक् संनद्धामासुरीं सेनाम् ॥ १ ॥

क्षुद्रे युद्धे तस्मिन्निन्द्रं भटा एकविंशतिर्निहताः ।

निहतास्तु यांतुमस्यां तिस्रः पञ्चाशतोऽरिसेनायाम् ॥ २ ॥ (१५०)

येऽत्रानिन्द्रा आर्य्यास्तेषां दाहः प्रमीतानाम् ।

असुराणां मृतदेहा नादह्यन्त क्षितौ त्वधीयन्त ॥ ३ ॥

मृतदेहा असुराणां यत्र गृहे शेरते निहताः ।

तद्गृहमर्मकमुक्तं वैलस्थानेऽर्मकाणि कल्प्यन्ते ॥ ४ ॥

आर्मीनियेति नान्ना प्रथितं प्रान्तं तदर्मकं मन्ये ।

देवासुरसंग्रामे हतासुराणां श्मशानं तत् ॥ ५ ॥

असुरश्मशानभूमि वैलस्थानाख्यया स्म ते ब्रुवते ।

राज्ञां महाश्मशानं तथैव कथितं महावैलम् ॥ ६ ॥

वहवोऽनिन्द्रा युद्धे निहता निहिताश्च ते महावैले ॥

एतच्च परुच्छेपो युद्धान्ते वर्णयामास ॥ ७ ॥

असुरपराभवान्ते परुच्छेप इन्द्रं महयति ।

(९) उभे पुनामि रोदसी ऋतेन द्रुही दहामि सं महीरनिन्द्राः ॥

ॐ

अभिवृज्जंग्य यत्र हता अमित्रा वैलस्थानं परितृलहा अशोरन् ॥ (१ । १३३ । १)

(८) अस्मि अस्मि = अभिमवामि । निः पाड् = निःशेषं धर्षयिता । खले यथा निष्पावजीर्णव्रीह्यादिस्तम्बा-
ननायासेन कर्षकः प्रतिहन्ति तद्वत् पर्पान् = परुषान् निष्ठुरान् बहून्पि शत्रून् प्रतिहन्मि ।

* अभिवृज्जङ्ग = अभिवायनम् = अभ्याक्रमणम् = चढ़ाई = हमला ॥

(९) ऋतेन = बलेन शत्रूणां पंगमनेन । पुनामि = पावयामि लोकद्वयं शत्रुशून्यं भावयामि । अनिन्द्रा महीः
संहामि । परितृलहा = हिसिताः ।

* अभिवृज्जङ्ग = अभिवाय = अभ्याक्रम्य = चढ़ाई = हमला करके ॥

(१०) अभिक्लङ्ग्याचिद्विद्विः शीर्षा यातुमतीनाम् ॥

क्लिन्धि वट्टरिणा पदा महावट्टरिणा पदा ॥ (१ । १३३ । २)

(११) अवासां मघवज्जहि शर्धो यातुमतीनाम् ॥

वैलस्थानके अर्मके महावैलस्थे अर्मके ॥ (१ । १३३ । ३)

(१२) यासां तिस्रः पञ्चाशतोऽभिक्लङ्गैरपावप ॥

तस्य ते मनायति तक्तस्य ते मनायति ॥ (१ म० १३३ सू० ४)

(१३) इन्द्राय हि यौरसुरो अन्नन्तेन्द्राय मही पृथिवी वरीमभिर्धुन्मसाता वरीमभिः ।

इन्द्रं विश्वे सजोपसो देवासो इधिरे पुर ॥

इन्द्राय विश्वा सवनानि मानुषा रातानि सन्तु मानुषा ॥५॥ (१ म० १३१ सू० १)

अथ पुरुहन्मा आह ।

अत्यन्तं कुध्यन्तं तमिन्द्रमुपशान्तयंश्च पुरुहन्मा ।

अस्येन्द्रस्यात्मानं मह्यत्यधिदैवतं चेन्द्रम् ॥ १ ॥

(१४) यद्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः ।

न त्वा वज्रिन्सहस्रं सूर्या अनुनज्जातमष्टरोऽसी ॥ (२ । ७० ४)

अथ श्रुतकक्ष आह ।

श्रुतकक्षोपि ब्रूते न त्वामतिरिच्यते कटिचत् ।

अर्हसि सोमं पातुं त्वमेव नैऽपोऽसुरोन्यो वा ॥ २ ॥

(१०) अद्विद्विः = वैरिभक्तः । यद्वा अद्वे मेघेभ्य विदारक हे इन्द्र । यातुमतीनाम् = मतीनाम् यातुमतीनाम् ।
क्लिन्ध्याचिद्विद्विः = अस्याक्रम्यैव क्लिन्धि चर्यम् । वट्टरिणा वेदमर्यादेन एवेभ्यः पदा पदेन पदा
वेष्टने । ऊरच । (क्लिन्धिव्यादिभ्य उरालौ) लघोः ण्यत् । वट्टरे । महावट्टरे = वट्टरे । १३३ । २ ॥

(११) यातुमतीनाम् = यातनासाधनशस्त्रवतीनाम् आसुरसेनानां दलं शर्धं उपपन्नं । महावट्टरे = वट्टरे । १३३ । ३ ॥
अर्मके = शक्यदे प्रक्षेपय ।

✱ कुचल दिये गये । ✱ शाश्वती नन्द इतनां सो मे वर ।

(१२) अभिक्लङ्गैः = इमलाकरवै । अपावप = वनाशय । त्वं ते कर्म सुमनः सति । १३३ । ४ ॥
तक्तस्य अत्यल्पं ते कर्म भाव्यते ।

(१३) यौरसुरः = दिविष्ठ सुरवर्गः । अन्नस्तन = स्वर्गमेव प्राप्ते भवति । पृथिवी = पृथिवी ।
वरीमसाती = अन्नस्य चरणी वा लाभमिच्छते प्राप्ते भवति । मही = पृथिवी ।
इन्द्रमेव प्रहसं चतुः । सर्वाणि च मनुष्यदेवानि एतेषां २ । १३१ । १ ॥

(१) शिर भुक्तावे रक्षते है । ✱ नक्षत्रानां । ✱ इन्द्रो नक्षत्रानां मीने वर ।

(१५) त्वे सुपुत्र शवसोऽवृत्रन् कामकातयः ।

न त्वामिन्द्रातिरिच्यते ॥ (८ । ६२ । १४)

(१६) आत्वा विशन्तिवन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः ।

न त्वामिन्द्रातिरिच्यते ॥ (८ । ६२ । २२)

(१७) पराकात्ताच्चिद्रद्विवस्त्वां नक्षन्त नो गिरः ।

अरं गमाम ते वयम् ॥ (८ । ६२ । २७)

एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः ।

एवाते राध्यमनः ॥ (८ । ६२ । २८)

१ त्वयेदिन्द्रयुजा वयं प्रति ३ त्रुवीमहि २ स्पृधः ।

त्वमस्माकं तव स्मसि ॥ (८ । ६२ । ३२)

अथ हैमवर्चिः प्राह ।

४ एतावद्रूपं यज्ञस्य यदेवैर्ब्रह्मणा कृतम् ।

तदेतत् सर्वमानोति यज्ञे सौत्रामणीसुते ॥ (१६ । ३१ यजुः सं०)

७ ६ ५ ८ ॐ सुरावन्तं वर्हिपदं सुवीरयज्ञं हिन्वन्ति महिषा नमोभिः ।

६ दधानाः सोमं दिवि देवतासु मदेमेन्द्रं यजमानाः स्वर्काः ॥ (१६ । ३२ । यजुः० सं०)

वरुणनप्तुर्वृहदिवस्य कालेन ब्रह्मनप्तृत्वम् ।

वरुणतनूजोऽथर्वा बृहद्विवोऽथर्वणः पुत्रः ।

सोऽथर्वा, स बृहद्विव, एतौ पक्षं विनिन्यतुर्द्वम् ॥ १ ॥

(१५) हे बलवत्पुत्र = बलजाता कामाभ्यर्थकाः कै शब्देक्तिन् । त्वे त्वयि सु अवृत्रन् अवृण्वत ।

(१६) नद्यः समुद्रमिव सोमाः त्वाम् आविशन्तु । त्वत्तोऽधिकः सामर्थ्यवान्नास्ति ।

(१७) हे अद्रिवः वज्रवन् । पराकात्ताव चित् अतिदूरतोऽपि नक्षन्त = व्याप्नुवन्तु । अरं पर्याप्तम् ।

१-सहायकेन । २-स्पर्धमानान् । ३-निराकुर्वामहि । ४-प्रजापतिना । ५-महान्त ऋत्विजः ।

(६) प्रापयन्ति । ७-शोभनत्व्विजम् । ८-अर्चैः । अर्कः = अन्नम्, देवः, मन्त्रः, भूतानि, वृक्षः ।

ॐ सुरावान् वा एष वर्हिपद् यज्ञोयत् सौत्रामणी । इति श्रुतिः १२ । ५ । १ । २ ।
वर्हिपि सीदन्ति देवा यत्र तम् ।

ब्रह्मण एषोऽधर्वा बभूव कालेन मानसः पुत्रः ।
पुत्रत्वेन स मनसाऽनुभावितः कृत्रिमः पुत्रः ॥ २ ॥
अतएवैषोऽधर्वा तस्य च पुत्रो बृहद्विषो नाम ।
वाल्मीके प्रागारतां पश्चात् तौ पुष्करेऽस्थाताम् ॥ ३ ॥
ब्रह्मपुरं यत्पुष्करमद्य वुत्सारेति गद्यते यच्च ।
तत्रत्य इन्द्रमूचे बृहद्विषोऽधर्वणः पुत्रः ॥

बृहद्वि आथर्वण आह ।

तद्दिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रत्वेप नृन्या ।
^३ ^४ ^६ ^५
सद्योजज्ञानो निरिणाति शत्रूननु य विष्टवे मद्गन्तूमा ॥ (१० । १२० । १)
^७ ^८ ^९ ^{१०} ^{११}
वा वृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियन्तं दधाति ।
^{१२} ^{१३} ^{१४} ^{१५} ^{१६} ^{१७}
अव्यनञ व्यनञ सत्तिनसते नवन् प्रभृता मदेपु ॥ (१० । १२० । २)
^{१८} ^{१९} ^{२०}
इति चिद्धि त्वा धना जयन्तं मदे मदे अनुमदन्ति विप्राः ।
^{२१} ^{२२} ^{२३} ^{२४} ^{२५} ^{२६}
ओजीयो धृष्टो स्थिरमातनुष मा त्वा दभन्यानुधाना दुरेया ॥ (१० । १२० । ५)
^{२७} ^{२८}
त्वया वयं शाशद्महे रणेपु प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरि ।
^{२९} ^{३०} ^{३१} ^{३२}
चोदयामि त आयुवा वचोमि मं ते गिशामि द्रमणा दगांमि ॥ (१० । १२० । ४)

१-उद्गूयः । २-प्रदीप्तवत् । मूर्तात्मक इन्द्र । ३-वाग्मान । ४-स देहः । ५-निर्दिष्टः ।
रीगविरैषणयोः । प्लादीना हस्त । ५-भूतानि विविध ऊन । तद्वन्मृगयति । ६-हृत् । ७-निर्दिष्टः ।
८-वलेन । ९-बहुप्रवत् । १०-अपल्लवमिति मनु मृगयति । ११-मृग । १२-सह । १३-निर्दिष्टः ।
१३-चेतना च । १४-इन्द्रोऽस्य नाम । १५-मृगयति । १६-मृग । १७-निर्दिष्टः ।
भूतानि पोषितानि सर्वाणि भुज्जलानि । १८-हृत् । १९-मृगयति । २०-मृग । २१-निर्दिष्टः ।
प्राप्नुवन्त त्वामनु । २२-हृत् । २३-मृगयति । २४-मृग । २५-निर्दिष्टः ।
२४-मा हिसन्तु । २५-मृगयति । २६-मृग । २७-निर्दिष्टः । २८-मृगयति । २९-मृग ।
प्रति प्रेरयामि । ३०-मृगयति । ३१-मृग । ३२-निर्दिष्टः । ३३-मृगयति । ३४-मृग ।

३३

३४ ३५ ३६

इमा ब्रह्म बृहद्विवो विवक्तीन्द्राय शूपमग्रियः स्वर्पाः ।

३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२

महो गोत्रस्य क्षयति स्वराजो दुरश्च विश्वा अवृणोदप स्वाः ॥ (१०।१२०।८)

४३

४३

एवा महान्वृहद्विवो अथर्वा वचत्त्वां तन्वमिन्द्रमेव ।

४४ ४५ ४६ ४७ ४८

स्वसारो मातरिभ्वरीररिप्रो हिन्वन्ति च शवसा वर्धयन्ति च ॥ (१०।१२०।९)

दीर्घतमा औतथ्यः, कुत्स आङ्गिरसश्च वरुणस्याग्नित्वमाहृतः ।

ॐ मैत्रमहस्तु निशीथान्मध्यदिनान्तं, ततो निशीथान्ता ।

रात्रिर्हि वारुणी सा मित्रावरुणौ तदादित्यौ ॥ १ ॥

ऐन्द्रमहश्चाग्नेयी रात्रिः प्रतिपद्यते तस्मात् ।

इन्द्रो मित्रादित्यो वरुणस्त्वग्निः स्थितोऽप्सु यो निहितः ॥ २ ॥

वरुणस्याग्नित्वाख्या तैत्तिरक ब्राह्मणस्य के सेके ॥ (१।७।१)

अपि शतपथस्य मेखेलोख्ये (५।२।३।१२) दृष्टा च राजसूयविधौ ॥ ३ ॥

इह राजसूययज्ञे इन्द्रतुरीयः प्रचर्यते यागः ।

तत्राग्निवरुणरुद्रा इन्द्रात्पूर्यान्त्रयोऽग्निभागाः स्युः ॥ ४ ॥

पिण्डेऽग्निरग्निरुक्तो वरुणो नामाग्निरुच्यतेऽप्स्वन्तः ।

अग्निर्वायौ रुद्रो भूमिरसत्वात्रयोऽग्नयस्तेऽमी ॥ ५ ॥

निविडे तरले विरले ध्रुवे च धर्त्रे च धरुणे च ।

अग्निर्वरुणो रुद्रः प्रथते त्रेधाऽयमग्निरेकोऽपि ॥ ६ ॥

सोग्निर्भूमेश्चापामथान्तरिक्षस्य चाधिपतिः ।

इन्द्रस्त्वेष दिवस्पतिरिन्द्राग्नी रोदसीनाथौ ॥ ७ ॥

३३-स्तुति वाक्यानि । ३४-सुखं यथास्यात्तथा । ३५-प्रमुखेस्थितः । ३६-स्वर्गसंभक्तः यद्वा इन्द्रसंभक्तः सेवकः

३७-महतः । ३८-वर्षतस्य पापाण्यस्य वाबलात्तुरेण गोपिधानार्थं निहितस्व । ४०-स्वयं राजमानस्य ।

३९-अप्रगमयति । ४१-विलङ्घयति । ४२-त्वाश्च सर्वांगाः अपावृणोत् । अपगतावरणा अकरोत् ।

उद्घाटितवान् । ४३-बृहद्विवोऽथर्वा = अथर्दपुत्र स्वा तन्वं विस्तृता स्तुतिम् । इन्द्रं प्रत्येव अबोचत् ।

४४-स्वयं सगन्त्वो नयः । ४५-भूमौ भवन्त्यः । भवतेर्वनिप् । यनोरच् । ४६-अपापाः । ४७-इन्द्रमुगच्छन्ति ।

४८-श्लेन च वर्धयन्ति ।

ॐ अधिदैव-दैवम्हः-आसुरी रात्रिः । अध्यात्म-ऐन्द्रमहः आग्नेयी रात्रिः । अधिभूतं-मैत्रमहः वारुणी रात्रिः ।

तौ सत्तमौ वरिष्ठौ ओजिष्ठौ पारयिष्णुतमौ ।
 सममेनयोर्महत्त्वं न तयोरवर. परो वा स्यात् ॥ ८ ॥
 अग्निः स्थानविभेदाद्वत्ते नामानि भिन्नानि ।
 सोऽस्ति सुपर्णः स यम. स मातरिश्वा स वरुणोऽयम् ॥ ९ ॥
 इत्थं दीर्घतमा अपि कुत्सोऽयाङ्गिरस ऊचतुन्तत्र ।
 इन्द्रावरुणौ मित्रावरुणौ तौ रोदसीविपयौ ॥ १० ॥
 “इन्द्रं मित्रं, वरुणमग्निमादुरथो दिव्यं स सुपर्णो गरुत्मान् ।
 एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः” ॥ (१ । १६४ । ४६)
 “इन्द्रं मित्रं, वरुणमग्निमृतये मारुत शद्धो अदितिं हवामहे ।
 रथं न दुर्गाद्विस्रव सुदानवो विदवस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन” ॥ १ । १०६ । १)

अथ वरुणपञ्चैर्ब्राह्मणैरुद्धोषितं वरुणमहत्त्वम् ।
 तत्र ब्राह्मणा ऋग्भिर्वरुणमहिमानं श्रावयन्ति स्म ।

इत्थं बहुभिरपीन्द्र. परमाराध्यस्तदा विनिर्णीत ।
 किन्तु तदानीमपरे व्याचक्ष्युर्वरुणमाराध्यम् ॥ ११ ॥
 यावादित्यौ मित्रावरुणौ तत एष भिद्यते वरुणः ।
 एष समुद्रत्पेशो यद्गर्भेऽयं दिवस्पतिस्त्विन्द्र ॥ १२ ॥
 अत्रिस्तावद् वरुणं व्याचष्टे ब्राह्मणो देवम् ।
 पञ्चममण्डलसूक्ते पञ्चाशीते त्वृचन्तादि ॥ १३ ॥ (५ । ८५)
 प्र सन्नाजे वृहदर्चा गभीर ब्रह्मप्रियं वरुणाय क्षुताय ।
 वि यो जघान शमितेव चर्मोपमिरे पृथिवीं नृप्याम् ॥ (५ । ८५ । १)
 वनेषु व्यन्तरिक्षं ततान वाजमवत्सु, पय उन्मियासु ।
 हत्सु क्रतुं वरुणो अपस्वग्नि दिग्निमृगमदधान्गोमनत्रौ ॥ (५ । ८५ । २)

१-प्रयुञ्ज्व । २-प्रतिपादन निरूपण । ३-पञ्चममण्डलसूक्ते पञ्चाशीते त्वृचन्तादि । ४-काष्ठेषु इष्टकानु प्रयुक्तेषु । ५-उनामदेव । ६-यदवत्सु । ७-उन्मियासु । ८-वनेषु । ९-गोषु । १०-कर्मसंस्तवम् । ११-दैव, नमः । १२-वृचन्तादि पञ्चममण्डले ।
 — ३२ —

१ नवीनवारं वरुणः कवन्धं प्रससर्ज रोदसी अन्तरिक्षम् ।

तेन विश्वस्य भुवनस्य राजा यवं न दृष्टिर्व्युनक्ति भूम ॥ (५ । ८५ । ३)

५ ६ ७ ८
उनक्ति भूमि पृथिवीमुत द्यां यदा दुग्धं वरुणो वष्ट्यादित् ।

६ १० ११ १२
समभ्रेण वसत पर्वतास्तविपीयन्त श्रथयन्त वीराः ॥ (५ ८५ । ४)

१३ १४ १५
इमामूष्वासुरस्य श्रुतस्य महीं मायां वरुणस्य प्रवोचम् ।

१६ १७ १८
मानेनेव तस्थिर्वो अन्तरिक्षे वि यो ममे पृथिवीं सूर्येण ॥ (५ । ८५ । ५)

१९ २० २१ २२
इमामू नु कवितमस्य मायां महीं देवस्य न किरा दधर्ष ।

२३ २४ २५ २६ २७
एकं यदुद्गा न पृणान्त्येनीरासिञ्चन्तीरवनयः समुद्रम् ॥ (५ । ८५ । ६)

२८ २९ ३०
अर्यम्यं वरुण मित्र्यं वा सखायं वा सदमिद् भ्रातरं वा ।

३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६
वेशं वा नित्यं वरुणारणं वा यत्सीमागश्चक्रुमा शिश्रथस्तत् ॥ (५ । ८५ । ७)

३७ ३८ ३९ ४० ४१
कितवासो यद्विरिपुर्न दिवि यद्वा वा सत्यमुतयन्न विद्ध ।

४२ ४३ ४४
सर्वा ता विष्य शिथिरेव देवाधा ते त्याम वरुण प्रियासः ॥ (५ । ८५)

१-अघोमुखम् । २-मेघमुदकं च । ३-प्रभूतम् । ४-सिञ्चति वपति वाक्यकः ।

५-अन्तरिक्षम् । ६-सहस्रमितासु गोपुरसममधुरादिम् । ७-इच्छति । ८-अनन्तरमेव ।

९-आच्छादिता भवन्ति । १०-वज्रमिच्छन्ति वलं लभन्ते । ११-इलथान् कुर्वन्ति ।

१२-मस्तः शूरा वा । १३-असुरपतेर्देवस्य । १४-महतीम् । १५-प्रभावम् । १६-मानदण्डेन ।

१७-तिष्ठन् । १८-द्यावापृथिव्यन्तरम् । १९-प्रकृष्टप्रज्ञस्य । २०-प्रज्ञाम् । २१-नैव ।

२२-हिनस्ति । २३-केवलम् । २४-उदकेन । २५-पूरयन्ति । २६-पूरयन्त्यः वहन्त्यः शुक्लाः ।

२७-नद्यः । २८-प्रदत्तारं गुवं वा । २९-अनुरक्तम् । ३०-सर्वदैव । ३१-निकटनिकेतनम् । ३२-अना-

स्मीयम् । ३३-यदेतत् । ३४-अपराधम् । ३५-अक्रुर्म । ३६-इलयीकुरु । ३७-यू तकृतः । ३८-पापमा-

रोपयन्ति । ३९-यू ते । ४०-सत्यं वा मिथ्या वा । ४१-अज्ञातं वा । ४२-शिथिलानीव । ४३-विमोचय ।

४४-अथ ।

अपरे ब्राह्मणा उभयोर्महिमानमभ्युपगच्छन्ति स्म ।

अत्र विवादे पश्चान्मध्यस्थाः केचिदानाद्य ।
 उभयोरेव महत्त्वं समानमास्थापयामासुः ॥ १ ॥
 तपसो लोकाज्जाते ऋतसत्ये द्वे इमे नेत्रे ।
 सा क्रन्दसी ऋतेन तु सत्येन तु रोदसी विधृता ॥ २ ॥
 ऋतमित्यपा त्रयं स्यादापो वायुश्च सोमश्च ।
 अग्नित्रय तु सत्यं न्यादग्निर्वायुरादित्यः ॥ ३ ॥
 ऋतमधिकुरुते वरुण सोऽपां नाथः समुद्रनाथश्च ।
 इन्द्रस्तु सत्यमीष्ट्रे स वासवो वायुरादित्यः ॥ ४ ॥
 न ऋताद् ऋतेऽग्नयस्ते सत्येनापश्च गर्भित्यः ।
 नैकस्तयोर्विनाऽन्यं कदापि वा रूपमादध्यान् ॥ ५ ॥
 उभयोरनयोरेक क प्रवरः क्रोऽघर कल्पः ।
 इन्द्रात्प्रवरो वरुणो वरुणात्प्रवरः स इन्द्रोऽस्ति ॥ ६ ॥
 काण्वः सुपर्ण एव स भरद्वाजश्च वामदेवश्च ।
 इन्द्रावरुणौ न्वाराद् सम्राजौ तुल्यमर्तापुः ॥ ७ ॥

सुपर्णः काण्वः ।

१ २

अथोचाम महते सौभगाय सत्य त्वेषाभ्या महिमानमिन्द्रियम् ।

३ ४

अस्मान्स्त्विन्द्रा वरुणा धृतश्चुनस्थिभिः नान्निभिर्यत शुभमर्ताः । (२११४)
 इन्द्रावरुणा यत्पिभ्यो मनीषां याचो न्वि शुभमर्तव्यः ।
 थानिन्धानान्यसृजन्त धीरा यतं नन्यानागतपन्थाभ्यश्चम् । (२४१५)
 इन्द्रावरुणा सीमनममृजन् रात्रयोप यजनानेष्ट पश्यन् ।
 प्रजान्पुष्टिन्मृतिमग्मासु यत्न दीर्घान्वाय प्रतिव्य न पश्यन् । (२४१६)

सुपर्णः काण्वः—१ मोक्षप्रदाय कालम् । २ नानिभिः शस्त्रैर्वा यत्नः । ३ यत्नः । ४ यत्नः ।
 एवविद्वन्वा ।

भरद्वाजः ।

१ २
ता हि श्रेष्ठा देवतातातुजा शूराणां शविष्ठा ता हि भूतम् ॥

३ ४ ५ ६ ७ ८

मघोनां महिष्ठा तुविशुष्म ऋतेन वृत्रतुरा सर्वसेना ॥ (६।६।२)

९ ११ १० १२ १३

गनाश्च यन्नरश्च वावृधन्त विश्वेदेवासो नरां स्वगूर्ताः ॥

१४ १५ १६ १७

प्रैभ्य इन्द्रावरुणा महित्वा द्यौश्च पृथिवि भूत सुर्वी ॥ (६।६।४)

१३ १६ २० १८ २३ २४ २१ २२

यं युवं दाश्वध्वराय देवा रयिं धत्थो वसुमन्तं पुरुलुम् ॥

२८ २६ २७ २५ २६

अस्मे स इन्द्रावरुणावपिष्यात्प्र यो भनक्ति वनुषामशस्तीः ॥ (६।६।६)

३० ३२ ३३ ३१

प्रसम्राजे बृहते मन्मनु प्रियमर्च देवाय वरुणाय सप्रथः ॥

३४ ३५ ३६ ३८ ३७

अयं य उर्वी महिना महि व्रतः क्रत्वा विभात्यलरो न शोचिषा ॥ (६।६।८)

भारद्वाजः—१-देव तातो देवविभागे तुजौ धनप्रयोक्तारौ २-बलवत्तरौ । ३-पूज्याना ४-दानुतमौ ।
५-बहुवली । ६-सत्येन । ७-शत्रुनाशकौ । ८-सेनाध्यक्षौ । ९-स्त्रियः । १०-पुमासः ।
११-यत्=यदा । १२-वर्धयन्ते । १३-मनुष्याणां स्वयमुद्यताः प्रवर्तकाः । १४-वर्षकेभ्यः
स्तोत्रभ्यः । १६-प्रभूत-प्रभवतम् । १५-महत्त्वयुक्तौ । १७-विस्तीर्णौ । १८-देवौ इन्द्रावरुणौ ।
१९-युवा । २०-इत्तद्विधाय । २१-वनयुक्त । २२-ब्रह्मन् पूर्णं शक्तं वा । २३-यादृशं वनं ।
२४-प्रयच्छत्यः । २५-शत्रुणाम् । २६-अकीर्तौ । २७-प्रवृत्ति । जलनं पैदा करता है ।
२८-अस्मभ्यम् । २९-अपिष्यात् । ३०-वरुणाय । ३१-सर्वतः पृथुः । ३२-स्तोत्रम् ।
३३-प्रेचारयः । ३४-महिम्ना । ३५-महाकर्मा । ३६-प्रजया । ३७-तेजसा । ३८-प्रौढः ।

३६

४०

इन्द्रावरुणा सुतपाविमं सुतं सोम पिवत मघ धृतव्रता ॥

४१

४५

४२

४४

४६

युवो रथो अश्वरं देववीतये अतित्वसरमुपयाति पीनये ॥ (६।६२।१०)

पक्षत्रयवर्ता ब्राह्मणानां विज्ञानविरोधेविचारममतिः ।

१—इन्द्रस्य पक्षे कतिचिद्बभूवुर्वभूवुरन्ये वरुणात् पक्षे ।

परे बभूवुर्द्विसमत्वपक्षे मिथन्निपक्ष्या ऋषयः समूहः ॥ १ ॥

तत इन्द्रपक्ष्याणां ब्राह्मणानां विचारममिता इन्द्राय पुनःसोमाभिपयार्धं
हिरण्यगर्भनियोगः ।

अथेन्द्रपक्ष्या ऋषयोऽत्र सर्वपुनर्विचाराय पृथक् सर्वायु ।

विशिष्य कणा अपरेऽपि केचिद् बृहदीवाद्या व्यन्धुर्विर्मर्जम् ॥ २ ॥

सोमं सुरेन्द्र एवार्हतिपातुं नासुरेन्द्रेऽपि ।

हन्तेन्द्राय सुतोऽयं सोम पीतोऽनयाद् वृषाकपिना ॥ ३ ॥

तस्माद्विह पुनरन्य सोम सोतव्य इन्द्राय ।

इति निर्धार्य विधातुं हविषा प्रोक्तुं हिरण्यगर्भमपि ॥ ४ ॥

हिरण्यगर्भेण्येन्द्राय हविर्विधानप्रत्याग्यानम् ।

एव तु हिरण्यगर्भा मार्ग वेदानिकं परं जगृहे ।

इन्द्राद्वा वरुणाद्वा हिरण्यगर्भं निरूपयन् प्रथमम् ॥ ५ ॥

वज्री च पाणी च परश्च देवो हिरण्यगर्भस्य यतोऽग्नि र्भूः ।

हिरण्यगर्भं प्रथमं विदन्त र्भूः देवाय हविषा विधेम ॥ ६ ॥

यदेतद्वहं समन्तं समुद्रमनायान् न रन्ध्रोऽग्निं हिरण्यगर्भम् ।

आपोमयत्वाद्दृग्गणश्च नाशनेनो हि नागदं नदतिजग्मे ॥ ७ ॥

३६—सीमाप्रसङ्गः । ४१—इन्द्रस्य । ४५—वृषाकपिना । ४२—सुरेन्द्र । ४४—व्यन्धुर्विर्मर्जम् । ४६—सोमं ।
प. नार्धम् । ४४—मार्गं प्रथमम् । ४५—वृषाकपिना ।

हिरण्यगर्भं त्वण्डमिदं समस्तं यस्यास्ति गर्भं परमस्य पुंसः ।

हिरण्यगर्भं तमनुव्रजन्तः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥६॥

अपां पतिः स वरुणस्त्रीन् शृगूनधितिष्ठति ।

असुराणां पतिर्लोकं चतुर्थं चाधितिष्ठति ॥६॥

मरुतां पतिरिन्द्रोऽधितिष्ठत्यङ्गिरसां त्रयम् ।

देवानां स पतिर्लोकं चाधितिष्ठत्यमूँ दिवम् ॥७॥

देवो हीन्द्रः शास्ति सुरान् देवः स वरुणोऽसुरान् ।

नैवावरो न प्रवरोऽनयोरेकोऽपि कल्पते ॥११॥

हिरण्यगर्भस्तु परः सर्वतः प्रवरो मतः ।

य एष चतुरो लोकानेक एवाधितिष्ठति ॥१२॥

अप्सु वीर्यं क्षिपन्नग्निरमृतोऽङ्गिः स संभवन् ॥

हिरण्यं जनयत्येष सोऽमृतोऽग्निर्हिरण्यमयः ॥१३॥

त्रिषु लोकेषु पर्याप्तश्चतुर्थेऽप्युपपद्यते ॥

प्रजापतिस्त्रिलोकीस्थापः परिचरन्ति तम् ॥१४॥

इत्थं हिरण्यगर्भेण कल्पितात्मा महानृपिः ॥

हिरण्यगर्भं उत्थाय स्वं विज्ञानमदर्शयन् ॥१५॥

हिरण्यगर्भः प्राजापत्यो विश्वामित्रपौत्रः ।

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ॥

स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ (१०।१२।१)

य आत्मदा वलदा यस्य विश्व उपासते प्रविषं यस्य देवाः ॥

यस्यच्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ (१०।१२।२)

यः प्राणतो निमिषतो महि त्वैक इन्द्राजा जगतो वभूव ॥

य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ (१०।१२।३)

यस्येमे हिमवन्तो महित्वायन्य समुद्रं रसया सहाहुः ॥

यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ (१०।१२।४)

येन द्यौरुग्राः पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तमितं येन नाकः ॥

यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ (१०।१२।५)

यङ्क्न्दसी अवसा तस्तमाने अग्यैक्षेतां मनसा रेजमाने ॥
 यत्राधिसूर उदितो विमाति कलौ देवाय हविषा विधेम ॥ (१०।१२१।६)
 आपोह यद् बृहतीर्विश्वमायन् गर्भे दवाना जनयन्तीरग्निम् ॥
 ततो देवानां समवर्ततासुरेकः कलौ देवाय हविषा विधेम ॥ (१०।१२१।७)
 यश्चिद्रापो महिना पर्यवरयद्गत् जनयन्तीयताम् ॥
 यो देवेष्वधिदेव एक आसीत्कलौ देवाय हविषा विधेम ॥ (१०।१२१।८)
 मानो हिंसोऽज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवं सत्यधर्मा जजान ॥
 यश्चापश्चन्द्रा बृहतीर्जजान कलौ देवाय हविषा विधेम ॥ (१०।१२१।९)
 प्रजपते न स्वदेवतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव ॥
 यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ (१०।१२१।१०)

हिरण्यगर्भतात्पर्यविषये विज्ञानम् ।

हिरण्यगर्भो वरुणेन्द्रपृथ्वीचन्द्रैकवल्शामवितिष्ठनोति ।
 प्रजापतिं तं परम विदन्तः कलौ देवाय हविषा विधेम ॥ १ ॥
 प्रजापतेः प्राण उदेति भूतान्यद्भ्यः समुद्राद्वरुणाद् भवन्ति ।
 प्रज्ञेन्द्र इत्याहुर्धामिनीमात्रास्त्रिमात्रा इदमस्ति विश्वम् ॥ २ ॥

प्रज्ञा प्राणो भूतान्येषां मात्राभिराचितं विश्वम् ।
 ज्ञानं क्रियाऽर्थ एतद्व्यतिरिक्तं न कचित् किञ्चित् ॥ ३ ॥
 इन्द्रः प्रज्ञा तस्मात् प्रज्ञामात्राभिराचितं ज्ञानम् ।
 प्राणो हिरण्यगर्भः क्रिया इवाः प्राणमात्राभिः ॥ ४ ॥
 भूतान्यापो वरुणः सर्वेऽर्था भूतमात्राभिः ।
 त्रिभिरेवैभिर्देवैराख्यं विश्वमस्तीदम् ॥ ५ ॥
 अधिदेवास्तत्र एते तानितरे जातिनिष्ठानि ।
 एषां हिरण्यगर्भाऽधिदेव एकः क्रियाहेतुः ॥ ६ ॥
 सर्वक्रियैकमलं न विना क्रियाऽर्थं नृण्यति ।
 न विना क्रिया ज्ञाने सोऽर्थः प्रविशेन्न चेष्टेत ॥ ७ ॥
 तस्माद्विरण्यगर्भं प्रवरं मन्ये क्रियाहेतुम् ।
 तमुपेक्ष्य सकमलं कलौ देवाय हविषा विधेम ॥ ८ ॥



इन्द्राय सोमाभिषवार्थं वसिष्ठविनियोगः ।

इन्द्रायेत्थं सोतं हिरण्यगर्भे प्रजापतेः पुत्रे ।

अस्वीकुर्वीत बिभ्रो वसिष्ठमृषिमार्थ्यां चक्रुः ॥ १ ॥

वसिष्ठेनेन्द्रपरितोषार्थं सोमयज्ञकरणम् ।

वसिष्ठ आसौद् वरुणस्य मित्रं बहूपचक्रे वरुणः पुराऽस्मै ।

किन्त्वेप वैज्ञानिकविग्रहेऽस्मिन् इन्द्रस्य पक्षे जगृहे विशिष्य ॥ २ ॥

दृष्ट्वा तत्र सं सोमं धाष्ट्यात् पीतं वृषाकपिना ।

अनयात्कुद्धः सद्यः स्वगृहे सोमं सुपाव चेन्द्राय ॥ ३ ॥

वसिष्ठः (७ । ३२) इन्द्राय स्तौति ।

पराणुदस्व मघवन्नमित्रान्तसुवेदा नो वसू कृधि ।

अस्मकं बोध्यविता महाधने भवा वृधः सखीनाम् ॥ (७ । ३२ । २५)

इन्द्र क्रतुं न आभर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।

शिञ्जाणो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥ (७ । ३२ । २६)

रायस्कामो वज्रहस्तं सुदक्षिणं पुत्रो न पितरं हुवे (७ । ३२ । ३)

इम इन्द्राय सुन्विरे सोमासौ दध्याशिरः ॥

तौ आ मदाय वज्रहस्त पीतये हरिभ्यां आह्लोक आ ॥ (७ । ३२ । ४)

न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ॥

अश्वायन्तो मघवान्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥ (७ । ३२ । २३)

अथ च वसिष्ठः स्वगृहे सोमं सुत्व समानयन्निन्द्रम् ॥

सम्मानयस्तमस्तौन्निपीतसोमं स्वराजमभ्यर्हम् ॥ ४ ॥

इन्द्रोस्ति राजा जगतो जनानां यच्चास्ति पृथ्व्यामखिलस्य तस्य ॥

पितेव वन्धुः सममेति मन्ये तस्योपकारं न च विस्मरेयम् ॥ ५ ॥

एभिर्दिनैरिन्द्र सभोजयाऽस्मान् दुर्मित्रलोका हि परिक्रमन्ते ॥

कुर्यादनिष्टं वरुणोऽर्थवद्वा निर्हेतु वा तद् द्वयमप्यपैतु ॥ ६ ॥

— 3 —

वंसिष्ठौ वरुणमभ्यर्थयते ॥ ७ । ८६ ॥

^१ पृच्छे ^२ तदेनो ^३ वरुण ^४ दिदृक्षुपो ^५ एमि चिकितुषो विपृच्छम् ॥

^६ समानमिन्मे ^७ कवयश्चिदाहुरयं ह तुभ्यं वरुणो हृणीते ॥ (७ । ८३ । ३)

^८ किमोग आस वरुण ज्येष्ठं यत्स्तोतारं जिघांससि सखायम् ॥

^{१०} ११ ^{१२} १५ ^{१३} १६ ^{१४} १५
प्र तन्मे वोचो दूळभं स्वधावोऽयं त्वानेनां नमसां तुर इयाम् ॥ (७ । ८६ । ४)

^{१७} (द) नं संस्वो दंक्षो वरुण ध्रुतिः सां सुरा मन्थुर्विभीदको अचित्तिः ॥

^{२२} अस्ति ज्यायान्कनीयसं उपारे स्वप्नश्चनैदन्तस्य प्रयोता ॥ (७ । ८६ । ६)

^{२६} (क) अरं दासो न मीढुषे कराण्यहं देवाय भूण्येऽनागोः ॥

^{२८} २९ ^{३०} ३१ ^{३२} ३३ ^{३४}
अचेतयदचितो देवो अर्यो गुत्सं राये कवितरो जुनाति ॥ (७ । ८६ । ७)

^{३५} (ख) अयं सु तुभ्यं वरुण स्वधावो हृदि स्तोमं उरश्रितश्चिदंस्तु ॥

शं नः क्षेम शमु योगे नो अस्तु यूयं पात स्वस्तिभिः संदा नः ॥ (७ । ८६ । ८)

(द) अध्यवसायमूलकमौत्साहिकं कर्तव्यार्थसाधनापेक्षं तत्कालजं बलं दक्षः । (क्रतुदक्षाविति) आगन्तुकौत्साति कदोषमूलकं परशोद्भूतं तत्कालजं बलं श्रुतिः, तत्र पञ्चोदाहरणानि- (परवशतायां सुरामदः । मन्थुः प्रबलक्रोधविशेषः विभीदको द्यूतकालिको विद्वेषावेशः । अचित्तिः अज्ञानता । अवरजनसमीपस्थितस्य प्रभावशालिनः श्रेष्ठजनस्य बलवदिच्छाविशेषानुरोधः । स्वप्नदोषः प्रमादः, अर्नवधानता ।
१ पृच्छामि । २ अपराधम् । ३ दोषं ज्ञातुमिच्छुः । ४ विदुषो जनान् उपोषाम् । ५ विशिष्य प्रधुम् । ६ क्रान्तदक्षिणः । ७ एकस्यमेवादुः । ८ क्रुद्धोऽस्तीति । ९ अपराधः । १० अचिकम् । ११ प्रवृद्धिः । १२ दुर्दम-अग्रे वाधितुमावय । १३ तेजस्विन् । १४ निदोषः । १५ त्वरमाणः । १६ क्रान्तदोषम् । १७ नम-रकारेण । १८ ज्ञानपूर्वकृतं प्रयोगबलम् । १९ ज-मसिद्धं, दैवनिर्मितं स्वधावकृतम् । २० सुरा-क्रोधः । २१ अज्ञानम-विवेकः साधारणमनुष्यस्य पापप्रवृत्तौ । समीपस्थः श्रेष्ठपुरुषः कारणम् । २३ मिश्रयिता ।

(क) २४ कामानावर्जितः । २५ जगतो भञ्जः । २६ पर्याप्तम् । २७ परिचर्या करवाणि । २८ प्राशापयत् । २९ देवः अशान् । ३० स्वामी । ३१ स्तोतारः । ३२ धनप्राप्त्यर्थं । ३३ प्रकृतिरः । ३४ प्रेरयति ।
(ख) ३५ अश्वरः । ३६ स्तोत्रं, प्रार्थना वचः तत्र हृदि उपगनः अस्तु, अमाप्तत्वं प्राप्तिः । योगः प्राप्तत्वरक्षणं क्षेमः ।

निगडमुक्तेन वसिष्ठेन मेधातिथिवामदेवसहायेन इन्द्रावर्णयोः गन्गोद्भवाः ।

अथ मुक्तः स वसिष्ठः समत्वपक्षानुमोदकः समभूतः ।

अपि वामदेवमेधातिथौ व्यधातां तयोः सत्यम् ॥ ६ ॥

इन्द्रस्य च वरुणस्य च परम्परं सत्यतासिद्धौ ।

सह तुष्टुर्वसिष्ठो मेधातिथि-वामदेवौ च ॥ १० ॥

वामदेव इन्द्रावरुणौ सह स्तौति ।

इन्द्रा को वां वरुणा सुम्नमाप स्तोमो हविर्भो अमृतो न होता ।

यो वां हृदि ऋतुमो अस्मदुक्तः परशरिन्द्रावरुणा नमन्वान् ॥ (४।४।१)

इन्द्रा ह यो वरुणा चक्र आपी देवो मर्तः सत्याय प्रयन्वान् ।

स हन्ति वृत्रा समितेषु राज्ञानभोभिर्वा मदङ्गि न प्र शृण्वे ॥ (४।४।२)

इन्द्रा ह रत्न वरुणा घेष्टेत्या नृभ्य गरामानेभ्यस्ता ।

यदी सखाया सत्याय मौमि सुनेभिः सुप्रयमा मादयते ॥ (४।४।३)

युवामिद्व्यवसे पूर्व्यां परि प्रभूती गविर स्वायी ।

वृणीमहे सखाय प्रियाय शूरा मंहिष्ठा सितरेय गंभू ॥ (४।४।४)

ता वां धियोऽवसे याजयन्तीराजि न जमुयु यदू नुगन् ।

श्रिये न गाव उपसोममनुविन्द्र गिरो धन्यां मे मनीषा ॥ (४।४।५)

इमा इन्द्रं वरुणं मे मनीषा प्रमन्तुव श्रियमिन्द्रमाना ।

उपेमस्थुर्जोष्टार इव वस्यो रन्दीरिव भवसो भित्तगता ॥ (४।४।६)

मेधातिथिः काएव इन्द्रावरुणौ सह स्तौति ॥ १ । १७ ॥

इन्द्रा वरुणयोरहं सम्राजोऽहं प्रहरे ॥ ना नो ह्युता इन्द्रे ॥ १ ॥

गन्तारा हि म्योऽवसे ह्यं विप्रस्य मास्त ॥ धर्मा राधर्मानम् ॥ २ ॥

अनुकामं नर्पयेधामिन्द्रावरुणं गव आ ॥ ता वां नेतिष्टमहे ॥ ३ ॥

युवाकु हि शचीनां युवारु सुमनीनाम् ॥ भूयान् पण्डितानाम् ॥ ४ ॥

इन्द्रः सहगदानां धन्याः गंस्तानाम् ॥ मर्तुर्भवेत्तानाम् ॥ ५ ॥

तयोरीदवस्ता वय मनेम नि च धीमहि ॥ गन्तारं प्र वेदन्तम् ॥ ६ ॥

इन्द्रावरुणं दानं हृदे पिप्रय सारणे ॥ गन्तारं हिन्दुः सारणे ॥ ७ ॥

इन्द्रावरुण नू नु वां सिपासन्तीषु धीष्वा ॥ अस्मभ्यं शर्म यच्छतम् ॥ ८ ॥
प्र वामश्नोतु सुष्ठुतिरिन्द्रावरुण यां हुवे ॥ यामृधाथे सधस्तुतिम् ॥ ९ ॥

वसिष्ठ इन्द्रावरुणौ सह स्तौति ।

सम्राडन्यः स्वराडन्य उच्यते वां महान्ताविन्द्रावरुणा महावसू ॥
विश्वेदेवासः परमे व्योमनि संवामोजो वृषणासं वलं दधुः ॥ (७८२।२)
अन्वपां खान्यतृन्तमोजसा सूर्यमैरयं दिवि प्रभुम् ॥
इन्द्रावरुणा मदे अस्य मायितोऽपिन्वतमपितः पिन्वतं धियः ॥ (७८२।३)
युवामिद्युत्सु पृतनांसु वह्नयो युवां क्षेमस्य प्रसवे मितज्ञवः ॥
ईशाना वस्व उभयस्य कारव इन्द्रावरुणा सुहवा हवामहे ॥ (७८२।४)
अर्वाङ्नार दैव्येनावसा गतं शृणुतं हवं यदि मे जुजोषथः ॥
युवार्हि सख्यमुतवा यदाप्यं मार्षीकमिन्द्रावरुणा नियच्छतम् ॥ (७८२।८)

इन्द्रावरुणयोः समत्वोपपादकं विज्ञानम् ।

वैज्ञानिकास्ते कतिचिन्महर्षयः समत्वविज्ञानमिहान्वमोदयन् ॥
देवेश्वरो योऽस्त्यसुरेश्वरोऽस्ति यस्तयोः परः कोन्ववरश्च को नु वा ॥ १ ॥
तेजोविभागं स यथैक ईष्टे तथाऽपरः स्नेहविभागमीष्टे ॥
सर्वं यथेदं व्यतिरिच्य नाग्निं नापस्तथेदं व्यतिरिच्य किञ्चित् ॥ २ ॥
देहे च नापः क्व ममास्ति जीवनं देहे च नाग्निः क्व ममास्ति जीवनम् ॥
अग्नेरिहापोऽग्निरपां तु गर्भजो विज्ञानमिन्द्रावरुणाद्वलं भवेत् ॥ ३ ॥
एकस्तयोः सत्यहितो यथाऽयं परस्तथाऽसावृतसत्प्रतीतः ॥
यथाऽङ्गिरा एव ऋषिः सुरस्यासुरस्य निर्भाति भृगुमर्थर्षिः ॥ ४ ॥
अर्वाक् च सूर्याद्वरुणोऽस्ति रोदसीगतः स देवेन्द्रमनुव्रजन् स्थितः ।
यः क्रन्दसीस्थः परतोऽस्ति सूर्येतः स पञ्चविंशे वरुणं श्रयत्ययम् ॥ ५ ॥
समुद्रगर्भं भुवनं हिरण्यमयं तदण्डमद्भिः परितः समाप्लुतम् ।
समुद्र आकाशगतः स वाङ्मयो वाग्निन्द्र आकाश इयं हि संयती ॥ ६ ॥
सा क्रन्दसीतो ह्यवरास्ति रोदसी सा क्रन्दसीतोऽपि परास्ति संयती ।
द्यावापृथिव्यौ त्रिविवे इमे स्थिते अश्वत्थवल्शामनु ते निरीक्षयेत् ॥ ७ ॥

इत्थं स इन्द्रो वरुणं समाश्रितस्तथा तमिन्द्र वरुण सन्निः ।
नान्योन्यतोऽन्योन्यमिदं प्रहीयते तेनायमिन्द्रो वरुणश्च तुभ्यम् ॥ २ ॥

उभयोः परितोषार्थेन्द्रवारुणभारतयोर्मध्ये त्रिमिष्टनिधानः ।

सुरेश्वरस्यैष ततः न्वराजः सभ्राज एवं त्वसुरेश्वरस्य ।
सखा वसिष्ठः समभूत् तयोश्च द्वयोः प्रियं वर्तयन् स्म नित्यम् ॥ ६ ॥
द्वयोस्तदा सोऽनुमते वसिष्ठश्चक्रे स्थितिं भारतवर्षमध्ये ।
ऐन्द्रं तथा वारुणमन्तराऽर्द्धं सरन्वर्ती नाम पुर व्यदत्त ॥ १० ॥
तत्रैष सूर्यसदृशं चकार विज्ञानभवनं तत् ।
वैज्ञानिकीं परीक्षां कृत्वाणस्तत्र वसति स्म ॥ ११ ॥

इतिहामोपमंहारे जग्जुस्त्रामिज्ञानम् ।

आख्यानमेतदुक्तं जरथुस्त्रमतानुगामिनां न्ये ।
अपि च भविष्यपुराणे कथंचित्कृतमभासम् ॥ १ ॥
जरथुस्त्रा इह बहव प्रागभयन् किन्तु नयेन प्रथम ।
दौहित्रं स ऋजिश्चनं आसीत् न ननं न उदात्तम् ॥ २ ॥
अस्ति भविष्यपुराणे नभया याये न (१५०) अस्ति (१००) ।
मन्त्रद्रष्टुं जिश्चनं उल्लेख्य प्राक्तनं न ॥ ३ ॥
वैदिकमन्त्रकृदासीदपिर्भरदाजयं न ।
स ऋजिश्चा तम्यायं दौहित्रोऽन्यथा वेति मदे ॥ ४ ॥
ऋक्षाधो वा कश्चित् तस्य भवेदेव दौहित्र ।
किन्तु पुरातन आसीदेव मनो नानं देवदि ॥ ५ ॥
मैत्रो धर्मः पूर्वं प्रचरित आसीत् तेषाम् ।
ब्राह्मं व्रतं च गोत्रं निहिं जरथुस्त्रम् ॥ ६ ॥
एतत्तु जरथुस्त्रोविदमिन्द्राजिनां नित्यम् ।
इति वेदान् रचयित्वा मंत्रं नित्यं नि ॥ ७ ॥
जरथुस्त्रं ज्ञानात् नित्यं जरथुस्त्रम् ॥ ८ ॥
धर्माचार्यान् नित्यं जरथुस्त्रम् ॥ ९ ॥

काले कालेऽन्योऽन्यो जरथुस्रोऽभूत् प्रभावशाली सः ।

शाकद्वीपनिवासिषु मगेषु धर्मं स्वमप्रथयत् ॥ ६ ॥

जरथुस्रधिष्ण्याया अपि जरथुस्रा एव कथ्यन्ते ।

तेषामेव तु कश्चिद्विषिं खरोष्ठीं प्रवर्तयांचक्रे ॥ १० ॥

अद्यत्वे त्वितिहासग्रन्था वैदेशिकानां ये ।

तेषु तु चतुः सहस्रादर्वाचां सन्ति वृत्तानि ॥ ११ ॥

अत एव तु जरथुस्रो यो राजा वाविलोननगरस्य ।

आहुश्चतुःसहस्रप्राये काले तमुत्पन्नम् ॥ १२ ॥

किन्त्वसुरो जरथुस्रः सोऽर्वाचीनो भवेत्कश्चित् ।

तस्मात्त्विह बहुपूर्वः देवयुगेऽन्यो बभूव जरथुस्रः ॥ १३ ॥

देवयुगीयः सोऽयं जरथुस्रो निवसति स्म बाह्लीके ।

ब्राह्मण एषोऽनिन्द्रानसुरांस्तान् वर्द्धयांचक्रे ॥ १४ ॥

अरण्यानां मूजवतां महावृषाणां बाह्लिकानां च जरथुस्रमतानुयायित्वम् ।

ये तेऽनिन्द्रा इन्द्रं निन्दन्तश्चेन्द्रभक्तानाम् ।

येन्द्राणामार्याणां विद्वेषिण आसुरा आसन् ॥ १५ ॥

अरण्यास्त एव कथितास्तेषामीरानदेशोऽयम् ।

अप्योरियंसवासिषु भूयांसश्चाभवन्नरणाः ॥ १६ ॥

आथर्वणे तु पञ्चमकाण्डे द्वाविंशकेऽरणाः सूक्ते (अथर्व सं० ५ का० २२ सू०)

अपि मूजवन्त उक्ता महावृषा बाह्लिकाश्चैते ॥ १७ ॥

“तकमन् भ्रान्ता बलासेन स्वस्रा कासिकया सह ।

पाप्मा भ्रातृव्येण सह गच्छामुममरणं जनम् ॥ (१२)

ओको अस्य मूजवन्त ओको अस्य महावृषाः ।

यावज्जातस्तत्तस्तावानसि वह्निकेषु न्योचरः ॥ (४)

तकममूजवतो गच्छ वह्निकान् वा परस्तराम् ।

शूद्रामिच्छ प्रफर्ष्य तां तकमन् वीव धूनुहि ॥

अन्य क्षेत्रे न रमसे वशी सन् मृडयासि नः ।

अभूदु प्रार्थस्तक्मा स गमिष्यति बाह्लिकान् ॥” (अथर्व० ५ । २२)

विद्वेषाग्निर्ज्वलितः प्रतीयतेऽनेन वाक्येन ।

गन्धारादिस्थानां बाह्यीकादिस्थितैर्विरोधः सः ॥ १८ ॥

ब्राह्मणराजान्यानामन्योन्यं यो विरोधोऽयम् ।

तत्र च देवा ऐन्द्रानन्वसुरा वारुणानभवन् ॥ १९ ॥

“देवानामिदवो महत् तदा वृणीमहे वयम् ॥

वृष्णामस्मभ्यमृतये ॥”

विरोधपरिहारायब्रह्मणा कृतः पूर्वपश्चिमभेदेन भारतवर्षस्य द्वेधाविभागः ।

देवा इत्थं देवानेवाराध्यानपश्यन्ते ॥

वलदानसुरान्मेध्यान् पश्यन्तस्त्वासुरा अभवन् ॥ २० ॥

उभयेषां तु विरोधे भूयसि देशो विभक्तोऽभूत् ॥

ब्रह्मा गुरुर्विरोधं जहार भारतविभागेन ॥ २१ ॥

प्राच्यं भारतमैन्द्रं सिन्धुस्थानं तदेतदाख्यातम् ॥

पश्चिममारतमुक्तं पारस्थानं तु वारुणं तदभूत् ॥ २२ ॥

वारुणपारस्थानं सिन्धोरालोहिताम्भोषेः ॥

तत्रान्ये तु विभागाः शासनभेदात् पुनर्जाता ॥ २३ ॥

कालेन राजशासनभेदात् सीमा हि देशानाम् ॥

संज्ञा च तत्र प्रभिद्यते हीति तच्चिन्त्यम् ॥ २४ ॥

इति बाह्यीके ब्राह्मणानां वैज्ञानिको विवादस्तृतीयं प्रमाणम् ॥ ३ ॥

अथ भारतवर्षस्य भूवृत्तचतुर्थांशत्वाख्यानं चतुर्थं प्रमाणम् ॥ ४ ॥

पृथिवीमण्डलस्य पञ्चत्वाभ्युपगमः ।

पद्मपुराणमत्स्यपुराणादिषु तावदिदं पृथ्वीमण्डलं पञ्चत्वेन व्याख्यातम् ।

तथाहि—

“पद्मं नाभ्युद्भवं चैकं समुत्पादितवर्धत ॥

सहस्रवर्णं विरजं भास्कराभं हिरण्यमयम् ॥

पद्मे हिरण्यमये तस्मिन्नसृजद् भूरि वर्चसम् ॥

स्रष्टारं सर्वलोकानां ब्रह्माणं सर्वतोमुखम् ॥

तच्च पद्मं पुराभूतं पृथिवीरूपमुत्तमम् ॥
 यत्पद्मं सा रसादेवी पृथिवी परिकथ्यते ॥
 एवं नारायणस्यार्थे मही पुष्करसंभवा ॥
 प्रादुर्भावोप्ययं तस्मान्नाम्ना पुष्करसंज्ञितः ॥”

(पद्मः पु० सू० अ० ४०) (मत्स्य पु० अ० १६६)

भूपद्मस्य चतुःपत्रत्वप्रतिपत्तिः ।

चतुष्पत्रं चेदं पद्मं पुराणेषु निरूपितम् । यथा मार्कण्डेये—
 “तदेतत्पार्थिवं पद्मं चतुष्पत्रं मयोदितम् ॥
 भद्राश्वभारताद्यानि पत्राण्यस्य चतुर्दिशम्” ॥ इति ॥
 “भारताः केतुमालाश्च भद्राश्वाः कुरुवस्तथा ॥
 पत्राणि लोकपद्मस्य मर्यादा शैलवाह्यतः” (इति ब्राह्मे)

इत्थं चास्य पृथ्वीमण्डलस्य चतुष्पत्रत्वे भद्राश्वभारतकेतुमालोत्तरकुरुणां
 पत्रभूतानां समानैरंशैर्विभक्तानां एकैकं नवत्यंशावच्छिन्नत्वं प्रपद्यते । तथा चोक्तं सूर्यसिद्धान्ते
 भूगोलाध्याये—

“भूवृत्तपादे पूर्वस्यां यमकोटीति विश्रुता ॥
 भद्राश्ववर्षे नगरी स्वर्णप्रकारतोरणा ॥
 याभ्यायां भारते वर्षे लङ्का तद्वन्महापुरी ॥
 पश्चिमे केतुमालाख्ये रोमकाख्या प्रकीर्तिता ॥
 उदक् सिद्धपुरी नाम कुरुवर्षे प्रकीर्तिता ॥
 भूवृत्तपादविवरास्ताश्चान्योन्यं प्रतिष्ठिता ॥
 तासामुपरिगो याति विपुवस्थो दिवाकरः ॥
 न तासु विपुवच्छाया नाक्षस्योन्नतिरिष्यते” ॥ इति ॥

तत्र च लङ्कासुमेरुप्रोतरेखाया भारतवर्षीयमध्यरेखात्वव्यवस्थानान् ततः
 प्राच्यां पञ्चचत्वारिंशदंशैः प्रतीच्यां च तावदंशैरवच्छिन्नस्य भूभागस्य भारतवर्षत्वं सिद्ध्यति ॥
 भारतवर्षात्प्राच्यां नवत्यंशं भद्राश्वं वर्षम्, तत उत्तरतत्तावदंशं कुरुवर्षम्, ततः पश्चात्तावदंशं
 केतुमालवर्षमिति । एतानि भूपद्मस्य चतुर्दिक्षु चत्वारि पत्राणि ॥ भारतवर्षीयमध्यरेखा

चोज्जयिनीस्था निगद्यते । “यल्लङ्कोज्जयिनीपुरोपरि कुरुक्षेत्रादिदेशान्-स्पृशत्सूत्रं मेरुगतं
बुधैर्निगदिता सा मध्यरेखा भुवः” इत्युक्ते । उज्जयिनी चेयं नगरी नवकलाधिकत्रयोविंशे
(२३ । ६) उत्तरेऽक्षांशे स्थिता । ग्रीनवीचमध्यरेखापेक्षया त्रिचत्वारिंशत्कलाधिकपञ्चसप्त-
तिपरिमितात् पूर्वयदेशान्तरांशादारभ्यते ॥ (७५ । ४३ पू० देशान्तरे) तेन ग्रीनवीचमध्यरेखा-
भारतीयमध्यरेखयो षट्सप्ततिरन्तरांशाः सिद्ध्यन्ति । अन्तरांशेषु पञ्चचत्वारिंशदंशैर्हीनेषु ग्रीन-
वीचतः एकत्रिंशे पूर्वयदेशान्तरांशे नीलनदीसागरसंगमप्रदेशोपलक्षिते भारतवर्षस्य पश्चिमा-
सीमेति प्रतीमः । एवं भारतीयमध्यरेखातः प्राच्यां पञ्चचत्वारिंशदंशाः फारमूसाद्वीपोपलक्षिते
प्रशान्तसागरे पर्य्याप्तुवन्तीत्येष प्रशान्तसागरः पूर्वा सीमा संपद्यते ।

इति चतुर्थं प्रमाणम् ॥ ४ ॥

अपि च भारतवर्षाद् बहुपूर्वस्थानामुपद्वीपानां भारतीयत्वाख्यातं भारतवर्षस्य
बहुविस्तृतप्रदेशत्वे पञ्चमं प्रमाणम् ॥ ५ ॥

तथा हि ब्राह्मसप्तदशे, मार्कण्डेयचतु पञ्चाशे, मातङ्गे तु चतुर्दशाधिकशततमे भारतव-
र्षस्यैतस्य नवोपद्वीपाः पौराणिकैराख्यायन्ते ॥

“उत्तरेण समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणे ॥

वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र संततिः ॥ १ ॥”

भारतस्यास्य वर्षस्य नव भेदान्निशामय ॥

इन्द्रद्वीपः कशेरुमास्तान्नपर्णो गभस्तिमान् ॥ २ ॥

नागद्वीपस्तथा सौम्यो गान्धर्वस्त्वथ वारुणः ॥

अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः ॥ ३ ॥” इति ॥

स्कान्देऽप्याह माहेश्वरखण्डस्योनचत्वारिंशे (३६) ॥

“इन्द्रद्वीपः कशेरुश्च ताम्र द्वीपो गभस्तिमान् ॥

नागः सौम्यश्च गान्धर्वो वारुणश्च कुमारिका ॥” इति ॥

एषां चाद्यत्वे प्रचलितभाषायां नामानि यथा—

सं०	नामानि	पर्यायाः	भाषानामानि	इंग्लिशनामानि
१	इन्द्रद्वीपः	इन्द्रद्युम्नः	इन्द्रमन	= एंडमन
२	नागद्वीपः		निकोबार	= नीकोबर
३	सौम्यः	सोमत्रा	सुमात्रा	= यवद्वीप-बलिद्वीप
४	गान्धर्वः		फोलीपायिन द्वीप संघः	लुम्बक सुम्बाफ्लोरीन प्रभृति
५	वारुणः		वोर्नियो	जावाद्वीपसंघोप्यत्रैव संनिवि
६	कशेरुमान्	कसेरु	सेलेवीस	शते । = ब्रूनाई = ब्रूणी
७	गभस्तिमान्		मलूका	
८	ताम्रपर्णी-सिंहलः	ताम्रपर्णी	टांपूरोवेनसीलोन	सीलोन-सरन्-
९	कुमारिका	कुमारो	भारतखण्डः	

इन्द्रद्वीपः ।

१—पुरात्वे कदाचिदोड्रदेशीयपुरुषोत्तमक्षेत्रे इन्द्रद्युम्नो नाम राजाऽसीत् ।

“पुराकृतयुगे कश्चिन्मालवेऽवन्तिकापुरे ॥

वभूव नृपतिः श्रीमानिन्द्रद्युम्न इति श्रुतः ।

स गत्वा नृपतिः क्षेत्रं मुक्तिदं पुरुषोत्तमम् ॥

तत्र संकर्षणं कृष्णं सुभद्रां चान्वसादयत् ।

मार्कण्डेयं वटं कृष्णं दृष्ट्वा रामं च सुव्रतः ॥

सागरे चेन्द्रद्युम्नाख्ये स्नात्वा मोक्षं लभेद् ध्रुवम् ।

एवं गत्वा स नृपतिर्दक्षिणेत्योदधेस्तटम् ॥

निवासमकरोत् तत्र वेलासासाद्य सागरीम् ॥”

इति ब्राह्मे ४१ । ४२ अध्याये तथोक्तेः ।

तेनाधिकृतत्वादस्योपद्वीपस्य ऐन्द्रद्युम्नसंज्ञा जाता । तदपभ्रंशादयम् “ऐन्द्रमन” शब्द प्रवृत्त इति प्रतीयते । चत्वारिंशदधिकशोत्तराक्षांशात् पञ्चदशाधिकत्रयोदशाक्षांशापर्यन्ते प्रदेशे

(१० ॥ ४०—१३ ॥ १५) तथा षट्त्रिंशदधिकशतवत्वंशात् त्रिंशद्वत्त्यंशपर्यन्ते पूर्वदेशान्तरे । संनिविष्टोऽयमिन्द्रधुम्नः (६२ । ३६—६३ । ०) ॥ १ ॥

नागिद्वीपः ।

२—अथ मुरार्युगो नागवर्षा केचन क्षत्रियाः स्वर्गभूमौ 'तांसकन्द' प्रदेशादौ राज्यमकुर्वन् । ते च काश्मीरप्रदेशं पश्चादधितिष्ठन्तोऽस्मिन् भारतवर्षे यत्र तत्रोपनिविष्टा बभूवुः । तेषामेवाधिकारे यो द्वीप आसीत् स नागेश्वर इति प्रसिद्धो स्लेच्छभापायामपभ्रशात् "नीकोवर" इति संभवति । सपञ्चाशपञ्चांशादष्टभांशं यावदुत्तरेऽक्षांशे (६।५०—८।०) त्रिनवत्यंशात् सपञ्चाशत्रिनवत्यंशं यावत्पूर्वदेशान्तरे (६३ । ०—६३ । ५०) नागेश्वराख्यो नीकोवरः ॥ २ ॥

सौम्यः ।

३—अथ सोमो राजा गन्धर्वर्वासीद् गन्धर्वाणामधिपतिर्लोकपालः—इति वेदे महाभारते "पुराणादौ च" प्रसिद्धम् । गन्धर्वदेशो गान्धारदेशः संप्रति "अफगानिस्तान"—इति प्रसिद्धः । तस्याधिपत्येनायं द्वीपः सौम्य उच्यते । अधीने च त्राप्रत्ययो वेदभापायामनुशिष्यते । तेनैतस्य पुरातत्वे सोमत्रा इति नाम संभाव्यते । तदपभ्रंशादयं "सुमात्रा" शब्दः प्रवर्तते । निरवृत्ते द्वियुतशततमे पूर्व देशान्तरे सोमत्रा द्वीपः । यवद्वीप बलिद्वीप—लम्बक—सुम्बावा—सुम्बा—फ्लोरीन प्रभृतिर्जावाद्वीपसंघोऽपि सुमात्रा—संनिध्यात् सौम्यशब्देनैव संगृह्यते ॥ अतएव जावाद्वीपसंघस्य दक्षिणाष्टमाद्यंक्षांशवृत्तित्वेऽपि भारतीयत्वं नोपहन्यते । षडधिकशतांशादष्टाधिकशतांशपर्यन्ते पूर्वदेशान्तरेऽयं जावाद्वीपसंघः ॥ ३ ॥

गान्धर्वः ।

(४) अथैव सोमस्य सामन्तप्राया विश्वावसुप्रभृतयो गन्धर्वराजा प्रसिद्धाः । तदधीनो द्वीपो गान्धर्वः । स चायं गान्धर्वद्वीपसंघः फीलीपीनगन्धर्वाख्यायते । तत्र मनिल्लादयः प्रदेशा अन्तर्भवन्ति । द्वादशे उत्तराक्षांशे (१२ । ०) त्रयोविंशशते पूर्व देशान्तरे (१२३) ऽयं द्वीपः स्थितः ॥ ४ ॥

वाल्क्यः ।

(५) अथ वल्क्योऽपुराणां राजासील्लोकपालः । तदधिष्ठानो द्वीपो वाल्क्यः । तदप-

भ्रंशादयं वोर्नियो शब्द उच्यते । द्वयधिकपञ्चमे उत्तराक्षांशे (५।२।३०)
द्वापञ्चशत्कलोपेते चतुर्दशशते देशान्तरेऽयं वारुणद्वीपः (१४४।५२ पू०) ॥ ५ ॥

कशेरुमान् ।

(६) अथ कशेरुः कन्दविशेषः । तस्याधिक्येन कदाचिदत्रोत्पत्तिर्भवैदिति कशेरु-
मानित्ययमाख्यातः स्यात् । ककारलोपे सेलुवाशब्दोपपत्तिक्रमेणायं द्वीपः सेले-
वीस इत्युक्त इत्यनुमीयते ॥ वोर्नियो द्वीपादयं प्राच्यां संनिविशते । चतुर्थे दक्षि-
णाक्षांशे- (४।०) एकविंशशते पूर्व देशान्तरे (१२१) कशेरुमान् ॥ ६ ॥

गभस्तिमान् ।

(७) सेलेवीसात् प्राच्यां निरक्षवृत्ते मलक्कोपद्वीपो गभस्तिमान् ॥ केचित्तु मलु-
क्वातोऽग्निकोणस्थमासन्नप्रायं पपुवा द्वीपं गभस्तिमच्छब्देनेच्छन्ति । अद्यत-
नास्तु पपुवोपद्वीपमाष्ट्रेलियाद्वीपानुबन्धिनमाहुः ॥ अत एवेदानीं भारतीयोपद्वीपत्वा-
भावात् तत्परित्यागः । वस्तुतस्तु संभाव्यते पुरा युगे तस्यापि भारतीयत्वमिति
मलुक्कामारभ्य पपुवापर्यन्तस्य द्वीपसंघस्य गभस्तिमच्छब्देन शक्यते व्यवहारः
कर्तुम् । निरक्षवृत्ते साद्वे सप्तविंशशते (१२७।३०) देशान्तरे गभस्तिमानस्ति ॥ ७ ॥

ताम्रपर्णीः ।

(८) अथ सिंहलद्वीप एव ताम्रपर्णीद्वीपः । वीद्धग्रन्थे भारतवर्षीयदेशविभाग प्रकरणे ताम्र-
पर्णीशब्देन सिंहलद्वीपस्योपदिष्टत्वान् । यूनानदेशीयग्रन्थे चायं सिंहलद्वीपः “टापरोवेन”
शब्देनाख्यायते ॥ तावताऽयस्य ताम्रपर्णीसंज्ञोपपद्यते । टापरोवेनशब्दस्य ताम्रपर्णीशब्दा-
पभ्रंशतया संभाव्यमानत्वान् ॥ यत्तु टापूरावणशब्दापभ्रंशतया टापरोवेनशब्दं केचित्
संभावयन्ति तदयुक्तम् ॥ टापूशब्दस्य फारतीयग्राम्यशब्दतया यूनानदेशे तदपभ्रंशस्य
प्रयोगायोगात् । सिंहलस्यरावणटापूत्वाभावाच्च ॥ चत्वारिंशदधिकसप्तमे उत्तरा-
क्षांशे (७।४०) पञ्चाशदधिकाशीति देशान्तरे (८०।५०) चायं सिंहलद्वीपः ॥ ८ ॥

कुमारिका ।

(९) सर्वोप्ययं भारतीयोपद्वीपसंघः संप्रति म्लेच्छभाषायामेकेन शब्देन “इंडियन आर्किपे-
लैगो”—इत्याख्यायते ॥ यस्तु कुमारिकाक्षेत्रादारभ्य काश्मीरपर्यन्तः प्रविततो महाद्वीपः
सोऽत्र प्रधानो नवमो द्वीपः । एते चेन्द्रद्वीपादयः सिंहलान्तिरिक्ताः सर्वेऽयुपद्वीपाः

प्रचलितभाषायां चर्मा शब्देन प्रसिद्धात् कृतवर्म्मणो राज्ञो राष्ट्राद् दक्षिणपूर्वस्यां दिश्येव सनिविष्टा दृश्यन्ते ॥ तत्र वारुणकसेरुगान्धर्वादीनामुपद्वीपानां भारतीयोपद्वीप-
त्वाख्यानं नत्वेवोपपद्येत, यावता फारमोसा प्रदेशोपलक्षितप्रशान्तसागरस्थभारतवर्ष-
सीमान्तर्भुक्तत्वं नाभ्युपगम्येत । तस्माद् भारतीय मध्यरेखात प्राच्यां पञ्चचत्वारिंश-
दंशा भारतस्यास्य पूर्वासीमेति सिद्धम् ॥ ६ ॥ अपि च शक्तिसंगमतन्त्रादौ चीनप्रदेशा-
नामपि केषांचिद् भारतीयत्वेनाख्यानात् चीनसम्बन्धिफारमू सोपद्वीपपर्यन्त भारत-
वर्षमासीदिति विज्ञायते । तथा चेद् भारतवर्षस्य नवत्यश परिमितत्वेपञ्चमं प्रमाणम् ॥
हिन्दुस्थानशब्देन प्रसिद्धस्य कुमारीद्वीपस्य भारतीयत्वाख्यानं भारतवर्षस्य बहुविरचित-
प्रदेशत्वं गमयति ॥ ५ ॥

(६) अपि च सिन्धोः पश्चिमस्थानां देशानां भारतीय देशत्वाख्यानं षष्ठप्रमाणम् ॥

तथाहि—पौराणिके भुवनकोशे भारतवर्षीयावान्तरदेशपरिगणनासूचीच्य-

१ २ ३ ४ ५ ६ ७

देशतया गान्धार—मद्र—पारद—पह्लाव—कम्बोज—शक—यवनादि—देशानामुल्ले-
खाद्देशां देशानां पुरायुगे भारतीयत्वमासीदित्युपगम्यते । बृहत्संहितायां च 'भारतवर्षे
मध्यात् प्रागादिविभाजितादेशा ॥ (१४।१) इति प्रतिज्ञात्—पश्चिमायां हैहय—
पारद—शकदेशानां—पश्चिमोत्तरस्या च तुखारमद्रादिदेशानामाख्यानात् तत्त्वत्वेपेपां
भारतवर्षीयत्वं सुप्रसिद्धमिति गम्यते ।

गान्धारमद्रौ ।

तत्रायमफगानस्ताननाम्ना संप्रति प्रसिद्ध संपूर्णा देश. पुरात्वे गान्धारशब्देन, नपूर्ण-
श्चायमीरानदेशः पुरात्वे मद्रशब्देन व्यवहृतावास्ताम् । इत्यमेतत् पश्चिमं भारतवर्षं गान्धार-
मद्राभ्यां द्वेधाः विभक्तं द्रष्टव्यम् । गान्धारमद्रौ चैतौ प्रत्येक द्वेधा विभक्तावास्ताम् ॥ तत्रैतं गान्धारा
कन्दहारनगरोपलक्षितास्तावत्सिन्धोः पूर्वत पश्चिमतश्च प्रसिद्धा । रामभ्रातृभरतपुराभ्यां तत्तत्र-
पुष्कराभ्यां तत्तत्तिलां पुष्करावतीं च राजधानीं पृथगधिनिष्ठयां स्व-स्व राष्ट्रतयेव गान्धारराणां
द्वेधा विभजमानत्वात् । तथा च भारतीयराजशामनाधीनतयैषामुभयेषां भारतीयत्वमुनिश्चितम् ॥

काबुलतोऽनतिदूरे वायव्ये वामियानास्य ॥

प्रान्तोऽस्ति तत्र पूर्वं राजा लोकाश्च वैदिका अभवन् ॥ १ ॥

ईरानेऽपि तश्चासीत्पुराः युगे पार्सिपोलिसेत्याख्याः ॥
 पारस्यपुरीयायां विदुरद्यत्वे त्विस्तखरनाम्ना ॥ २ ॥
 प्राक्तनपारस्यलिपिप्रोक्षितस्तास्तत्र शिलालेखाः ॥
 तेभ्यस्तत्रत्यानां भारतवर्षीयसंस्मृतोऽधिगतः ॥ ३ ॥

अथौत्तरमद्रा, दुर्निणमद्रा इत्येवं मद्रदेशस्यापि द्वैविध्यं प्रसिद्धम् ॥ तथा च द्विधा
 गान्धारः द्विधा मद्रा इत्येवमेते चत्वारो विभागाः भौगोलिकानिन्त्रा भवन्ति ।

सगरनिर्वासिताः धर्मभ्रष्टाः पञ्चगणाः ॥

अथैतयोरेव गान्धारमद्रयोजनताविभागनिबन्धनाः पुनस्म्ये पारदपहवकाम्बोजादयः
 पञ्चधात्वान्तरविभागा इष्यन्ते । तथा हि यदुवंशीयहैहयसाम्राज्यकाले तन्मित्रराष्ट्रत्वेन ।

१ २ ३ ४ ५
 तदधीनराष्ट्रत्वेन चैते पारदाः—पहवाः—काम्बोजाः—शकाः—यवना इति पञ्चगणाः सिन्धोः
 पश्चिमतो राज्यं कुर्वन्ति स्म । ते चाणुवंश्या द्रुह्यवंश्या वा चन्द्रवंशीयाः क्षत्रियापसदाः सम्राजमेतं
 हैहयमनुवर्तन्ते स्म । हैहयकुलशत्रुः सूर्यवंशीयो महाराजः सगरः स्वपितृविद्वेष्टिणं हैहयराजं
 विनिर्जित्य चक्रवर्तित्वं लेभे । स एषां हैहयनुगामिनां पहवादीनां पराजयत्रिहृतया वैकृतं चक्रे ।
 तदुक्तं ब्राह्मादिषु—

रुरुकस्य वृकः पुत्रो वृकाद् बाहुस्तु जज्ञिष्वान् ॥
 हैहयास्तालजंघाश्च निरस्यन्ति स्म तं नृपाः ॥ १ ॥
 बाहोर्व्यसनिनः सर्वं हृतं राज्यमभूत्किल ॥
 हैहयैस्तालजंघेश्च शक्रेः सार्द्धं द्विजोत्तमाः ॥ २ ॥
 यवनाः पारदाश्चैव काम्बोजाः पहवास्तथा ॥
 एते ह्यपि गणाः पञ्च हैहयार्थं पराक्रमन् ॥ ३ ॥
 सगरस्तु सुतो बाहोर्जज्ञे सह गरेण वै ॥
 और्वस्याश्रममासाद्य भार्गवेणाभिरक्षितः ॥ ४ ॥
 आग्नेयसस्त्रं लब्ध्वा च भार्गवात्सगरो नृपः ॥
 हैहयान् विजघानापशु क्रुद्धो रुद्रः पशूनिव ॥ ५ ॥
 ततः शकाश्च यवनान् काम्बोजान् पारदोस्तथा ॥
 पहवाश्चैव निशेषान् कर्तुं व्यवसितोऽभवत् ॥ ६ ॥

ते वध्यमाना वीरेण सगरेण महात्मना ॥
 वशिष्ठं शरणं गत्वा प्रणिपेतुर्मनीषिणम् ॥५॥
 वसिष्ठस्त्वथ तान् दृष्ट्वा समयेन महाद्युतिः ॥
 सगरं वारयामास तेषां दत्त्वाऽभयं तदा ॥६॥
 सगरस्तां प्रतिज्ञां च गुरोर्वाक्यं निशम्य च ॥
 धर्मं जघान तेषां च वेषानन्याश्चकार ह ॥६॥
 अर्द्धं शकानां शिरसो मुण्डयित्वा व्यसर्जयत् ॥
 यवनानां शिरः सर्वं काम्बोजानां तथैव च ॥१०॥
 पारदा मुक्तकेशाश्च पहवाः श्मश्रुधारिणः ॥
 सर्वेते क्षत्रिया विप्रा धर्मस्तेषां निराकृतः ॥११॥

॥इत्यादि॥

पारदाः ।

पञ्चाज्येते क्षत्रियापसदा भारतीयार्थधर्माद्विच्छेद्याविता कालेन कैलडिया देशनिवासिनाल-
 केयासुरधर्मे दीक्षिता भूत्वा क्रमेणाऽसुरवेपभूषां तद्भाषां चागृहन् । अहंमन्येषु पूर्णाभिमानिषु तेषु
 केचिदात्मनो धनुर्धरवीरत्वं प्रख्यापयन्त पारदा इत्यात्मनो राजोपाधिं जगृहु ॥ तच्छब्दम्यासुर-
 भाषायां धनुर्धरार्थत्वात् । ते चैते पारदा उत्तरकाले श्लेच्छमापया पार्थिया इत्युक्ताः । एषां च
 निवासप्रदेशः काश्यपीयसागरादक्षिणपूर्वदिश्युत्तरस्मट्टोऽभवत् । तमिदानीं युगे सुरासानदेशमाहु ।

पहवाः ।

अथान्ये केचिन्महाबलिप्रार्थकमासुरभाषया पहवान् शब्दं स्वोपाधिं जगृहुः । ते एतन्म-
 इति आख्यायन्त ।

पहवारस्तु पार्थवाः पार्थिवा इति कालेनोत्थाता शासनीनान्ना पञ्चात प्रसिद्धा अभवन् ।
 इस्पहाननगरोपलक्षितो दक्षिणमद्रप्रान्तरतेषां निवासभूमिः ॥ यत्तु केचिन् पारशान्यधिष्ठानोऽद्यत्वे
 पारदानामेव पहवत्वमुपतर्कयन्ति पार्थिवा एव त्वपभ्रंशात् पार्थिया उच्यन्ते इति चाहु । तत्र
 युक्तम् । पौराणिकेऽतिप्राचीने भुवनकोशे पारदानां पहवानां च भेदेन सर्वत्रान्यायन्त्यान् ॥ यथा
 मार्कण्डेयो (५४ अ०)

“वाहीका वाटधानाश्च पहवाश्चर्मत्वण्डकाः ॥

गान्धारा यवनाश्चैव पारदा हारभूपिकाः ॥ १ ॥

कम्बोजा दरदाश्चैव काश्मीरानुगणास्तथा” ॥ इति० ॥

जेन्दावस्ताग्रन्थोऽप्यादितः पृह्वीभापायामासीत् । तेनैते तद्ग्रन्थानुयायिनामग्निपूजकानां पारसीकानां पुरात्वे चन्द्रवंशीयक्षत्रियत्वानुमानेऽपि कालेन पृह्वसंज्ञाप्रसिद्धजातिमुक्तत्वमनुमीयते । जेन्दावस्ताग्रन्थनिर्माता जरथुस्त्रो यद्यपि भगजातीयतया शक आसीत् । तथापि जेन्दावस्ताग्रन्थस्य पृह्वीभापायां निर्माणात् पृह्वशकयोः परस्परतः संस्रवाधिक्यमासीदित्यवगम्यते ॥

कम्बोजाः ।

कामभोजा. यथेच्छभोगप्रवणाः सर्वस्वतन्त्रा वयमित्यात्मानं प्रथयन्तोऽपरे कालेन काम्बोजाः काम्बोजा उच्यन्ते स्म । त एव कम्बोडिया इत्याख्याता । ते चेते काम्बोजा निषध-पवतादक्षिणस्था अपि भारतीया एवासन् । “शवतिर्गानकर्मा कम्बोजेष्वेव भाष्यते”—इति व्याकरणमहाभाष्योक्त्या तत्रत्यानामपि संस्कृतभाषाभाषित्वेनार्यत्वोपगमात् ॥ ये त्विदानीं भारतवर्षस्य पूर्वप्रान्तेऽपि नूनं वर्न्माख्यप्रदेशपूर्वभागस्थात् स्यामदेशात् प्राच्यां, कोचीनतः प्रतीच्यां तयोर्देशयोर्मध्येऽष्टमाक्षांशात् पञ्चदशाक्षांशपर्यन्तं केचिन् कम्बोजा. प्रसिद्धयन्ति । यैश्च कम्बोडिया शब्देनैवेदानीतनाः पाश्चात्या. व्यपदिशन्ति ते खल्वेभ्यो भारतपश्चिमप्रान्तवासिभ्यः काम्बोजेभ्यो भिन्नाः स्युः ॥ पुरा युगे भारतीयसर्वग्रन्थे कम्बोजानां भारतपश्चिमत्वेनैवाख्याना-त्तेषांपारस्तानप्रान्तवासित्वं नापलपितं शक्यते ॥

शकाः ।

अथ शक्ताः समर्था वयमित्यावेद्यन्तः केचम शका अभवन् । ते चेते शका उत्तरयुगे स्कीथीया नाम्नोच्यन्ते स्म ॥ समर्था एते पूर्वभारतेऽपि चिरमागत्य राज्यं कुर्वाणा विक्रमादित्ये-नोज्जयिनीमहाराजेन पराजिता अभवन्निति वदन्त्येतिहासिकाः । शकानामेषां निवासप्रान्तविशेष एव शाकद्वीपः । शकजातीयानां ये ब्राह्मणाविद्यावृत्तयस्ते मगा आख्याताः ॥

“एभिर्यजन्ति भूयिष्ठं तस्मिन् (शाक) द्वीपे मगाधिपाः ॥

विद्यावन्तं कुलश्रेष्ठाः शौचाचारसमन्विताः ॥ १ ॥

॥ इति भविष्यपुराणोक्तः अ० १४ ॥

पारसीकानां मतप्रवर्तको बाह्लीकजन्मा ऋत्विजश्चर्यिकन्यागर्भजो जरथुस्त्रोऽपि भगजातीय एवासीत् ।

वेदोक्तं विधिमुत्सृज्य यतोऽहं लङ्घितस्त्वया ।

तस्मान्ममः समुत्पन्नस्तव पुत्रो भविष्यति ॥ १ ॥

जरथुख इति ख्यातो वंशकीर्तिविवर्द्धन ।

अग्निजात्या मगा प्रोक्ता सोमजात्या द्विजातय ॥ २ ॥

(१३६ । ४३ । ४५) (इति भविष्योक्ते)

एते च जरथुखमतावलम्बिनो वैदिकयर्मविरोधाद्विपरीतमतानुगामिनो बभूवुः । लिपिरपि जरथुखेण दक्षिणतो वामानुगा नवीना प्राकल्प्यत । देवाराधनाविपरीत्येनासुराराधना चानेन प्रकल्पितेत्याहुः ।

विपर्य्यस्तेन वेदेन मगा गायन्त्यतो मगा ।

ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदस्त्वथर्वण ॥ १ ॥

ब्राह्मणोक्तास्तथा वेदा मगानामपि सुव्रत ।

त एव विपरीतास्तु तेषां वेदा प्रकीर्त्तिता ॥ २ ॥

इति भविष्यपुराणे अ० १४ तेषां वैदिक ब्राह्मणविरोधिताया उक्तञ्चान् । मगानामेषा चत्वारो वेदाः क्रमेण विद् विस्वरद (विश्वरद) विदाद, आङ्गिरस इत्युच्यन्ते ॥ शाकद्वीपिनोऽप्येते भारतवर्षं पूर्वमागत्य मगधप्रान्तं त्वनाम्ना वासयामासु ।

यवनदेशाभिज्ञानम् ।

अथ ये खल्वेतेषां सर्वे धर्माणां निश्रणामिश्रणाभ्यां प्रतीनास्ते यवना । ते च ते मंत्रानि यदूदिया इत्याख्यायन्ते । यदूदियानामेवं प्रवानभूता काचिन्नगरी यदूदियाशब्देनैवाख्यायते स्म । तां पाश्चात्या अपभ्रंशाद् यूदियाशब्देनाहुः । तुरुष्कास्त्वेतां नगरं “वेनूलहन” इत्याहुः । तत्रैव च सन्निधाने वेनूलमुकदसनमा नगरी वर्त्तते । ताभ्यामुपलजित फिलिस्तीनान्प्रान्त एव येषां यवनानां प्रधानभूतो देशोऽवगन्तव्यः । यद्यप्यत्र देवयुगे पण्यो नामासुरा वर्त्तन्ति स्म ॥ पण्यस्थानस्यैव चापभ्रंशेनाऽयं फिलिस्तीनशब्दः पश्चात्प्रसिद्धोऽभून् । किन्तु नैतावता पण्यीनां यवनत्वमात्येयम् । पण्यीनां वाणिज्यप्रधानासुरतया यवनानां तु यदूदियानां पश्चादसुराणां भारतीयवृत्रियापसद्व्रतया भेदमयः भारतीयप्रामाणिकत्वात्सिद्धत्वात् ॥ पण्यीनां कालेन विनाशे यवनानां तत्रोपनिवेशस्य कालप्राप्तत्वाच्च ॥ यत् यवनराज्ये मीनजातिपरो न तु यदूदियायवनः यूनानियानगर्ध्वा यवनानी शब्दापभ्रान्त्योपपत्तेरित्याहुः । तत्र विप्रति-

पद्यामहे । द्विधा हि यवनाः स्युः । 'किलातत्रैतन—शैलाभ—यवनाख्यया संस्कृतशास्त्रोक्तानां कैल्ट—यूटन—स्लाव—ग्रीक नामभिर्लेच्छभापार्श्वैः सांप्रतं प्रसिद्धानां स्वर्णरजातिविशेषाणां मन्यतमभेदा एके यवना ग्रीकनाम्ना प्रसिद्धयन्ति । 'अपरे पुनः' 'पहवपारदादित्रियापसदानां भारतीयानामन्यतमभेदा यहूदियाः संभवन्ति । तथा च 'नास्ति विरोधः' इत्यवगन्तव्यम् ।

यूनानिदेशीयेषु यवनशब्दप्रचारस्यार्वाचीनत्वम् ।

अथवा 'विपर्यस्तमिदमुच्यते—यवनशब्दो ग्रीकजातिवचनो न तु यहूदियावचन इति । सत्तुतु यहूदियावचन एवायं शब्दः पुरात्वे व्यवहियमाण आसीन्न तु ग्रीकजातिवचन इति निभृतं प्रत्येतव्यम् । भारतीयेतिहासप्रचारकाले ग्रीसदेशेतिहासस्यान्वकारमयत्वात् तदभिप्रायेण भारतीयार्यशास्त्रे यवनशब्दप्रयोगयोगात् । उक्तं पूर्वम् । दक्षिणभारतस्थ हैहयसम्राज्यकाले तद्वन्धवः पश्चिमभारतवासिनः पञ्चगणाः पश्चात् सगरसाम्राज्यकाले पूर्वभारतादस्मान्निर्वासिता धर्मभ्रष्टा असुरा अभवन्निति । तेष्वेके यवना एव क्रोधादार्थ्येनित्यं विद्विषन्तः सर्वदा योधितु-मुद्यताः सन्तो युद्धधीत्वात् कालेन युद्धधीशब्देनैवाख्याता अभवन् । युद्धधिय एवैते वीरा अपभ्र-शान्मलेच्छैर्भूयसा यहूदीशब्देन व्यपदिष्टा व्यवहारप्राचुर्येण यहूदीसंज्ञया प्रसिद्धा अभवन् । पश्चात्पश्चात् पश्चिमभारतेऽप्ययं पृथक्-पृथक् संनिविष्टानामेषां पञ्चगणानामन्यतमांश्चेते यवना-स्तद्वन्धवः लोहितसागरपूर्यपूर्वदक्षिणकूलस्थानाद्—अदन—प्रदेशादारभ्य आसीरिया प्रदेशान्तान् लोहितसागरपूर्वकूलप्रांतदेशानधिवसन्ति स्म । अतएव भारतंसीमाचतुष्टयीं निर्दिशन्ती भारती-याय्याः 'पश्चिमे यवनाः स्थिताः' इत्याहुः । अद्यत्वे तु यवनशब्दपभ्रंशेन यवनशब्दः केवलमर्व-देशस्य दक्षिणपश्चिमप्रान्तमात्रे संकुचितोऽवशिष्यते । अन्यप्रान्तेभ्यः क्रमेण यवनानामधिपत्य-विच्छेदोद्घातः हेत्वन्तस्तद्वा यवनशब्दप्रयोगस्योच्छिन्नत्वात् यहूदीशब्दव्यवहारप्राचुर्येण च तेष्वयं यवनशब्दप्रयोगः सर्वथा विलुप्तः एवाभूदिति नेदानीं वैदेशिकान्तेष्वमुं शब्दं प्रयुञ्जानां दृश्यन्ते । तदित्यनेषु यहूदीषु विलुप्तप्रयोगोऽयं यवनशब्दः कालगतेरदमुतसामर्थ्यादितिदूरं गिरीशदेश-प्रान्तान्तोभूयसा व्यवहियमाणो दृश्यते । सोऽयमर्वाचीनयुगे खल्वभवद् ग्रीसदेशे यवनशब्द-प्रचारो नापुरत्वे तत्रासीत् ग्रीसदेशेतिहासस्य स्त्रीप्रजन्मनः प्रगष्टादशशतवत्सरेभ्य एव प्रवर्तमान-तथा तदभिप्रायेण यवनशब्दप्रयोगस्यापि तद्वान्तरकालिकत्वेनर्वाचीनत्वोपपत्तेः ।

हैलेयासुरजातीनां ग्रीकोयिनाम्ना पुराप्रसिद्धानां निवासंभिर्जनदेशविशेषे—

ग्रीसशब्दयवनशब्दोपचाररम्भकालविचारः ।

ग्रीसदेशे चायं यवनशब्दोपचारः कस्मान् कालादारब्ध इति जिज्ञासायामुच्यते एष तावद् ग्रीसदेशः प्राचीनतमकाले पैलासगो नाम्ना प्रसिद्धे वन्यैरसभ्यजनविशेषैः पर्वतगुहादिवा

सिभिरेवाक्रान्त आसीत् । तत्र काले स्याम—सीरिया—केलिडया—यमनादिप्रान्तवासिनो युद्धवीरा हेल्लेया आक्रममाणा पेलासगी जातिविशेषान् परामान्य तत्र देशे त्वं सनुपनिवेश चक्रु । मध्यैशियाप्रदेशाच्चेते हेल्लेया ग्रीसप्रदेशमागत्य वन्यान् पराजिग्यिरे इति पाश्चात्या आहु. तद् भ्रान्तम् । मध्यैशियाप्रदेशस्य देवलोकतया तदात्वे व्यवस्थितत्वे तत्र देशे हेल्लेयनामा-सुरविशेषाणां कदाप्यवस्थातुमशक्यत्वात् ॥ “हेल्लेयो हेल्लेय इति कुर्वन्त. पशवभूधु—” इति श्रुतेर्हेल्लिरयं पुरायुगे सीरियाप्रान्तवासी युद्धप्रिय. कश्चिमुपाणां संघविशेष आसीन् । तद्वशधरा सर्वे हेल्लेया स्युः । तेषां विजयिनामावासप्रभावादयं ग्रीसदेश पुरात्वे हेल्लेयावास सन् कालक्रमेण व्यवहारविशेषानुरोधाद् “हेलास—” इत्याख्यायतेस्म ॥ वर्तमानग्रीसदेशापेक्षया बहुविस्तृतोऽयं हेलासप्रदेश आसीत् । तत्र वसन् पुनरिमे हेल्लेया निशियुद्धप्रवणतया निश्याः मन्त क्रमेण हेल्लेनिसनाम्ना प्रसिद्धा अभवन् । हेल्लेयनिशयशब्दापभ्रंशेन हेल्लेनिश शब्दोपपत्तेः संभवान् ॥ पेलासगी जातीयमनुज्याणामप्येषु सहयोगसंस्त्रवाधिक्यप्रभावान्मिश्रणे तन्मिश्रितहेल्लेया एतोत्तर-काले हेल्लेनिस शब्देनाख्याता. पुरायुगे ग्रीसदेशवासिन प्रधान्येनाभूवन् । अत्रैतेऽश्लोका रच्यन्ते—

हेल्लेयवास क्रमतोऽपशब्दो हेलास इत्येष वभूव काले ॥

तत्र स्म हेल्लेनिसजात्यलोका वसन्ति नीवृत्यसुरप्रवीरा ॥१॥

निश्याक्रमन्ते स्म विशिष्य युद्धे हन्तिस्म मुमानिति कारणात्ते ॥

हेल्लेयनिश्या अभवन् प्रसिद्धा हेल्लेनिसा इत्यपशब्दतः स्युः ॥२॥

हेल्लेनिसानां प्रथमस्तु देश स्व. सामदेश सहि सीरियास्य ॥

जिगीपया पश्चिमदिग्गतास्ते यूनानदेशानविचक्र स्त्रा ॥३॥

हेल्लेयलोका गिरिकायवत्वान् ख्याता वभूवुर्गिरिकायिनोऽपि ॥

ग्रीकायिनामान इमेऽपशब्दादासन्नरत्नवचनात् प्रतीतः ॥४॥

ग्रीकायिलोकोपनिवेशहेतोर्ग्रीस स देश कथित पुरात्वे ॥

तच्चेटलीवासिभिरस्य नाम ग्रीसेति क्लृप्तं खलु रोमकान्यैः ॥५॥

कालेनास्मिन् ग्रीसदेशे ‘आर्थेस’—राजधानीपते कोटसनामग्न्य भ्रातृजन्य अदिचन पुत्रस्ततो ग्रीसदेशाद् एशियामाइनरप्रदेशमागत्य तत्र द्वाण्डशनगरी प्रतिष्ठापयामान् । द्वाण्डशनग-रोपलक्षितस्य च तस्य प्रदेशस्य ‘आइयोन’—इति नामकरणं कृतम् । त्रयमेव गन्धार्थोनशब्दो यवनशब्दयूनानशब्दयो प्रत्युत्पत्तिहेतुरवगम्यते । न तत प्रागेनदेशवन्तया यवननगरं प्रत्यु-आसीदित्यतस्तत्राद्यं यवनशब्दोऽर्वाचीनोऽन्तीति ब्रूम । तस्य चतस्य ग्रीनयूनानशब्दनामग-स्याद्यप्रभृति प्राक्तनचतु सङ्ख्यवपूवावधिकाज वा तत्कालविषयकतय नव प्रचिन्नेषु नामनर्ग-

यशास्त्रग्रंथेषु पुराणेतिहासभुवनकोशेषु प्रयुक्तस्य यवनशब्दस्य तत्परतया प्रयोगासंभवादवश्यं युहूदीपरत्वमेवास्तीति सिद्धम् । युहूदीनां चोपनिवेशोऽयं भारतपश्चिमसमुद्रकूलस्थो यूडियाप्रदेश एवास्तीति युक्तं यवनदेशस्य भारतीयप्रत्यतदेशत्वम् ॥ इत्थं चैते क्षत्रिया भारतीयार्थधर्मान्परि-
श्रंशिताःपंचगणा असुरधर्माणोऽयोध्याधिपति—सगरमहाराजसमयादूर्ध्वं प्रसिद्धा अभवन् ।
तेषां गान्धारकम्बोजादीनां भारतीयभुवनकोशे भारतीयत्वेनाख्यानादवश्यमेषां निवासभूमयो
भारतवर्षस्य प्रांतविशेषा आसन्नित्यवगच्छामः ॥

इति षष्ठं प्रमाणम् ॥ ६ ॥

अपि च गान्धारतः पश्चिमोत्तरेषु मद्रेषु यज्ञवेदाध्यापकस्य काप्यमहर्षेर्निवासः

सप्तमं प्रमाणम् ।

वाजसनेयश्रुतौ काप्यमहर्षेर्मद्रदेशवासित्वाख्यानम् ।

तथाहि—वाजसनेयश्रुतौ उद्दालक आरुणिर्याज्ञवल्क्यं प्रति सूत्रात्मानमन्तर्यामिणं च
पृच्छन्नाह—

“मद्रेष्ववसाम पतञ्जलस्य काप्यस्य गृहेषु यज्ञमधीयानाः” ॥ इति ॥ ते हीमे यज्ञवेदा-
ध्यापकस्य काप्यस्यर्षेर् निवासप्रदेशा मद्राः पञ्चत्रिंशे (३५) खलूत्तरेऽक्षांशेऽष्टाचत्वारिंशे (४८)
तु ग्रीनवीचमध्यरेखातः पूर्वदेशान्तरे उज्जयिनी मध्यरेखातस्तु अष्टात्रिंशे (२८) पश्चिमदेशान्तरे
सन्निविष्टा अध्यवसीयन्ते यथा हि दक्षिणोत्तरा विहाराः । दक्षिणोत्तरा कोशलाः । पूर्वोत्तराः
पञ्चालाः । दक्षिणोत्तराः कुरव । इत्यवमेते सिन्धोः प्राच्यदेशा द्वेधा विभक्ता आसन् एवमेवैते
सिन्धो पश्चिमभागस्था मद्रा अपि दक्षिणोत्तराभ्यां विभक्ताः स्मर्यन्ते । तांश्चैतान् मद्रान्
पूर्वकाले [Media] मेडियाशब्देन म्लेच्छा व्यवहरन्ति स्म । किन्त्विदानीमुत्तरमद्राः खुरासान
शब्देन दक्षिणमद्रास्तु परसियाशब्देन व्यवह्रियन्ते । कालेन देशविशेषाणां सीमाभेदस्य संज्ञाभेदस्य
च प्रकृतिनियमसिद्धत्वात् ।

मद्रदेशाभिज्ञाने नवीनमतप्रत्याख्यानम् ।

केचित्तु पाश्चात्या नयपालचीनान्तरालस्थं भूटानदेशं मद्रदेशत्वेन कल्पयन्ति । तेषां
नितान्तमनभिज्ञानां कल्पनायाः नि.सारत्वादुपेक्षामात्रं सत्कारः । यच्च पुनरद्यत्वे केचिदन्ये
पाश्चात्यानुगामिनः पण्डिता इरावतीचन्द्रभागाप्रान्ते मद्रदेशं मन्यन्ते तद्विभ्रान्तम् । सिन्धुनदस्य

भारतीयपश्चिमसीमान्वभ्रमेणोपकल्पितानामीदृशप्रवादानामनादेयत्वात् । भारतीयोद्दीच्यदेशगण-
नासु गान्धार-वाह्लीक-पह्लव-शक-यवन-पारद-कम्बोजादिसहकारेण मद्राणामप्युक्तनया नेपामिवैषां
मद्राणामपि सिन्धोः पश्चिमप्रान्तीयत्वेनोपगम्यत्वाच्च । दृश्यते च सिन्धुनद्यां पश्चिमतो विजित्य-
शान्तरेण मेदिना शब्दप्रसिद्धो देशः । तस्योत्तरमद्रत्वेऽध्यवसिते ततो दक्षिणपूर्वस्यां गान्धार-
संलग्नतया दक्षिणमद्रत्वमुपकृत्युक्तं भवति । तथा हि सर्वोऽप्यद्यतनोफगानदेशः पुरात्वे गान्धार-
देश आसीन् । सर्वश्चायमद्यतन पर्सियादेशः पुरा मद्रदेश आसीदाय्याणाम् ॥ विभृतौ हीनी
देशौ गान्धारो मद्रश्च पुराणभारतादिभ्योऽवगम्येते ॥ तत्रैते मद्रा गान्धारतः संलग्नप्रायाः पश्चि-
मोत्तरदेशाः स्युः । तथा चैतस्य मद्रस्याद्यतनयोरिस्पहान-तिहरानयोर्नगरयोः प्रदेशे पुरात्वे
सन्निविष्टतया तावत्प्रदेशपर्यन्तं भारतवर्षमासीदिति विज्ञायते । तत्र च काप्यस्य यज्ञवेदा-
ध्यापकस्य निवासस्तेषां देशानामार्यनिवासभूमित्वं चोपपद्यते ॥

इति सप्तमं प्रमाणम् ॥ ७ ॥

अपि च यवनदेशस्य भारतवर्षीयपश्चिमसीमात्वात्यानमष्टमं प्रमाणम् ।

(१) अद्यत्वे यवनशब्दस्य अर्धदेशप्रान्तविशेषे-यमनदेशे संकोचः ।

किरातानां पूर्वं सीमात्वं, यवनानां पश्चिमसीमात्वं भारतवर्ष-न्य पुराणोपवाच्यायते ।
यथा मात्स्ये (११४)

योजनानां सहस्रं वै द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तर ॥

आयतस्तु कुमारीतो, गङ्गायाः प्रवहावधिः ॥ १ ॥

द्वीपो ह्युपनिविष्टोऽयं स्लेच्छैरन्तेषु सर्वशः ॥

यवनाश्च किराताश्च तस्यान्ते पूर्वपश्चिमे ॥ २ ॥

मार्कण्डेयेपि (५४)

योजनानां सहस्रं वै द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरम् ॥

पूर्वं किराता यस्यान्ते पश्चिमे यवनास्तथा ॥ ३ ॥ इति ॥

यमन, हेजाज, तिहामा, नेलद. ऐसामा—इत्येवं पञ्चधा विभक्त्यारब्धदेशानां स्मृति-
समुद्रोपकृतयो यावान् प्रदेशो यमनशब्देन प्रतिपन्नः सोऽयमेवैव प्रदेशो भारतीयैर्यमनदेश-
ख्यायते । तेन च समसीमतया भूमध्यसागरोपकृतन्या प्रदेशा अप्युपलब्धन्ते । अत्र यमन-
शब्दश्चायं न केवलं ग्रीसदेशपरपर्याययूनानदेशं वामिषः । तस्मिन् उन्मूलनं नागरपञ्चोपनि-
यानगरोपलक्षितयहूदियाप्रान्तवासियहूदिजातिवचनं प्रायेणार्यग्रन्थेषु प्रयुज्यते ॥

(२) यवनशब्दस्य मुसलमानजातिपरत्वप्रत्याख्यानम् ।

यत्तु यवनशब्दोऽयं मुसलमानजातिपरः । सन्ति हि सिन्धोरत्यासन्ने काबुलादिप्रदेशे पठानजातीयानां भूयांसः सन्निप्रवेशाः । तदभिप्रायेणैव च “पश्चिमे यवनाः स्थिताः” — इत्यादि वचनोपपत्तिरिति सिन्धुनद एवैतस्य भारतवर्षस्य पश्चिमासीमा निष्कृत्यत इति केचिदाहुः — तत्तुच्छम् । मुसलमानानां चतुर्दशशतान्या अर्वाचीनतया पुराणनिर्माणकालस्य च चतुःसहस्राद्या अप्यधिकप्राचीनतया पौराणिकभुवनकोशे मुसलमानाभिप्रायेण यवनशब्दप्रयोगासंभवात् ॥ पुराणनिर्माणकाले च गान्धारमद्रादिदेशा आर्याध्युपिता एवासन्निति महाभारतादि प्राचीनग्रन्थेभ्योऽवसीयते । तस्मात्सिन्धुनदोपलक्षितप्रान्तस्य भारतसीमात्वं नोपपद्यते ।

(३) पुराणुगे यवनशब्दस्य कैलडियापश्चिमतो युहूदियाप्रान्ते निरुद्धिः ।

अवश्यं चास्मिन् पश्चिमे भारते इराकदेशापरपर्यायः कैलडियाप्रदेशः कालकेयासुरगणाध्युपितः पुराकालादेवैतन्मद्रदेशात् पश्चिमतोऽनार्यगणाध्युपित आसीदिति प्राचीनग्रन्थेभ्योऽवगच्छामः । लङ्कावासिरावणकुम्भकर्णसोदरभगिन्या शूर्पणखाया अस्मिन्नेव कैलडियाप्रदेशे कालकेयासुरतो विवाहसम्बन्धस्य रामायणे व्याख्यायतत्वात् । ततोऽपि पश्चिमतोऽयं यहूदिया प्रदेशः प्रतिपद्यते । त एवैते यहूदीसंज्ञयाऽद्यत्वे प्रसिद्धा जातिविशेषा आर्यग्रन्थेषु यवना इत्युच्यन्ते स्म । यत्तु—

“म्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्यक् शास्त्रमिदं स्थितम् ।

ऋषिवत् तेषु पूज्यन्ते किम्पुनर्देवविद् द्विजः” ॥ १ ॥

इति गर्गोक्तेर्ग्रीसापरपर्याययूनानदेशवासिवचनोऽयं यवन शब्द इति केचिदाहुः तत्रोच्यते । संभवति हि ग्रीकजातीयानामिद्वैतेषां यहूदीजातीयानामपि ज्योतिर्विद्यायां नेपुण्यमिति नैतावता यवनशब्दस्य यहूदीवचनत्वं शक्यमपवादितुम् । वराहमिहिरस्याप्यत्रैव देशे ज्योतिर्विद्यालाभम्योनुमानात् । अथवा सिकन्दरराज्यकाले तत्कर्मचारितया बहवो यवना इह निवसन्ति स्म । तेभ्य एवास्य वराहमिहिरस्य ज्योतिर्विद्यालाभः संभाव्यते । कालनेमिनामा यवनोऽपि कृष्णद्वेपी मथुरा वरोधको न ग्रीसदेशीयो यवनः । किन्तु यहूदीय एवायं स्यादिति संभाव्यते । अस्या एव जातेः परिवर्तेन मोहम्मदजन्मोत्तरकाले मोहम्मदमतग्रहणनिबन्धनो मुसलमानकुलप्रादुर्भाव इति प्रतीयते । त इमे यवना लोहितसागरभूमव्यसागरयोः प्राक्कूलोपलक्षितप्रान्ते प्रायेण पुरात्वे वसन्तिस्मेति यवनानां भारतवर्षीयपश्चिमसीमास्थत्वं साधूपपद्यते ।

यत्तु—अद्यत्वे अर्बदेशस्य दक्षिणपश्चिमप्रान्तमात्रे कनीयसि प्रदेशे यमनशब्दो व्यवहृतो दृश्यते तदिदमन्यान्यजातीयपरराजक्रान्तिनिबन्धनादेपां यवनानां परामवाद्स्य यवनदेशस्य संकोच-
मात्रं प्रतिपद्यते ॥ ७ ॥

इत्यष्टमं प्रमाणम् ॥ ८ ॥

व्याकरणभाष्ये तूरसपर्वताभिप्रायेणादर्शपर्वतस्य भारतीयपश्चिमसीमात्वाख्यानं

नवमं प्रमाणम् ॥ ९ ॥

अपि चार्थ्यावर्तस्य चतुःसीमनिर्देशं कुर्वता भगवता व्याकरणमहाभाष्यकारेण “प्रागाद-
र्शात्, प्रत्यक् कालकवनात्, दक्षिणेन हिमवन्तमुत्तरेण पारियात्रम्”—इत्युक्तम् । तत्रायमाख्या-
वर्तशब्द उपलक्षणमाख्यायणस्यापि । आर्य्योपनिवेशस्याभिप्रेतत्वेन दक्षिणात्यभानगरहितयो-
पौरस्त्यपाश्चात्ययोर्भारतविभागयो सहैवात्र विवक्षितत्वात् । तथा च—तत्रादर्शशब्दस्य भूमध्यसाग-
रोत्तरप्रान्तस्थतारसपर्वतवाचितया, सिनाइपर्वतापरपर्याय-तूरसपर्वताभिप्रायतया वा प्रतिपत्ति-
कार्या ॥ समुद्रेण यद्ब्रूदियाख्ययवनदेशेन च तस्यादर्शस्य तुल्यदेशत्वान् । यत्तु प्रादर्शशब्देन
सिन्धुनददक्षिणकूलस्थं सुलेमानपर्वतं केचित्कल्पयन्ति तन्न युक्तम् । पश्चिमसीमात्वेनोपदिष्टयोः
समुद्रयवनदेशयोस्तत्रोपसत्त्वभावान् । अक्षरसाम्येन तारसस्य तूरसस्य वा मिनाधिपर्वतस्याऽऽदर्श-
त्वेन प्रतिपत्तुं युक्तत्वाच्चेति दिक् ॥

इति नवमं प्रमाणम् ॥ ९ ॥

(१०) त्रिपुरासुरवधाख्याने लौहपुरस्य पृथ्वीलोकस्थत्वाख्यानं दशमं प्रमाणम् ।

त्रिपुरांशीनि काव्यम् ।

१—श्रौतग्रन्थे ब्राह्मणाख्ये पुराणे. मत्स्यादीं वा त्रिपुराख्यानमुक्तम् ॥

तत्रैकस्या. सामदेशस्थपुर्या पृथ्वीत्वोक्तिर्विच्यतेऽन्यत्रमाणम् ॥ १ ॥

असुरविभागविशेषस्य मयमंजा ।

२—अनेकधा प्रागसुरा बभूवुर्वर्गैर्विभक्ता भुवि तेषु कश्चिन् ॥

वर्गो मयो नाम गत. प्रसिद्धि मायाव्ययं भूरि चगर नायाम् ॥ २ ॥

तारसाद्विशृङ्गे उत्तमा काञ्चनी पुरी ।

८—अस्यास्तूदक् पश्चिमे तारसाख्यो योऽद्रिस्तस्मिन्तारकाख्यो मयोभूत् ।

कूटे हैमी तारकस्याभवत् पू.पामीराद्रेः पश्चिमे स्वर्गरूपा ॥ २७ ॥

सप्तत्रिंशोत्तरा क्षांशे तार साख्योस्ति पर्वतः । (३७ । ० । ७०)

त्रयस्त्रिंशे पूर्वदेशान्तरांशे ग्रीनवीचतः ॥ २८ ॥ (३३ । ० । ५०)

त्रिचत्वारिंशदधिके द्वाचत्वारिंशभागके । (४२ । ४३)

उज्जयिन्याः पश्चिमतस्तारसस्तत्र सा पुरी ॥ २९ ॥

तूराद्विदक्षिणोपत्यकायां प्रथमा आयसी पुरी ।

९—मध्या येयं त्रैपुरी पूरसुर्या दिश्येतस्या दक्षिणस्यामदूरे ।

पश्यामोऽन्यं पर्वतं तूरसंज्ञं लोका आहुर्य सिनायीति नाम्ना ॥ ३० ॥

अष्टाविंशोदगक्षांशे सार्द्धेऽयं तूरपर्वतः । (२८ । ३० । ७०)

चतुस्त्रिंशे दशोपेते पूर्यांशे ग्रीनवीचतः ॥ ३१ ॥ (३४ । १० । ५०)

त्रयस्त्रिंशत्कलाढ्यैक चत्वारिंशांशके स्थितः । (उज्जयिनीपश्चिमे) (४१।३३)

उज्जयिन्याः पश्चिमतः सिनायी तूरपर्वतः ॥ ३२ ॥

पुरत्रयाध्यक्षास्त्रयस्त्रिपुरासुराः ।

१०—विद्युन्माली तूरशैलेयपुर्ग्यामेकोऽर्घ्यक्षो वीर आसीत्पृथिव्याम् ।

मध्ये सिन्धूपहरे त्वम्बुजाक्षः सर्वाध्यक्षोऽन्यश्च सामो मयोऽस्मिन् ॥ ३३ ॥

स्वर्गे त्वास्तारसाद्विस्थपुर्ग्या धीरास्तारस्तारकस्तारकान्तः ।

मुख्याध्यक्षास्तासु पू.पु त्रयोऽमी विद्युन्माली तारकाक्षोऽम्बुजाक्षः ॥ ३४ ॥

काञ्चनं तारकाक्षस्य चित्रमासीन्महात्मनः ।

राजतं कमलाक्षस्य विद्युन्मालिन आयसम् ॥ ३५ ॥

इति भारते कर्णपर्वणि त्रयस्त्रिंशाध्यायोक्तेः ।

मात्स्ये सूक्तं तारकाक्षोऽधिराजः काष्णायस्यां रौप्यमय्यामधीशः ।

विद्युन्माली, हैमपुर्ग्या मयोऽस्थाद् यद्वा सर्वाधीश्वराः सर्व एते ॥ ३५ ॥

पुरत्रयस्य देशान्तरसंचारित्वम् ।

११—अन्तर्भूम्योऽन्तश्छदिर्भित्तयो वा शालाः सर्वा अयसैर्लोहपुर्ग्याम् ।

हैम्यां हैमै राजतै रौप्यमय्यां पट्टैः कृष्णा आशुयोज्यैर्वियोज्यैः ॥ ३६ ॥

सर्वैरेतैरुद्धृतैर्धातुपट्टैरेता पुण्यो यत्र तत्रोपनेतुम् ।
 शक्यन्ते स्मानेकधात्वं च नेतुं युद्धे वीरैरप्रवृष्ट्या अभेद्या ॥ ३७ ॥
 पुण्ये पुण्ये चान्तरीक्षे त्रिपुण्यां विद्यन्माली स्वां पुरी भूनिलोकात् ।
 स्वर्गाल्लोकात् तारकाक्षः पुरीं स्वां नीत्वैकस्यां पुण्यवन्धान मैताम् ॥ ३८ ॥
 ये वा भौमा आन्तरिक्ष्याश्च दिव्याः सर्वे वीराः संघशो ध्वंसयेयुः ।
 सर्वैर्वीरैरेकहेलाप्रवृत्ताः न त्यादासामएवपि कापि वृक्कणम् ॥ ३९ ॥

त्रिपुरस्य त्रिदुर्गतया तत्प्रजानामवीरत्वाभावः ।

१२—आसन्नासु प्रायशो ये युवानो ये वा वृद्धा बालका याः स्त्रियो वा ।
 योद्धारस्ते सर्वदा योद्धुः कामा वाणिज्यार्थं शौर्यमेवात्र पश्यम् ॥ ४० ॥
 नार्हन्त्येषामन्यदेशीयलोका पूर्णदुर्गाणां गोपुरान्तः प्रवेशम् ।
 अन्तर्भतेर्पा राजमार्गे प्रतोल्यां वेत्याखङ्गभ्येव धारावगाह ॥ ४१ ॥

पुरत्रयभङ्गहेतुरिच्छद्रम् ।

१३—आसीत् त्वासां द्वितये छिद्रमेकं यस्मिन्काले जायते पुण्ययोग ।
 तस्मिन्काले तिस्र एतास्तु पुण्या मंयुक्ता स्युस्तत्र चैरापुरी त्याग ॥ ४२ ॥
 तस्मिन्पुण्ये वीर एक पुरीस्तास्त्रिस्तोऽप्येकेनेपुणाऽवारपागम् ।
 भेत्तुं सद्यः शक्नु याच्चेत्तत्तत्ता विन्वन्ता न्युर्नान्यथा ध्वंस आनाम ॥ ४३ ॥
 देवा एतद् ध्वंसनोद्योगिनोऽपि छिद्राजानान्नात्र शक्ता बभूवुः ।
 इन्द्रं तारस्तारकस्त्वेव विष्णुं युद्धे सार्द्धं सर्वदेवैर्न्यगुप्तान् ॥ ४४ ॥

त्रिपुरस्याजेयत्वादसुराणां स्वर्गविजये ब्रह्मविष्टपस्य तानागन्तूगानादिनामभिर्व्यपदेशाः ।

१४—तारास्तूरैः साकमेकी भवन्तो देवान् जित्वा मंनिवेशं स्वमायुः ।
 ते तं देशं तारतूरेति नान्नाख्यातं चक्रुश्चोभयेषां न देवः ॥ ४५ ॥
 तारतुरस्तारतरस्तानारः तूः क्रमात् प्रसिद्धोऽभून् ।
 तूरास्तत्र तुरुष्कास्तुर्कीतूरांश्च तत्प्रान्त ॥ ४६ ॥
 स्वर्गे त्रिविष्टपेऽस्मिन् यावदय ब्रह्मविष्टपं प्रदेनम् ।
 तत्तूरानिति कथितं संप्रति तारारदेशश्च ॥ ४७ ॥

तारोऽयुधः पृथ्व्यां यो देशः सर्वथोऽधतर आसीत् ।
 तारतरः स प्रथितस्तातारं तं विदुर्लेच्छाः ॥ ४८ ॥
 तानारोऽयं दिव्यलोकः पुरासीद् देवान् जित्वा तत्र चोषुस्तुरुष्काः ।
 चीनात् प्रत्यक् प्राग् मही सोगरान्तात् तारैस्तूरैर्देश आक्रान्त एषः ॥ ४९ ॥
 तारासुर वंशधरैस्तारातम्बोलनाम्नेयम् ।
 नगरी विनिर्मिता प्राक् साद्यापि तु राजधान्यस्ति ॥ ५० ॥
 प्राग्मेरुर्यो ब्राह्मो देशः पामीर उच्यतेऽद्यत्वे ।
 तत्रेदानीं म्लेच्छा वसन्ति देवानितो विनिष्कास्य ॥ ५१ ॥
 यः प्राक् सुमेरुखण्डः स समरकन्दोऽथ तत्तखण्डो यः ।
 यश्चार्थ्यखण्ड आसीत् स तासकन्दश्च यारकन्दश्च ॥ ५२ ॥
 मन्दरगिरिर्य आसीद् विलूरतागः स कथ्यतेऽद्यत्वे ।
 यः शृङ्गवान् गिरिः प्रागलतायैत्युच्यते सोऽद्य ॥ ५३ ॥
 इनशान् खिनघान् शैलः शैलोऽन्यो यावलो नोई ।
 विरखोइयनस्कोई, स्तानोवोईति माल्यवच्छाखाः ॥
 यो गन्धमादनाद्रिः पश्चिमसीमैशियाभूमेः ।
 अद्यत्वे तं शैलं लोका यूरालनाम्नाऽऽहुः ॥
 इत्थं तारास्तूरा अप्रथयन्नत्र तातारे ।
 शेषाणां तु मयानां मयसोपोटेमियादेशः ॥
 आसुरवर्ग उपोत्तमनाम्ना संभाव्यते पुरा कश्चित् ।
 तत्सहवासादुक्तो मयसोपोत्तम इति ब्रूमः ॥

परिचयभारतेऽप्यसुरप्रवेशः ।

१५—कालकं दौर्हं द मौर्याद्यसुरविभागास्तु यत्र देशेऽस्थुः ।

सोऽसीरियाप्रदेशः कैलडिया कालकैयानाम् ॥

अन्यान्यराजसमये मेशोपोटेमिया इराको वा ।

प्रथितः स एव देशो मयराष्ट्रं सोमदेशस्तु ॥

देवैरुपसन्नमिषपुरत्रयनिर्माणम् ।

१६—इत्थं स्वर्गे चान्तरिक्षे च पृथ्व्यां काँश्चिदेशान् देवतादायभूतान् ।

धृष्टैरुग्रैश्चासुरैः संगृहीतान् दृष्ट्वा देवा व्यग्रचित्तोऽवभूवुः ॥ १५ ॥

विद्युन्मालीतारकाक्षोऽम्बुजाक्ष सामन्तारस्तारक षड्भिरर्ते ।
 आर्तान्देवान् रक्षितुं देवमुग्या दुर्गाश्चक्रुश्चोपसन्नामर्कौन्मीन् ॥ ५६ ॥
 पृथ्व्यामग्निः सोम एषोऽन्तरिक्षे विष्णुः स्वर्गे चोपसन्त्यध्यक्षाः ॥
 तौन्मीन् देवाश्चासुरा षड्मर्यास्तानाश्रित्य प्राग् धोरमामर्दमापु ॥ ५७ ॥
 त्र्यम्बकेण त्रिपुरध्वंसः ।

१७—पश्चाच्छंसुं किञ्चिदुग्रं विचित्रं ब्रह्माण्डाभं स्यन्दनं कारयित्वा ।
 तत्रारूढः खेचरे खेचरेऽहन् दैत्यानेतान् पूष्ये युध्यमानान् ॥ ५८ ॥
 घोरं युष्वा नन्दिना दैत्यराजो विद्युन्माली वज्रतो निर्हतोऽभूत् ।
 दृष्ट्वा घोरामापदं तां मयोऽसौ वापीमस्यां मायया निर्मिमाय ॥ ५९ ॥
 मृतसंजीवनीं वापीं तारकाक्षसुतो हरि ।
 विनिर्ममेऽमृतमयीं यो मज्जति स जीवति ॥ ६० ॥
 देवैर्युद्धे हन्यमानान् विपन्नान् वायां स्नातान् जीवयामास भूय ।
 विद्युन्माली यो गतेऽह्नि प्रसीत सौम्यन्येद्युर्योऽवयामास देवान् ॥ ६१ ॥
 युद्धेऽभीषां निर्हतानां मृतानां वायां न्नानात्रित्यमुत्थानमिच्छाम् ।
 दृष्ट्वा देवाश्चित्तया व्यग्रचित्ता विष्णुं वापीध्वंसहेतुं व्यजानान् ॥ ६२ ॥
 विष्णुः कृत्वा वार्षभं रूपमुग्रं मायावापीं तां जगाम त्रिपुरार्याम् ।
 वापीपालांश्चासुरान्मर्दयित्वा वापीं पीत्वा नर्दयन्नाजगाम ॥ ६३ ॥
 वापीध्वंसाद् ध्वासितोत्साहवीर्या नर्घेभृषम्भपुरा दैत्यवीर्य ।
 मत्वा तत्रोपस्थितामापदं न्यां रक्षार्थं ते युद्धभूमे परायण ॥ ६४ ॥
 तेऽपक्रान्ता निन्युरेतां पुरीं स्वामूर्ध्वाकारो द्राग् नहो नागरन्य ।
 तत्रैवागाच्छ्वाम्भवं पृष्ठलग्नं तूर्णं दिव्यं स्यन्दनं सैन्ययुक्तम् ॥ ६५ ॥
 दिव्याश्चर्यं निर्मितं शिल्पिदेवैरास्त्राङ्गोऽन्युग्रम्मा रथापयम् ।
 खस्थं शम्भुः खस्थितायां त्रिपुरार्यां तांस्तान् घोरान् युध्यतो निर्जगान् ॥ ६६ ॥
 अत्याश्चर्यं खेचरन्ती पुरीन्ता वाणेनैकेनोभिनन पुण्ययोगे ।
 पुण्योऽभूवस्ता मही सागरैर्गतमग्ना भग्ना पानिता न्यरन्तरे ॥ ६७ ॥
 पश्चाद्भिर्दाहयामास भूयो हन्यायेयमासुराणां पुराणाम् ।
 तत्प्राकारा दग्धदग्धैरगारै माधं सिन्धौ प्रमुट्तिनिपेतु ॥ ६८ ॥
 विद्युन्माली नन्दिना निर्हतोऽभून्निष्प्राणोऽग्निनेत्रा क्रौञ्चगात्र ।
 रक्षायास्तेऽन्यानुपायानदृष्ट्वा निन्नारार्थं तारमेवाभिजन्तुः ॥ ६९ ॥

तारो वीरः पुत्रपौत्रैः समेतो यावच्छक्यं युध्यमानः स पश्चाद् ।
दृष्ट्वात्साहस्रशमात्मीयसैन्ये भगनाशः सन् युद्धतोऽस्माद्विरेमे ॥ ७० ॥

महीसागरोपरिष्ठात् त्रिपुरासुरपलायनम् ।

१८—आदायैकं स्वं गृहं सोऽपसृप्तोपक्रान्तोऽभूत् काप्यविज्जातदेशे ।
त्यक्त्वा पूर्वोदक् प्रदेशान स दैवान्नैर्ऋत्येऽन्तेगान्महीसागरस्य ॥ ७१ ॥
मिश्रे देशे नीलनद्याः परस्तादन्याप्येका दृश्यते पूषि पूली ।
मन्येऽनैषीद् भग्नशेषमिहैतां तत्स्मृत्यर्थं निर्ममेऽन्यां त्रिपूलीम् ॥ ७२ ॥
भूमध्यसागरस्य प्राक् तटवदक्षिणेऽपि तटे ।
एकत्रिंशेऽक्षांशे त्रयोदशे ग्रीनवीचांशे ॥ ७३ ॥
नष्टा येषाऽभूत् त्रिपूली पुरीयं तस्याः स्थाने निर्मिताऽन्धा त्रिपूली ।
इत्येकस्या अद्भुवायास्त्रिपूल्या ध्वंसात् पश्चाद् द्वे त्रिपूल्यावभूताम् ॥ ७४ ॥
इत्थं शर्वः सर्वमेषां मयानां राष्ट्रं जित्वा संन्ययच्छत् सुरेभ्यः ।
यः प्रागासीत् सामदेशः स पश्चाद्देवाक्रान्तः सीरियेति श्रुतोऽभूत् ॥

तारकासुरसंग्रामः ।

१९—तस्मिन् पश्चात्तारकोऽभ्येत्य भूयो युद्धं चक्रे तत्र बालः कुमारः ।
क्षेत्रे वीर्ये पूर्णमात्रेऽभिपिक्तः पूर्णोत्साहोऽयोधयन् तारकं तम् ॥ ७५ ॥

१ २ ३ ४ ५ ६ ७
जम्भक, जम्भ, कुजम्भा, कुक्षर, महिषी, च मेघ, शुम्भौ, च ।

८ ९ १०
निमि, कालनेमि, मथनास्तारकसेनासु नायकास्तु दश ॥ ७६ ॥

१ २ ३ ४ ५ ६
शृङ्गी, शृङ्गी, नन्दी, नन्दीशः, शङ्कु कर्ण, रिटी ।

७ ८ ९ १०
तुण्डी, शाख, विशाखी, स्कन्दः स्कन्दस्य नायकाः सैन्ये ॥ ७७ ॥

शिशुरप्येष कुमारः स्कन्दोऽभ्यस्कन्दयन्महाप्रबलम् ।
तारकमेतं पश्चात् सर्वेऽप्यसुरा दिशो जग्मुः ॥ ७८ ॥

असुरराजविध्वंसेऽप्यसुरप्रजाविध्वंसाभावः ।

२८- देवा यद्यपि विजयं प्राप्तास्त्रिपुरासुरान् हत्वा ।

न तथाप्यसुर विशस्ता इलावृत्ततन्निर्हन्ति स्म ॥ ७६ ॥

असुराक्रमणे देवानासुरधर्मेषु दीक्षयांचक्रुः ।

तेन संप्रति देवा दृश्यन्तेऽभ्रश्यत स्वर्गः ॥ ८० ॥

प्रकरणोपसंहारः ।

२१- इत्थं भूमावन्तरिक्षे दिवि प्राग् देवद्विड्भूमिः स्थापिता या नगर्यः ।

तासां भूमावायसी पूरियं भूमध्याव्यन्तं भारतं सुव्यनक्ति ॥ ८१ ॥

भूमिं पृथ्वी मानुषो लोक उक्तो मर्त्यं लोकं भारतं वर्षमाहुः ।

मर्त्ये लोके सा मही सागर प्राक् कूले भूमावायसी पृ प्रसिद्धा ॥ ८२ ॥

आद्यात्रिंशत्तांशतोऽर्वाक् प्रदेशं पृथ्वी लोको मर्त्यलोको निरुक्तः ।

सप्तत्रिंशादुत्तरः स्वर्गलोको द्यावाभून्योरन्तरेत्स्वन्तरिक्षम् ॥ ८३ ॥

पृथ्वीलोकं भारतं प्रादुरार्या लोकाध्यक्षत्वेन यत्राग्निरासीत् ।

तत्रैवासीदायसी पूस्ततो भूमध्याव्यन्तं भारतं भावयामः ॥ ८४ ॥

इति भारतवर्षस्य महीसागरान्तत्वे दशमं प्रमाणम् ॥१०॥

नवानां भारतीयद्वीपानां मध्ये हिन्दुस्तानस्य नवमं कुमारिकाद्वीपस्याख्यानं भारतवर्षस्य

हिन्दुस्तानमात्रपर्यवसायित्वाभावे एकादशं प्रमाणम् ॥ ११ ॥

अस्य भारतवर्षस्य दक्षिणोत्तरतः सहस्रयोजनत्वं भुवनकोशे निर्दिश्यते यथा मात्स्ये (११४)

“योजनानां सहस्रं तु द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरः ।

आयतस्तु कुमारीतो गङ्गायाः प्रवहावधिः” ॥ इति ॥

“ मार्कण्डेयेपि—“योजनानां सहस्रं वै द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरम्” । इति । यत्र योजन-

शब्दः क्रोशपरतया नेयः । तथा हि कुमारीशब्दः सिंहलद्वीपेऽपि वर्तते, स्काकान्द माहेश्वर-

खण्डीयकुमारिकांऽऽख्यानान्तथावगमात् । सिंहलद्वीपश्चत्वारिंशदधिकसप्तत्रिंशो संनिविष्ट इति

सोऽवधिर्दक्षिणो भाव्यः । गङ्गाप्रवाहोरम्भस्तु षट्त्रिंशोऽर्वांशे । तथा च तयोरन्तरं साधिना

अष्टाविंशत्यंशाः स्युः । एकैकश्चांशो मीलवृत्तीयंशोपेतैरनसप्ततिमीलैः (६६-१/२) सम्पद्यते ।

तेषामष्टाविंशतिगुणतत्वे मीलानां द्विसहस्रप्रायतयातावानस्य दक्षिणोत्तरायामो निष्कृष्यते । मीलशब्दश्चाद्धक्रोशकल्पे पथि निरुद्धः । तेन सहस्रक्रोशता सिद्धा । एतच्च मानं सिन्धोः पश्चिम-
तोऽपि लोहितसागरपर्यन्तमुपनीयते । मेशापोटेमियाप्रदेशस्थापि पट्त्रिंशदक्षांशप्रायत्वात् । यत्तु
ब्राह्मादिषु ।

“उत्तरेण समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणे ।

वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र संततिः ॥ १ ॥ (ब्राह्मे १७ अ० १ श्लो०)

यच्च मात्स्यादिषु—

“तिर्य्यगूर्ध्वं तु विस्तीर्णः सहस्राणि दशैव तु ।”

इति निर्दिश्यते तत्र कालदोपाल्लेखप्रमादात् पाठभ्रमः संभाव्यते । दशसहस्रसंख्यायाः
सर्वथा प्रत्वक्षविरुद्धत्वात् पूर्वापरस्वोक्तिविरोधाच्च । अथवा वर्गात्मकक्रोशानामयमुल्लेखः संभाव्यते ।
तथा च पूर्वपश्चिमतो नवत्यंशतया साधिकत्रिसहस्रक्रोशमितं दक्षिणोत्तरतस्तु साधिकाष्टाविंशत्यंश-
तया सहस्रक्रोशमितं चेदं भारतवर्षमिति स्थितम् । यदि तु निरक्षदेशाद् व्यवतिष्ठते । तदा पट्-
त्रिंशदंशतया ततोऽप्यधिकं दक्षिणोत्तरायामः सिध्यतीत्यूह्यम् ।

इति, एकादशं प्रमाणम् ॥ ११ ॥

तुरुष्कदेशस्य भारतवर्षोत्तर-सीमात्वाख्यानां द्वादशं प्रमाणम् ॥ १२ ॥

तथा हि—वायव्यादिषु भुवनकोशेष्विदं भारतवर्षं चतुः सीमतयाऽऽख्यातम् ।

“पूर्वे किराता यस्यान्ते पश्चिमे यवनाः स्थिताः ।

आन्ध्रा दक्षिणतो वीरतुरुष्कास्त्वपि चोत्तरे ॥ १ ॥ [वायु १३ । ४ । इति]

तुरुष्कस्थानं चेदानीं म्लेच्छभाषायां “तुर्किस्तान—” इति तूरान इति तातार
इति तारतार इति टारटरी इति चाख्यायते । तद् राजशासनद्वैविध्यादिदानीं द्विधा
विभक्तं भवति । पौरस्त्यं पाश्चात्यं च । तत्र पश्चिमं तुरुष्कं राजशासनाधीनं
पौरस्त्यं तु चीनराज्यान्तर्गतमिति भेदः । तयोः पौरस्त्यं पौरस्त्यभारतस्य पाश्चात्यं
पाश्चात्यभारतस्योत्तरसीमा भवति । सिन्धुस्थानपारस्थानाभ्यां (हिन्दुस्थान ईरान) द्विधा विभक्त्य
भारतवर्षस्य साम्येनोत्तरतस्तुरुष्कस्थानोपगमान् तस्योत्तरसीमात्वं साधूपपद्यते । तथा च तुर्कि-
स्तानस्य भारतोत्तरसीमात्वाख्यानात् सिन्धुनदपश्चिमानाम् अफगानिस्तान, ईराक, साम इत्यादी-
नामपि देशानां भारतसीमान्तर्भुक्तत्वमुपपद्यते । तथा चात्र श्लोकाः ॥

‘स्वर्गोन्तरिक्षं पृथिवीतिभेदाद् द्वीपस्त्रिधासीद्विह यो विभक्तः ।
 स एष संप्रत्यपि दैवयोगात् म्लेच्छैर्विभक्तोऽस्ति पुनस्त्रिधैव ॥ १ ॥
 ‘उदक्समुद्रानुगतोऽस्ति रूसः पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य ।
 तदक्षिणे भाति तुरुष्कदेशः पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य ॥ २ ॥
 ‘तदक्षिणे दक्षिणसागरेणानु भापितं भारतवर्षमेतत् ।
 पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य ध्रुवं भवेदन्यविभागसाम्यात् ॥ ३ ॥
 ‘रूसो द्विधास्ति द्विविधं तुरुष्कस्थानं तथा भारतवर्षमेतत् ।
 सिन्धुस्थपारस्थविभागतोऽस्तु द्विधा तथाऽन्यस्ति तदेकवर्षम् ॥ ४ ॥

इति द्वादशं प्रमाणम् ॥ १२ ॥

अपि च पश्चिमसमुद्रस्य भारतवर्षीयपश्चिमसीमात्वाख्यानं त्रयोदशं प्रमाणम् ॥ १३ ॥

तथा हि इदं भारतवर्षं मार्कण्डेयादि भुवनकोशेषु दिक्त्रये समुद्रैः सवृतमाख्यायते ।

“एतत्तु भारतं वर्षं चतुःसन्धानसंस्थितम् ।

दक्षिणापरतो ह्यस्य पूर्वेण च महोदवि ॥ १ ॥

हिमवानुत्तरेणास्य कार्मुकस्य यथागुणः ।”

(मार्क० १४ अ०) इति ॥

तत्र नायं नर्मदासंगमनीयः सह्याद्रिपश्चिमस्थ समुद्रो भारतवर्षस्य पश्चिमसीमा भवितु-
 मर्हति । तस्य दक्षिणापथपश्चिमत्वेऽपि आर्यावर्तसाधारणभारतापेक्षया पश्चिमत्वाभावात् ॥
 मनुस्मृत्यादिपुत्वार्याणां प्रामाणिकशास्त्रेषु पूर्वतः पश्चिमतश्चार्यावर्तस्य समुद्रः सीमात्वेनाख्यायते—

“आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्राच्च पश्चिमात् ।

तयोरेवान्तरं गिर्योराख्यावर्तं विदुर्बुधाः ॥ १ ॥ (मनु० २ । २२) इति ॥

एतेन विन्ध्यपर्वतादुत्तरवर्तिनोऽस्त्यार्यावर्तस्य पश्चिमतोऽवश्यं समुद्रेण भवितव्यम् ।
 तस्मात् पारस्याखातसमुद्रो लोहितसमुद्रो भूमध्यसमुद्रश्चास्य पश्चिमेऽवधिः साधीयान् संभाव्यते ॥

इति त्रयोदशं प्रमाणम् ॥ १३ ॥

ईरान—विलोचिस्तानाफगानस्तानादिशब्दानां शासनक्रांतिभेदमूलकत्वेनान्यथस्थितत्वान्
 तेषां गणितव्यवस्थितभारतवर्षशब्दप्रयोगप्रतिरोधकत्वासंभवञ्चतुर्दशप्रमाणम् ॥ १४ ॥

इह हि भुवनकोशे देशविभागाः द्विविधा निरूप्यन्ते—राज्यशासनव्यवस्थिताः । भौगोलिकगणितव्यवस्थिताश्च । तत्र शासनकृतविभागा अनित्या अव्यवस्थिताः काले काले विभिद्यन्ते । ये देशा येन राज्ञा जीयन्ते, ते तदायत्तनामरूपाः पूर्वापेक्षया कचिदन्येन नाम्ना निर्दिश्यन्ते । अतएव तु भारतीयानामिमे गान्धारदेशा अफगानिस्तानशब्देन, हिङ्गला देशाः प्रथमं सुगदियानाम्ना, पश्चाद्बिलोचिस्ताननाम्ना व्यवह्रियन्ते स्म । पारस्थानमेव पर्सियाशब्देन, ईरानशब्देन कैलडियाशब्देन असीरियाशब्देन ईराकशब्देन मेसोपाटेमियाशब्देन च काले कालेऽन्यान्यप्रान्तविभागैर्व्यवह्रियते स्म । वर्मात्र देशः पुरायुगे भारतवर्षीय देशो मध्ययुगे हिन्दुस्तानात् पृथक् परिगणित आसीत् । स एव पुनरिदानीं युगे हिन्दुस्तानान्तर्गतो व्यवतिष्ठते । एतन्नियमानुरोधेनैवेदं पश्चिमभारतवर्षमिदानीं युगे भिन्नशासनहेतो राजपुरुषीयव्यवहारविशेषानुरोधाद् भारतवर्षनामो विहीननभूत् । हिन्दुस्तानमात्रे चेदानीं भारतवर्ष शब्दः संकुचितोऽभूत् । किन्तु वस्तुगत्या नैतौ भारतवर्षशब्दहिन्दुस्तानशब्दौ पर्यायवाचिनौ वर्तते । भारतवर्षीयप्राचीनभुवनकोशानुसारेण राजशासनव्यवस्थामनपेक्ष्य स्वातन्त्र्येण भौगोलिकगणितव्यवस्थया प्रशान्तसमुद्रमारभ्य लोहितसमुद्रभूमध्यसमुद्रपर्यन्तप्रदेशे भारतवर्षशब्दस्य नियतत्वात् । अथैतस्य सिन्धुस्थानपारस्थानाभ्यां द्वेधा विभक्ततया सिन्धुस्थानस्य हिन्दुस्तानशब्देन व्यवह्रियमाणतया तस्य भारतवर्षीयप्रान्तविशेषत्वाच्च । नित्यं व्यवस्थितं चेदं संज्ञाकरणं राजशासनानामन्यान्यत्वेऽपि न कदाचिद्विचलितं भवति । अत एव पश्चिमभारतस्य अफगानिस्तान, खुरासान ईरान—इत्यादेर्हिन्दुस्तानत्वाभावेऽपि भारतवर्षत्वं नोपहन्यते । भारतवर्षस्य भूवृत्तपादरूपतया प्राचीनार्यशास्त्रे सिद्धान्तितत्वादिति सर्वं सुस्थम् ॥

इति चतुर्दशं प्रमाणम् ॥ १४ ॥

इत्थं चामीभिश्चतुर्दशभिः प्रमाणैः पूर्वस्यां दिशि चीनसमुद्रमारभ्य पश्चिमतो लोहितसमुद्रपर्यन्तं भारतवर्षस्य सीमा भवतीति सिद्धम् ॥ ॐ ॥

इति भारतपरिचये सीमाप्रसङ्गः समाप्ताः ॥ ३ ॥



उपद्वीपप्रसङ्गः ॥ ४ ॥

जम्बूद्वीपस्याष्टोपद्वीपभेदाः ।

ननु ब्राह्म—मार्कण्डेय—मातस्य—स्कान्दादिषु भुवनकोशेष्विन्द्रद्वीपादयो नवोपद्वीपा निरूप्यन्ते । भागवतादिषु तु केषुचिद् भुवनकोशेषु ततोऽन्ये स्वर्णप्रस्थादयोऽष्टोपद्वीपा उच्यन्ते । तथा च विरोधः प्राप्नोति—इति चेन्न । इन्द्रद्वीपादीनां भारतीयोपद्वीपत्वेन, स्वर्णप्रस्थादीनां तु जम्बू द्वीपोपद्वीपत्वेनाख्यानाद् विरोधाप्रसक्तेः । तथाचोक्तं भागवते—
“जम्बूद्वीपस्य च राजश्रुपद्वीपानष्टौ हैक उपदिशन्ति । तद्यथा—स्वर्णप्रस्थश्चन्द्रशुक्त आवर्तनो नारमणको मन्दरहरिणः पाञ्चजन्यः सिंहलो लङ्केति ॥, (५।१६) एषां प्रचलितदेशभाषायां नामानि यथा ।

(१) आवर्तनं=वर्तानिया=[इंग्लैण्ड—स्काटलेण्ड—आयर्लेण्डादयः]

(अक्षांश उ० ५१—५८—उज्जयिन्याः पश्चिमदेशान्तरे ७५—८५)

(२) नारमणक=नारवं । मन्दन । [उ० अक्षांशे ५६—७०,—उज्ज्वेशा-पश्चि-
४५—७०]

(३) मन्दर—हरिणो=नोविया—जेम्ल्या [उ० अ० ७१—७८,—उ० प० दे० ६।२३]

(४) पाञ्चजन्य—जापान=द्वीपसंघः ॥ [साधालियन—जेसो—नीफन—

सिकोक—क्यूसू] (उ० अ० ५५—३०,—उ० पू० दे० ४०)

इति पञ्चभिर्जनैस्तस्योपपन्नत्वात् पाञ्चजन्यत्वम् ॥

(५) चन्द्रशुक्लः=फीलीपायिन—द्वीपसंघः । चन्द्राय गन्धर्वराजाय पणिभि-
रुपायनीकृतत्वात् पण्युपायनस्य तस्य चन्द्रशुक्लत्वम् ॥

(उ० अ० १०—१८,—उ० पू० दे० ३०)

(६)—स्वर्णप्रस्थः=वोर्नियो—जावाद्वीपसंघः—सुमात्रा, सिंगापुर, पीनाङ्ग,
(उ० अ० १०—उ० अ० १६ उ० पू० दे० १०—२५)

निकोवर, ऐन्दमन । इत्येतेषां भारतीयोपद्वीपसंघानां स्वर्णप्रस्थत्वम् ॥

(७) सिंहलद्वीपः = सीलोन, इति नाम्ना प्रसिद्धः ॥

उ० अ० ६—८, —उ० पृ० दे० ५

(८) लङ्काद्वीपः = लङ्कादीव, मालदीव—इति द्वेधा विभक्तो नष्टप्रायः ॥

उ० अ० १—१२, —उ० पृ० दे० ५

इदं तावद् भूगोलं पूर्वीयपश्चिमीयगोलाद्धाभ्यां द्वेधा विभज्यते । तत्र पूर्वीयगोलाद्धस्य जम्बूद्वीप इति संज्ञा क्रियते । अस्ति हि पूर्वगोलाद्धस्य मध्यप्रदेशे, हिरण्यशृङ्ग-पर्वतान्निर्गत्य पश्चिमदिशि प्रवहन्ती अरालसमुद्रे प्रविशन्ती काचिन्नदी या वेदे यक्षुरित्याम्नाता । तदपभ्रंशेन च म्लेच्छभाषायाम् । 'अक्सस्'— इति साख्यायते ॥ सैव पश्चात् संस्कृतभाषायां 'जम्बू'—इत्याख्यायते । तदपभ्रंशेन च, म्लेच्छभाषायाम्— 'अमू'—इत्याख्यायते । तादृशजम्बूनद्युपलक्षितः पामीरप्रदेश एवासीत् पुरात्वे पूर्वीयगोलाद्धे प्रधानरूपः समृद्धतमः केन्द्रभूतः प्रदेशः । तत्रस्यानां देवयुगीयानामिह गोलाद्धे एकतन्त्रं स्वाराज्यमासीदिति कृत्वा पूर्वीयगोलाद्धं जम्बूद्वीपशब्देन प्रसिद्धमासीत् ॥ वर्तमानयुगप्रसिद्धौ एशिया—यूरोप—देशौ सोपद्वीपौ तस्मिन् पूर्वीयगोलाद्धे संनिविशेते । अफ्रीकाष्ट्रेलियोरप्यत्रैव संनिवेश केचिदिच्छन्ति । तदसत् । सकोत्रा—मदगास्कार—प्रभृतीनामफ्रीकोपद्वीपानां पापुआप्रभृतीनामाष्ट्रेलियोपद्वीपानां च जम्बूद्वीपोपद्वीपतया भागवतां दिग्बपरिगणितत्वात् । तस्मादफ्रीकाष्ट्रेलियोर्जम्बूद्वीपाद्विष्ट्वमासुरद्वीपत्वं च प्रत्येतन्यम् । जम्बूद्वीपस्त्वेवं दैवतो द्वीपः ॥ तस्यैतस्य महाद्वीपस्यैते आवर्तनादयोऽष्टांशुपद्वीपा भवन्तीत्यन्यदेतत् । भारतवर्षस्य तु प्रातिस्विकतया पूर्वोक्ता इन्द्रद्युम्नोदयो नवैवोपद्वीपा इष्यन्ते ॥ तेषां भारतसागरान्तर्गतत्वात् । अतएवैतद् भारतीयोपद्वीपसंघो वर्तमानयुगेऽपि म्लेच्छभाषायाम्—'इण्डियनआर्किपैलैगो'—इत्याख्यायते ॥... ॥

इति भारतपरिचये उपद्वीपप्रसङ्गः समाप्तः ॥ ४ ॥

लङ्काप्रसङ्गः ॥ ५ ॥

द्वादशविप्रतिपत्तिभिः सिंहलद्वीपस्य लङ्कात्वभ्रमखण्डनम् ॥

- (१) अत्रेदमपरं बोध्यम् । अद्यत्वे केचन विद्वांसः सिंहलमेव द्वीपं लङ्कामाचक्षते । तन्नितान्तं भ्रान्तमिति ब्रूमः ॥ लङ्कादयो हि शब्दा भारतवर्षीयग्रन्थोपलब्धसंज्ञा सन्तीत्येषां भारतवर्षीयग्रन्थाधारेणैव व्यवस्थावकल्पते न तु स्वकपोलकल्पनया यथेच्छ प्रतिपत्तिः ॥ अन्यथा प्रमादप्रलपितत्वापत्तेः ॥ भारतवर्षीयग्रन्थेषु च सिंहलादन्या लङ्कोपदिश्यते ॥ “अथ दक्षिणेन लङ्का-कालाजिन-सौरिकीर्ण-तालिकटा ॥ काञ्ची मरुचीपट्टनचेर्यार्यक-सिंहला ऋषभा” — इति बृहत्संहितायां (१४) कूर्मविभागे तयो पृथक्त्वेन निर्देशात् । यदि सिंहलद्वीप एव लङ्काऽभविष्यत्, तदा भागवतादिषु सिंहलस्य सप्तमत्वमाख्याय लङ्काया अष्टमत्वं नोपदिष्टमभविष्यत् ॥ तस्मादन्या लङ्का अन्यथाय सिंहलद्वीप इति सिद्धं भवति ॥

इति प्रथमा विप्रतिपत्तिः ॥ १ ॥

- (२) अपि च भारतवर्षीयग्रन्थेषु लङ्केति निरक्षदेशस्य संज्ञा क्रियते । सिंहलद्वीप-स्तुत्तरतश्चत्वारिंशत्कलोपेते सप्तमेऽक्षांशे (७ । ४०) सनिविष्ट इति माक्षदेशत्याजं कदाचिदपि लङ्का भवितुमर्हतीति ॥

इति द्वितीया विप्रतिपत्तिः ॥ २ ॥

- (३) अपि च यथेदानीं युगे पाश्चात्यैः त्वदेगे ग्रीनवीचनगरे भूमेर्मध्यरेखा प्रामल्यत, तथैवेह पुरायुगे भारतवर्षे उज्जयिन्यां नगर्या सा मध्यरेखा प्रकल्पीतामीन् ॥ सा च लङ्कोज्जयिनीमेरुस्पर्शिनी व्याख्यायते ॥

“यल्लङ्कोज्जयिनीपुरोपरि कुरुक्षेत्रादिदेशान् स्पृशन् ॥

सूत्रं मेरुगतं बुवैर्निगदिता सा मध्यरेखा भुवः” —

इत्यभियुक्तोक्तेः । सेयमुज्जयिनी ग्रीनवीचतः त्रिचत्वारिंशत्कलोपेन पञ्चमजनिनिम्ने-
(७५ । ४३) पूर्वदेशान्तरे प्रारभ्यते, तेन तयोर्मध्यरेखयोः पट्टननिगन्तरांगाः
(७६) सिध्यन्ति ॥ सीलोननान्ना प्रसिद्धः सिंहलद्वीपस्तु ग्रीनवीचन पञ्चाशन्-
लोपेताशीत्यंशमिते (८० । ५०) पूर्वदेशान्तरे सनिविष्ट इत्येवार्ग निरन्तरांगा

भवन्ति ॥ तथा च पञ्चभिरंशैरयं सिंहलद्वीपो भवत्युज्जयिन्यपेक्षया पूर्वदिक्स्थ इति सिंहलारब्धरेखाया उज्जयिनीस्पर्शो नतरां कदापि संभाव्यते । लङ्का तूज्जयिन्याः साम्येन दक्षिणतः षट्सप्ततिमिते ग्रीनवीचतः पूर्वदेशान्तरे विवक्ष्यते । तस्मात् सिंहलद्वीपो लङ्का नास्तीति लङ्काशब्देन सिंहलव्यपदेशः केषांचित् साहसमात्रम् ॥

इति तृतीया विप्रतिपत्तिः ॥ ३ ॥

(४) अपिच—“निरक्षदेशात् क्षितिषोडशांशे भवेदवन्ती गणिनेन यस्मात्”— इति सिद्धान्तशिरोमणिप्रदर्शितज्योतिर्वित्समयानुसारेणोज्जयिन्या लङ्कापेक्षया सार्द्धद्वविंशेऽक्षांशे स्थितिरुपपद्यते । सा च विपुवस्पर्शिमालदीवाभिप्रायेण कथंचित्संभवति, सिंहलस्य लङ्कात्वोपगमे तु तस्य निरक्षस्पर्शित्वाभावान्मुख्यनिरक्षस्यैवापादानत्वे स्थिते सार्द्धद्वविंशेऽवन्तीस्थितिर्नोपपद्येत । दशकलाधिकत्रयोविंशेऽंशे (२३ । १०) उज्जयिन्या अवस्थितत्वात् । तस्मात् सिंहलोऽयं लङ्का नास्तीति सिद्धम् ॥

इति चतुर्थी विप्रतिपत्तिः ॥ ४ ॥

(५) अपि च वाल्मीकीये सुन्दरकाण्डे—

योजनानां शतं चापि कपिरेष खमाप्लुतः ॥ ११६ ॥

योजनानां शतस्यान्ते वनराजिं ददर्श सः ॥ २०५ ॥

शतान्यहं योजनानां क्रमेण सुब्रह्मण्यपि ॥

किं पुनः सागरस्यान्तं संख्यातं शतयोजनम् ॥ २ । ४ ॥

योजनानां शतं श्रीमौस्तीर्त्वाऽप्युत्तमविक्रमः ॥ २ । ३ ॥

शतयोजनविस्तीर्ण-पुप्लुवे लवणार्णवम् ॥

इत्येवमभ्यासेन महेन्द्रगिरित्रिकूटगिर्योः शतयोजनात्मकमन्तरमाख्यायते ॥ तेन चतुःशतक्रोशान्तरे लङ्कायाः, संनिवेशोऽध्यवसीयते ॥ स चावश्यं विपुवद्रेखाया-मुपपद्यते ॥ महेन्द्राचलस्य विपुवतो दशाऽक्षांशान्तरितत्वादेकैकांशस्य साधिकोन-सप्ततिमीलात्मकतया सार्द्धत्रिशतीक्रोशान्तरितत्वोपपत्तेः । सिंहलस्य त्वस्य शतार्द्ध-क्रोशमात्रमप्यन्तरं नास्ति तस्मादन्या लङ्का, अन्यश्चायं सिंहलद्वीप इत्यवसितं भवति ॥

इति पंचमी विप्रतिपत्तिः ॥ ५ ॥

(६) अपि च एष खलु सिंहलद्वीपः पञ्चत्रिंशदधिकशत (१३५) क्रोशदीर्घ सार्द्धद्व्य-
विंशत्यधिकशत (१२२) क्रोशविस्तीर्ण उपलभ्यते, लङ्काद्वीपस्त्वयं चतुशत-
क्रोशदीर्घो (४००) विंशत्यधिकशत (१२०) क्रोश-विस्तीर्णो रामायणे स्मर्यते ।
“त्रिंशद्योजनविंतीर्णा शतयोजनमायता” इति । तत्र विस्तारसान्येऽपि
दीर्घत्वे भूयान् भेदोऽस्तीति नायं सिंहलो लङ्का भवितुमर्हति ॥

इति षष्ठो विप्रतिपत्तिः ॥ ६ ॥

(७) अपि चेह सिंहलो बहवः पर्वता महाबलिनान्ती गङ्गा च प्रसिद्धयन्ति । लङ्कायां
तु त्रिकूटसुवेलौ द्वौ पर्वतौ बहुधा स्मर्यन्ते । यद् तत्र महाबलिगङ्गाऽप्यभविष्यत्-
तत्तर्हि नूनं तस्या अपि रामायणे चरित्रप्रसङ्गे कचिदुपयोगोऽभविष्यत् । तस्मात्
सिंहलस्य लङ्कात्वाख्यानं प्रमादः ॥

इति सप्तमी विप्रतिपत्तिः ॥ ७ ॥

(८) यत्तु—अस्ति खल्वपि सिंहलद्वीपे त्रिकूटाचलो रावणविहारस्थानमशोकवाटिका
चेत्येतेषां तत्र सुप्रसिद्धचैवास्य सिंहलस्य लङ्कात्वं संभाव्यत इति केचिदालपन्ति
तत्र युक्तं प्रतीतम् । प्रमाणविरोधे प्रसिद्धिमात्रगर्थोपपादकत्वायोगात् । अथवा सन्तु
तादृशान्यपि तत्र संस्थानानि । पुष्पकविमानेन लङ्कातो भारतवर्षं प्रत्यासीदतो राव-
णस्य मध्येमार्गं तत्र सिंहलद्वीपेऽपि विश्रमार्थमवस्थानविहारो दे संभाव्यमानतया
तदर्थं रावणज्ञया तत्र तादृशसंस्थानादेनिर्माणसंभवात् । किन्तु न तावता शक्योऽय-
मपदार्थः कल्पयितुं यदुच्यते सिंहलोऽयं लङ्कान्तीति । तस्मात् सिंहलस्य लङ्कान्यं
भ्रान्तिवादः ॥

इति अष्टमी विप्रतिपत्तिः ॥ ८ ॥

(९) यद्यपि यूनानीयग्रन्थेऽस्य सिंहलद्वीपस्य ‘टापरोवेन’ इति मजा दृश्यते तस्य च
शब्दस्य ‘टापू रावण’ शब्दापभ्रंशत्वप्रतिपत्त्या सिंहलस्य लङ्कान्त्वमव्यवर्नीयते इति
केचिदाहुः । तदपि भ्रान्तम् । टापूशब्दस्य भारतीय ग्रन्थशब्दतया यूनानदेशे तत्प्र-
चारायोगात् । अस्तु वा तस्यापि रावणाधिकृतत्वाद् रावणटापूत्वं किन्तु नैनायना
तस्य लङ्कात्वमुपपद्यते । लङ्कावदेव द्वीपान्तराणामपि महाप्रतापिरावणोऽधिकृतस्य
संभवात् । वस्तुतस्तु बौद्धग्रन्थे सिंहलस्य तादृशसंज्ञोपलभ्यते, न चैवापभ्रंशेनायं,

‘टापूरोवेन’ शब्दः संभाव्यत इति रावणटापूत्वमप्यस्य सिंहलस्य दूरापास्तम् । तस्मादस्य सिंहलस्य लङ्कात्वाख्यानमसङ्गतम् ॥

इति नवमी विप्रतिपत्तिः ॥ ६ ॥

(१०) यदपि च सेतुबन्धरामेश्वरात् सिंहलद्वीपपर्यन्तं मध्येसमुद्रमस्ति किञ्चित्किञ्चिदन्तरेण पर्वतानां सन्निवेशः । तदवश्यं रामचन्द्रकृतसेतोर्मन्नावशेषं लक्षणं संभाव्यते । तदेव चैतस्य सिंहलद्वीपस्य लङ्कात्वे जागरूकं प्रमाणं भवितुमर्हतीति केचिदाक्षिपन्ति । तदुपहासास्पदं तुच्छप्रायम् । नहि सेतुं बध्नता रामेण मध्यसमुद्रं पर्वता अवरोपिता, येनैतेषां सेतुचिन्हत्वं संभाव्येन । अपि तु समुद्रोपरि तीर्थ्यमाणाभिः शिलाभिरयं सेतुः प्रकल्प आसीत् । ताश्चावश्यं सेतुभङ्गे यतस्ततो विप्लुता विनष्टा एवाभविष्यन् । रामेश्वरसिंहलयोरन्तराले तु पर्वताः पृथ्वीनिर्माणकालादेव प्रकृत्या सिद्धाः संभाव्यन्ते न त्वेते रामेण संस्थापिताः । तस्मादेतान् पर्वतानालोक्य सिंहलस्य लङ्कात्वव्यवस्थापनप्रयासो बालक्रीडासात्रमिर्युपेक्ष्यते ॥

इति दशमी विप्रतिपत्तिः ॥ १० ॥

(११) यच्च भारतवर्षादक्षिणतो निरक्षस्थाने कश्चिदपि स्थलप्रदेशो नोपलभ्यते । तस्मात् सिंहल एवायं लङ्काद्वीपः स्यात् । भारतवर्षीयार्याणां सिंहले निरक्षत्वभ्रमसंभवादिति केचिदुत्प्रेक्षन्ते । तदेतदेषामुक्तमुपहासास्पदं बालचापत्यमात्रमतिधाष्टर्यं वा । सर्वजगद्गुरुणामार्यमहामहर्षीणां विद्यासंबन्धे भ्रमकल्पनायाः साहसिकत्वात् । को हि नाम सभ्योविद्वानखिलजगत्—प्रत्यक्षकर्तृणां महामहिमभाजामुपदेशे तावदित्यं भ्रमकल्पनां कुर्याद् ऋते संकीर्णहृदयादसभ्यात्, पण्डितमन्यात् । मेसोपोटेमियादेशे निमरुदप्रतिष्ठापितं बाबिलन्नगरं सम्प्रति नोपलभ्यत इत्येतावना वगदादन्नगरमेवासीद् बाबिलन्नगरमिति चेत् कश्चिदभ्युपगच्छेत्को नाम तस्य श्रद्धान्तात् । संभवति हि बहुभिः कालैः केषांचिन्नगराणां विध्वंसो यथा वेरप्रसिद्धानां यव्यावती वसोर्धाराप्रभृतीनाम् । यथा वा पुराणप्रसिद्धानां वस्योकसारामहोदयपुष्कलावती प्रतिष्ठानादीनामप्युपलब्धिर्नास्ति । भवति च बहूनां द्वीपानामपि कालेन समुद्रगर्भे प्रवेशः । उक्तं च तथा स्कान्दे प्रभासखण्डे द्वासप्ततिशताध्याये (१७२) ॥

भरतो नाम राजाभूदाग्रीध्रः प्रथितः क्षिती ॥
यस्येदं भारतवर्षं नाम्ना लोकेषु गीयते ॥ १ ॥
भारतं नवधा कृत्वा पुत्रेभ्यः प्रददौ पृथक् ॥
तेषां नामाङ्कितान्येव ततो द्वीपानि जज्ञिरे ॥ २ ॥
इन्द्रद्वीपः कसेरुश्च ताम्रपर्णी गमस्तिमान् ॥
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गान्धर्वस्त्वथ वारुणः ॥ ३ ॥
अयं तु नवमो द्वीपः कुमार्या संज्ञितः प्रिये ॥
अष्टौ द्वीपाः समुद्रेण प्लाविताश्च तथापरे ॥ ४ ॥
ग्रामादिदेशसंयुक्ताः स्थिताः सागरमध्यगाः ।
एक एष स्थितस्तेषां कुमार्यास्त्यस्तु सांप्रतम् ॥ ५ ॥—इति ।

एतेन पुत्रेभ्यः समानविभागात् तदात्वे, नवानामपि भारतवर्षभागानां विस्तारसाम्यं प्रतीयते । कालेन तु तेष्वष्टद्वीपानां बहुभिर्भागे समुद्रगर्भे प्रवेशादतिनुच्छ्रभागैरद्याशेषः स्मर्यते । तथा च तट्रीत्या लङ्काद्वीपस्यापि सर्वात्मना संभाव्यते समुद्रगर्भे प्रवेशादिलोप इति नैतावता स्थानान्तरस्य स्थानान्तरसंज्ञया व्यपदेशो विद्वद्भिः कर्तुं युज्यते तस्मात्तिहले लङ्काशब्द-प्रयोगो नितान्तभङ्गानाद् इति बोध्यम् ॥

इत्येकादशी विप्रतिपत्तिः ॥ ११ ॥

(१२) अर्प वा अस्त्येव खल्वस्या लङ्काया भग्नावशेषचिह्नमद्यापि ॥ तथा हि यन्तामुप-लभ्यतेऽद्यत्वे सिंहलद्वीपात् पश्चिमतो नातिदूरे लक्के दीव [Lakkadiv = Laccadive] इत्युपद्वीपः स एव तु पुरा लङ्काद्वीप आसीदित्यध्यवस्थानम् । सन्ति हि तस्य लङ्काद्वीपत्वे पटुपट्ट-म्भकानि ॥ ६ ॥

(१) तत्र तावन्नामसादृश्यं पश्यामः लक्केदीव (Lakkadiv) = Lacca) इत्ययस्य लङ्काद्वीपशब्दस्य रक्षोद्वीपशब्दस्य वापन्न शो भवितुर्मर्हतीत्येकम् ॥ १ ॥

(२) यच्च लक्केदीवप्रदेशात् दक्षिणतो निरक्षदेशोपहरे मालदीपनाम Maldiv. स्थानमुपलभामहे तन्नूनं मालेयद्वीप इति वा मालिद्वीप इति वा संभाव्यते । मालिद्वीपस्य राजस-विशेषस्य निवासोपलक्षितं स्थानं मालिद्वीप । मालिनः पुत्राणां वा अन्तर्लान्तिनगरनृपादीनां मालेयसंज्ञा स्मर्यते । ते चैते विभीषणमातुला विभीषणमात्याश्चासन् ।

“अनलश्चानिलश्चैव हरः संपातिरेव च ।

एते विभीषणामात्या मालेयास्ते निशाचराः ।” (७० कां० ५।४३)

इति रामायणोक्तेः । तन्निवासोपलक्षितं स्थानं मालेयद्वीपः । स चायं मालदीवाख्यो मालिद्वीपोऽद्यत्वे लक्षद्वीपात् पृथक्त्वेनोपलभ्यमानोऽपि पुरात्वे नूनमासीदयं लङ्काया एवैको दक्षिणः प्रान्तः । लङ्काधिपतेर्माल्यवतः कनिष्ठभ्रातृत्वेन तत्सेनापतित्वेन च श्रुतस्य मालेर्लङ्का-तोऽतिदूरे द्वीपान्तरे स्थातुमनवकलृप्तत्वात् । तथा च लङ्कावासित्वेन प्रसिद्धस्य मालिनो राज्ञस्य निवासस्थानरूपमालिद्वीपसंनिध्योपपत्त्या ध्रुवमस्य लक्षदीवस्य लङ्काद्वीपत्वमुपपन्नं भवतीति द्वितीयम् ॥ २ ॥

(३) पूर्वं तावद्यमेक एवार्थ आसील्लङ्काद्वीपश्च मालिद्वीपश्च अद्यतनोपलब्धलक्ष्मदीव-
दारभ्यनिरक्षुत्तादपि दक्षिणतः कियद्दूरपर्यन्तं लङ्कायाः सन्निविष्टत्वादयं पृथक्त्वे-
नोपलब्धयोरपि लक्ष्मदीवमालदीवयोः पुराकाले एकस्या एव लङ्कायाः प्रान्ताविशेषत्वे-
नोपगन्तव्यत्वात् । तथा हि लङ्कायामस्यां सर्वतः पूर्वं सालकटंकटवंश्या राज्ञसा वसन्ति
स्म । तेषां च तद्वंश्य एव माल्यवन्नाम राजासीत् । माल्यवतोऽवरजः सुमाली प्रधान-
मन्त्री सर्वकनिष्ठस्तु माली प्रधानसेनापतिरित्येवं त्रयोप्येते भ्रातरः सुकेशपुत्रा विद्युत्के-
शपौत्राः प्रहेतिप्रपौत्राः अस्या लङ्कायाः प्राधान्येन शासका आसन् । बलदुर्मदान्धैरे
तैर्भूयो भूयः प्रपीडितानां प्रजानां रक्षार्थमेते त्रयोपि विष्णुना हूतराज्याधिकारा लङ्कातो
निष्कासिता अधस्तात्पातालं गत्वा सपरिवारास्तत्र न्यूपुः । उक्तं चैतत्सर्वमुत्तररामायणे-
“तत् काले सुकेशस्तु जनयामास राघव ॥

माल्यवन्तं सुमालिं च मालिं च बलिनं वरम्” ॥ १ ॥ (५ । ५)

“ऊचुस्ते विश्वकर्माणं शिल्पिनां वरमव्ययम् ॥

अस्माकमपि तावत् त्वं गृहं कुरु महामते” ॥ २ ॥ (५ । २०)

“विश्वकर्मा ततस्तेषां निवासं निर्दिदेश ह ॥

दक्षिणस्योर्ध्वेस्तीरे त्रिकूटो नाम पर्वतः ॥ ३ ॥

सुबेल इति चाप्यन्यो द्वितीयो राज्ञसेध्वर ॥

शिखरे तस्य शैलस्य मध्यमेऽम्बुदसंनिभे ॥ ४ ॥

त्रिंशद्योजनविस्तीर्णा शतयोजनमायता ॥

मया लङ्केति नगरी शक्राज्ञप्तेन निमिता ॥ ५ ॥

तस्यां वसत दुर्धर्पा यूयं राक्षसपुङ्गवा ।

विश्वकर्मवचः श्रुत्वा गत्वा तामवसन् पुरीम् ॥ ६ ॥ (५ । २८)

“लङ्कानामपुरी दुर्गा त्रिकूटशिलरे स्थिता ।

तत्र स्थिता स्म बाधन्ते सर्वान् देवान्निशाचराः” ॥ ७ ॥ (६ । १५)

“इति माली सुमाली च माल्यवांश्चैव राक्षसा ।

बाधन्ते समरोद्धर्पा ये च तेषां पुरःसराः” ॥ ८ ॥ (६ । ७)

‘ये त्वया निहतास्ते तु पौलस्त्या नाम राक्षसाः ।

सुमाली माल्यवान् माली ये च तेषां पुरःसराः ॥ ९ ॥

सर्व एते महाभागा रावणाद् बलवत्तराः” । (८ । २४)

अशक्तुवन्मस्ते विष्णुं प्रतियोद्धुं वलार्हिताः ।

त्यक्त्वा लङ्कां गता वस्तुं पातालं सहपत्नयः ॥ १० ॥ (८ । २२)

सुमालिनं समासाद्य राक्षसं रघुसत्तम ॥

स्थिताः प्रख्यातवीर्यास्ते वंशे सालकटंकटे ॥ ११ ॥ (८ । २३) इत्यादि ॥

अथ माल्यवत्प्रभृतिषु सालकटङ्कटाल्येषु पातालं गतेषु सन्तु लङ्कामेतां कुबेर समागत्य शशास । कालेन तु केनचित् माल्यवद्भ्रातुः सुमालिनः कन्यायां कैकस्यां पुलस्त्यान्महर्षे रावण-कुम्भकर्णशूर्पणखाविभीषणा उदपद्यन्त । तद्वत्तदपित सुमाली स्वदौहित्राय रावणाय लङ्का कुबेराद् ग्रहीतुं प्रेरयामास । स रावणो विनैव युद्धं कुबेरलङ्कां गृहीत्वा तत्र राजाऽभवत् । तद्वन्धि पौलस्त्या राक्षसाः प्रागन्येन लङ्कामधिष्ठाय सालकटङ्कटानां राक्षसान् स्वायत्तान् पालयामासुः । तथा चैतस्या लङ्कानगर्यास्त्रेधा कक्षाविभाग आसीन् । तत्र मध्यमे लङ्कार्धे पौलस्त्यानां रावणकुम्भकर्णविभीषणप्रमुखानामधिपतीनां राजप्रासादात्त्रिकूटाचले सन्निविष्टा अभूयन् । उत्तरे तु लङ्कार्धे रावणजातीयाः पौलस्त्या नाम राक्षसा वसन्ति स्म । अथ दक्षिणे लङ्कार्धे सालकटङ्कटा माल्यवत्सुमालिसुमालिप्रमुखा राक्षसा न्युपुः । सेयमेकैव लङ्का त्रिधा विभक्तानीन् । तत्र मध्यमो भागो लङ्कायाः समुद्रगर्भे निमग्नः कालेनीच्छिन्नोऽभूदिति नेदानीनुपलभ्यते । उत्तर-प्रान्तस्तु भग्नावशिष्टः कश्चिद्भागो रत्नोद्धीपनामा तदपभ्रंशेन लङ्के दीव इत्युच्यते । एवमन्या दक्षिण-कश्चन मालेयाध्युपितो भागो भग्नावशेषो मालिद्वीपस्तदपभ्रंशेन नालवदीयनान्नाभिधीयते ॥ इति-वृत्तीयम् ॥ ३ ॥

(४) अपि चास्मिन् लङ्काद्वीवादिमालदीवान्तेष्वद्वीपे निरङ्गगर्भत्वेन न्युपपद्यते । तत्र हि । पुरा-युगे तावदियं लङ्कानगरी निरङ्गेपहस्त्ये कस्मिंश्चिन् सुवेलपद्येत्त्रिकूटपर्वताभ्यामुत्पद्यते

द्वीपे त्रिकूटाद्रिमध्यमशिखरोपरि सन्निविष्टाऽसीत् । सा च पूर्वापरतो विंशत्यधिकशतक्रो-
 ४००
 शैर्विस्तीर्णा दक्षिणोत्तरतस्तु चतुश्शतक्रोशदीर्घासीदिति रामायणवचनादवगम्यते ।

त्रिंशद्योजनविस्तीर्णा शतयोजनमायतेति तत्रोक्तेः । तेन त्रिकूटकशिखरस्थाया नग-
 र्याश्चतुःशतक्रोशमितत्वे तदुपलक्षितैतद्द्वीपस्य ततोऽधिकदीर्घत्वं संभाव्यते । त्रिकूटादुत्तरतः
 सुबेलशैलाभिव्याप्त्याचतुर्दिक्षु समुद्रकूलेपूपत्यकाप्रदेशाभिव्याप्त्या चैतस्या नगर्या बहिर्द्धा
 परिसरस्थलानामाधिक्यात् । तथा चावश्यं मालदीवादप्यस्मादक्षिणतो निरक्षपूर्याप्ता लङ्काद्वीपस्य
 दक्षिणपरिसरप्रदेशाः पुरात्वे आसन्निति गम्यते । तथा च नगरीविशेषवांचिनो लङ्काशब्दस्य
 तदुपलक्षित राष्ट्रेषु मिथिलादिशब्दवल्लोकव्यवहारसिद्धतया द्वीपाभिप्रायेणापि प्रयुज्यमानत्वाल्लङ्काया
 निरक्षत्वोपपत्तिः ॥ इति चतुर्थम् ॥ ४ ॥

(५) अथेयमुज्जयिनी नगरी ग्रीनवीचमध्यरेखातः साधिकपञ्चसप्तति (७५ । ४३) मिते
 पूर्वदेशान्तरे सन्निविशते । लङ्कापीयं पुरात्वे तावत्येव पूर्वदेशान्तरे संनिविष्टासीदिति
 लङ्काया उज्जयिन्याश्च दक्षिणोत्तरतः समसूत्रत्वमापत्तिः । समसूत्रत्वाच्च भारतवर्षीयार्य-
 निदर्शिता भूमध्यरेखा तदुभयस्पर्शिन्युपपद्यते । तेन देशान्तरतोऽपि लङ्कादीवमालदीव-
 योरेव लङ्कात्वं सिध्यतीति पञ्चमम् ॥ ५ ॥

(६) अपि च सिंहलद्वीपे सोमानाम्न्या रजक्या निवासस्थानमासीदिति सोमवत्यमावात्योपा-
 ख्यानादवगम्यते । पुराकालादेव तु दक्षिणापथस्थानां ब्रविडादीनां सिंहलद्वीपे भूयांसो
 वाणिज्यव्यापाराः प्रचरन्ति स्म । बहूनां च दक्षिणात्यानां राज्ञां सिंहलद्वीपे युद्धानि
 भवन्ति स्मेति प्रचलित कतिपयेतिहासपिटकाद्विज्ञायते । विजयश्रीविक्रमराजादयो बहव-
 सूर्यवंश्या राजानस्तत्र राज्यं कुर्वन्ति स्म । कुमारदासश्चात्र प्रसिद्धो राजाऽसीत् ।
 तदित्थं मनुष्याणामेवात्र सिंहलद्वीपे पुराकालादारभ्येदानीं यावत् संनिवेशो यातायातं
 चाख्यायते । न तु राजसानामुपनिवेशः पुराकालादिदानीं यावदिह कुत्रापि स्मर्यते ।
 लङ्काद्वीपे तु राजसानामेवाऽसीत् पुरात्वे निवासस्थानमिति भेदाः । तस्मान्नायं सिंहल-
 द्वीपः कदापि लङ्कासीदिति निश्चिनुमः । अथैतयोस्तु लङ्कादीवमालदीवयोरद्यापि मनुष्य-
 मांसभक्षकत्वं बहुषु दृश्यते इति राजसवृत्तिप्राणिनामिहोपनिवेशादनयोर्लङ्कात्वं संभाव्यते
 इति षष्ठम् ॥ ६ ॥

तथा च सिध्यत्यन्यः सिंहलद्वीपोऽन्यश्च लङ्काद्वीप इति युक्तं भागवतादिषु सिंहललङ्कयोः
 पार्थक्येनाभिधानम् । अयुक्तं च सिंहलस्य लङ्काभिधानम् ।

इति द्वादशी विप्रतिपत्तिः ॥ १२ ॥ इति भारतपरिचये लङ्काप्रसङ्गः समाप्तः ॥५॥

भारतीयभाषाप्रसङ्गः ॥ ६ ॥

दैवीब्राह्मीमेदाद् भारत्या भाषाया द्विविध्यम् ।

१—छन्दोभाषा संस्कृतभाषाऽथ च नागरी भाषा ।

इत्थं भारतवर्षे कालक्रमतस्त्रिधा भाषा ॥ १ ॥

छन्दोभाषा ।

२—भारतवर्षे द्विविधा भाषाऽऽसीत् प खिनेः समये ।

छन्दोभाषा दैवी ब्राह्मीनाम्नी तु भारती भाषा ॥ २ ॥

दैवीभाषा स्वर्ग्या देवेषु वचलिताऽभवत् स्वर्गे ।

देवानामुक्तेद्देवादुक्लिन्नाऽप्यरित शास्त्रमात्रस्था ॥ ३ ॥

छन्दोभाषायाः सर्वभाषामूलत्वम् ।

छन्दोभाषा त्वेषा जननी प्रतिभाति विश्वभाषाणाम् ।

संस्कृतभाषा चासुरभाषा द्वे ज्येष्ठकन्ये स्त ॥ ४ ॥

संप्रति भाषा बह्वथ संस्कृतभाषाविकारतो जाताः ।

यूरोपसर्वभाषा आसुरभाषाप्रभृता स्युः ॥ ५ ॥

जेन्दावस्ताभाषा त्वासुरभाषा प्रदृश्यते प्रथमा ।

लेटिनभाषा त्वपरा संभाव्यन्ते ततोऽन्यथा ॥ ६ ॥

छन्दोभाषाया एव इण्डोयूरोपियन भाषात्वम् ।

यत्स्विह वदन्ति लोका इण्डोयूरोपियन नाम्ना ।

आसीद् काचिद् भाषा सा जननी विश्वभाषाणाम् ॥ ७ ॥

मन्ये सा हि च्छन्दोभाषैव तु मूलभाषाया ।

जेन्दावस्ता छन्दोऽभ्यस्ता सच्छन्द आम्नाय ॥ ८ ॥

भारती भाषा ।

३—अमरस्य कोशकर्तुः समये सा भारती भाषा ।

ब्राह्मी नाम्ना लोके प्रथिताऽऽसीत् स हि नर्थाह ॥ ९ ॥

* ब्राह्मी तु भारती भाषा—इति । यत्त्वमगदीकाकर्तुः प्रथितं भारतीभाषाशब्दान् । भाषा त्वेन वाक्येन नार्थाह । यथाचित्त्वं प्रदर्शयते तदज्ञानात् । भाषाशब्दस्य वाक्यार्थात्त्वमौचित्यात् ।

भारतवर्षमनुष्याः संस्कारैः संस्कृता अभवन् ।

भाषा च भारतीयं पाणिनिना संस्कृताऽक्रियत ॥ १० ॥

ग्राच्योदीच्यभेदाद् ब्राह्मीभाषाद्वैविध्यम् ।

ब्राह्मी तु भारतीयं भाषाऽऽसीत् प्रचरिता तदा लोके ।

पृथगिव सोदीच्यानां ग्राच्यानां चाल्पशो भिन्ना ॥ ११ ॥

सा भारती तु भाषा संस्कारभ्रंशतो विकारेण ।

रूपान्तरतामागाद् द्विजातिधर्मा इवेह कालेन ॥ १२ ॥

दैवी छन्दोभाषा यथाऽभवद् ग्रन्थमात्रस्था ।

तद्वद् ब्राह्मी भाषाऽप्येवाऽभूद् ग्रन्थमात्रस्था ॥ १३ ॥

नागरी भाषा ।

४—संप्रति भारतभाषा प्रवर्तते नागरी नाम्ना ।

वैदेशिकसचिवास्त्विह तामाह्वं हिन्दीम् ॥ १४ ॥

इति भारतीयभाषाग्रसङ्गः समाप्तः ॥ ६ ॥

मातृकाप्रसङ्गः ॥ ७ ॥ लिपिप्रसङ्गः ॥ ८ ॥

(वर्णमातृका)

१—पथ्यास्वस्तिरिहासीद् देवयुगेऽक्षरसमाम्नायः ।

सप्तनवतिरिह वर्णाश्छन्दो भाषानुगा उक्ता ॥ १ ॥

यो ब्रह्मराशिरुक्तो वर्णसमाम्नाय उत्तरे तु युगे ।

स चतुःपट्त्र्या वर्णैः संस्कृत भाषां प्रवर्तयति ॥ २ ॥

“त्रिषष्टिर्वा चतुःषष्टिर्वर्णाः संभवतो मताः ।”

प्राकृते संस्कृते वापि स्वयं प्रोक्ताः स्वयंमुवा ॥

इत्थं पाणिनिरवदद् बहुपूर्वं त्वेव भारते जज्ञे ।

पथ्यास्वस्तिरिति प्राग् वेदयुगे वर्णमातृकानन्ता ॥ ३ ॥

मन्ये ततः स्वयंभूरक्षरमालामिमां ब्राह्मीम् ।

वेदाभिज्ञानार्थं विनिर्ममे सर्वतः पूर्वम् ॥

या वर्णमातृकेयं पञ्चाशद्वर्णतः कृताऽद्यास्ति ।

कातंत्रकल्पिता सा वर्तयते नागरीं भाषाम् ॥ ४ ॥

इति भारतपरिचये वर्णमातृकाप्रसङ्गः ॥ ७ ॥

भारतीयब्राह्मीलिपेभ्यः प्रचाल्लोपः ।

लिपिरपि खल्वार्याणां ब्राह्मी लिपिरेव सर्वतः पूर्वम् ।

उदभूद् ब्राह्मी भाषा चेत्युक्तं भारते शान्तौ ॥ ५ ॥

“इत्येते चतुरो वर्णा येषां ब्राह्मी सरस्यती ।

विहिता ब्रह्मणा पूर्वं लोभात् त्वज्ञानतां गताः ॥” (महाभाष्ये गान्धि १८८ । १४)

ब्राह्मी भाषा संस्कृतभाषेयं ब्राह्मणैरल्पैः ।

विज्ञायते न सर्वैर्ब्राह्मी तु लिपिर्न लिख्यते ह्यधुना ॥ ६ ॥

वेदमन्त्रनिर्माणकाले लिपिसामान्याभावमतत्त्ववदनाय श्रुतिशब्द व्यपदेशस्य

मौलिकरहस्योपपादनम् ।

२—ऋग्वेदश्रुतिनिमित्तिकाले काचिल्लिपिर्नासीत् ।

अत एव कण्ठपाठश्रवणाच्छ्रुतयः श्रुता वेदाः ॥ ७ ॥

इत्थं ब्रुवते केचित् पाश्चात्याः कल्पनारसिकाः ।

अनभिज्ञास्ते नूनं भारतवैदिकरहस्यविज्ञाने ॥ ८ ॥

विवृधैस्तु भारतीयैः संकेतित एष यत्रार्थे ।

श्रुति शब्दः प्राक् कालात् तं संकेतं प्रवक्ष्यामि ॥ ९ ॥

सत्यानां धर्माणां ज्ञाने हेतुः प्रमाणमित्युक्तः ।

प्रत्यक्षं ह्यनुमानं शास्त्रं चेति त्रिधा तत्स्यात् ॥ १० ॥

दृष्टि श्रुतिः स्मृतिर्वा निबन्ध इति हेतवो ज्ञाने ।

दृष्टेः प्रत्यक्षत्वं शास्त्रत्वं तु श्रुतिस्मृत्योः ॥ ११ ॥

चक्षुषि सत्यं निहितं चक्षुर्गृह्णात्यदोपमनुपाधि ।

एकं तदेव मुख्यं प्रमाणमन्यत्तु तदपेक्षम् ॥ १२ ॥

वाक्यानपेक्षवाक्यं श्रुतिरिति मीमांसया सिद्धम् ।

दृष्टिः श्रुतिरेकोर्धो वेदाः प्रत्यक्षमित्याहुः ॥ १३ ॥

द्रष्टुर्वाक्यं श्रुतिरिति संकेतो दृष्टिमूला सा ।

द्रष्टा दृष्टं ब्रूते शृणुते श्रोता च दृष्टमेवार्थम् ॥ १४ ॥

दृष्टिः स्वतःप्रमाणं द्रष्टुर्वाक्यं स्वतःप्रमाणं स्यात् ।

प्राथमिकं तज्ज्ञानं न ज्ञानाज्ज्ञानमवतीर्णम् ॥ १५ ॥

श्रोतुर्वाक्यं स्मृतिरिति संकेतो नात्र वक्ताऽयम् ।

स्वीयां दृष्टिं ब्रूते परानुभूतं गिराऽभिनयेत् ॥ १६ ॥

स्मृतिरिति मतमनुमानं तल्लिङ्गज्ञानतो ज्ञानम् ।

नाप्तः स्वयं स वक्ता श्रुतवानाप्तात् स्मृतः सोऽर्थः ॥ १७ ॥

परपुरुषीयप्रत्ययने योऽस्य प्रत्ययस्तस्मात् ।

परतःप्रमाणमेतद्वाक्यं वाक्यान्तरापेक्षम् ॥ १८ ॥

द्रष्टुर्वाक्यं यावन्नोपपृम्भकतयाऽयमाश्रयते ।

न च तावत्स्वं वाक्यं शक्नोत्येव प्रमाणयितुम् ॥ १९ ॥

इत्थं शास्त्रं द्विविधं स्वतःप्रमाणं परप्रमाणं च ।

नात परं तृतीयं शास्त्रं संभाव्यते किमपि ॥ २० ॥

परतःप्रमाणशास्त्रे यत्र द्वैविध्यमापतति ।

विप्रतिपत्तावन्योऽनुमानमत्र प्रवर्तयति ॥ २१ ॥

अनुमानाद् यद्युभयोर्विरुद्धवाचो स तात्पर्यम् ।
 प्रथमिव नीत्वा सत्यं गृहीयात्स हि निबन्ध स्यात् ॥ २२ ॥
 अपि च निबन्धं शास्त्र मन्यन्ते तस्य शास्त्रत्वम् ।
 शास्त्रानुबन्धतः स्यादुपचारात् सोऽस्ति तर्कस्तु ॥ २३ ॥
 सर्वसपीदं वाङ्मयमित्थं त्रेधा प्रमाणं स्यात् ।
 यत् पुनरेभ्यो भिन्नं तदप्रमाणं प्रलापः सः ॥ २४ ॥
 न तु केवलमिदमित्थं भारत एव प्रमाणमुपपाद्यम् ।
 देशेषु किन्त्वशेषेष्वशेषभावास्विदं तुल्यम् ॥ २५ ॥
 किन्त्विह भारतवर्षे तदिदं गीमासितं तस्मान् ।
 संकेताय नियक्ता श्रुतिस्मृतिप्रभृतयः शब्दा ॥ २६ ॥
 इति पूर्वेषां विदुषां संकेतं ये न जानन्ति ।
 भ्रान्तं श्रुतिशब्दार्थं प्रकल्प्य ते भ्रामयन्त्यन्यान् ॥ २७ ॥
 इह भारतीय विद्यारहस्यशिक्षामनासाद्य ।
 भारतशास्त्रपदानां विक्षेपणमित्यमन्याय्यम् ॥ २८ ॥
 न ह्येषश्रुतिशब्दो मन्त्रार्थे मन्त्रसहितासूक्त ।
 लिपिकाले त्वविशेषान्मन्त्रे च ब्राह्मणे चोक्त ॥ २९ ॥
 श्रवणाच्छ्रुतिरभविष्यच्छ्रुतिशब्दस्तर्ह्यवश्यमभविष्यन् ।
 ऋग्वेदेऽप्युल्लिखितः किंतु न लिपिशब्दवत्स तत्रान्ति ॥ ३० ॥
 श्रवणाद्यदि श्रुतिः स्याच्छ्रुतिशब्दस्तर्हि न प्रयुक्तः न्यान् ।
 लिपिकालोत्पन्नेषु ग्रन्थेषु ब्राह्मणात्येषु ॥ ३१ ॥

मन्त्रनिर्माणकाले लिपिसत्त्वे वैदिकं प्रथमं प्रमाणम् ॥ १ ॥

३—अपि चनुवते केचिद् लिपिर भविष्यत्तु वेदससये चेद ।
 लिपिलेखनीमसीनामप्यभविष्यन् कचोन्तेत्स ॥ ३२ ॥
 तत्र ब्रूमो लिप्युल्लेखार्थो न प्रसङ्ग आयातः ।
 तेन स तत्र न दृष्टो न तु हेतुलिप्यभावे न ॥ ३३ ॥
 श्रुति शब्दोऽपि तु मन्त्रे मन्त्र प्ररत्वेन न कचिद्दृष्टः ।
 अथ मन्यसे तु मन्त्रे श्रुतिशब्दं तद्वदिह विद्यान् ॥ ३४ ॥

अथवा दृश्यत एव तु वेदे लिखनार्थशब्दोऽपि ।

लेखन्याश्च लिपेरपि सत्त्वं शक्यं ततो ज्ञातुम् ॥ ३५ ॥

यजुषश्च संहितायाः पञ्चदशोऽध्याय आम्नातम् ।

छन्दः क्षुरोभ्रज इति क्षुरथातुर्विलिखेन दृष्टः ॥ ३६ ॥

“अक्षरं पंक्तिश्छन्दः, पदपंक्तिश्छन्दो, विप्रारपंक्तिश्छन्दः ।

क्षुरोभ्रजश्छन्दः ॥ ३७ ॥ (इति यजुः संहिता १५ । ४)

कस्याचिच्छायां तु—‘क्षुरश्छन्दः, भ्रजश्छन्दः—’ इति पृथक्त्वेनाम्नायते-॥

तत्राप्यक्षरपदयोः साहचर्यादिह लोहनिर्मिता पूर्वयुगीया लेखन्येव क्षुरः संभाव्यते । पुरायुगे सूक्ष्मखनित्रेणैव सूच्याकारेणाक्षरलिपेः क्रियायाः संभाव्यमानत्वात् । भ्रज इति पत्रोल्लिखिता प्रकाशमाना वागेव स्यात् ।

अक्षरपंक्तिर्वर्णैः पदपङ्क्तिः स्यात् पदैर्यथा वाक्यैः ।

विप्रार पंक्तिरेवं क्षुरोभ्रजो लिपिकृतं मन्ये ॥ ३८ ॥

क्षुरसा लेखन्या या लिखनाद् भ्राजेत दृश्येत ।

लिपिरेव सा तु वाक् स्याच्छन्दस्तच्च क्षुरोभ्रजो नाम ॥ ३९ ॥

छन्दः सर्वं बाङ्मयमक्षरपदवाक्यसाहचर्याच्च ।

अक्षरलिखनादन्यत् विलिखनमिह नोपपद्येत ॥ ४० ॥

मन्त्रनिर्माणकाले लिपिसत्त्वे वैदिकं द्वितीयं प्रमाणम् ॥ २ ॥

४—अन्यच्च तत्र काले लिपिसत्त्वेऽस्ति प्रमाणमत्रैव ।

विद्यासूक्ते वक्ति हि बृहस्पतिर्दर्शनं वाचाम् ॥ ४१ ॥

“उतत्त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुतत्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम् ।

उतो त्वस्मै तन्वं विस्वतो जायेव पत्य उशती सुवासा” ॥ ४२ ॥ (ऋ०सं० १० । ७१)

वाचांमुच्चरितानां श्रवणं नु यथा तथैवं लिखितानाम् ।

वाचां ग्रन्थमयीनां दर्शनमुपपद्यतेऽर्थबोधाय ॥ ४३ ॥

मूर्तिं विना च वाचां दर्शनमुपपद्यते क्वापि ।

तस्माल्लिपिरिदं वाचां मूर्तिरवश्यं तदाप्यासीत् ॥ ४४ ॥

लिपिसंकेताविज्ञः पश्यन्न चक्षां दृष्ट्वा वाक्त्वेन ।

शृण्वन्न शृणोत्येतां वेत्ति न यस्त्वय्य-संकेतम् ॥ ४५ ॥

वैदिकं तृतीयं प्रमाणम् ॥ इति ॥

वैदिकं तृतीयं प्रमाणम् ॥ ३ ॥

५—अपि च पुरा देवयुगे सत्त्वे कस्याश्चिदेव देवलिपे ।
 मन्त्रकृतामाचारं वीक्षे नूनं प्रमाणतया ॥ ४६ ॥
 कृत्स्नपुत्रो गन्धर्वो हृतराऽज्यो दम्युभिः पुराकाले ।
 विकलश्चिन्तामापत् त प्रति घोरः प्रगाथ इत्याहु ॥ ४७ ॥
 ॐ माचिदन्यद्वि शंसत सखायो मा रिपत्यत ।
 इन्द्रमित्ततोता वृषणं स चासुते मुहुर्कथा च शंसत ॥ ४८ ॥ (८ । १ । १)
 याभिः काण्वस्योपवर्हिः रासदं यासद्वज्री भिनन् पुरः ।
 प्राप्तं गायत्रमर्चत वावातुयं पुरन्दर ॥ ४९ ॥ (८ । १ । ८)
 इत्यादिष्ट कुत्सः शक्रमुपेत्येन्द्रसखकार्ष्व ।
 गीतान्याह्वानार्थं न्यवेदयद् भद्रसूक्तानि ॥ ५० ॥
 आयाहि कृण्वाम त इन्द्र ब्रह्माणि वर्द्धना ।
 येभिः शविष्ठ चाक्रनो भद्रमिह न्यवन्त्यते ॥
 भद्रा इन्द्रस्य रातय ॥ ५१ ॥ (८ । ६२ । ४)
 यच्चिद्वित्वा जना इमे नाना हवन्त उत्तये ।
 अस्माकं ब्रह्मेदमिन्द्रभूतु तेऽहा विश्वा च वर्द्धनम् ॥ ५२ ॥ (८ । १ । ३)
 एन्द्र या हि सत्त्वं चित्रेण देवराधस्ता ।
 सरो न प्राप्तुदरं सपीतिभिरासोमेभिन्नम् ॥ ५३ ॥ (८ । १ । २३)
 एन्द्र याहि हरीभरुप कष्टम्य सुप्रतिम ।
 दिवो अमुष्य शास्ततो दिवं यय दिवावनो ॥ ५४ ॥ (८ । ३४ । १)
 कण्वानां तु न चैषां स्वर्गे गमनं श्रुतं तत्रा काले ।
 लिखितं विना नु भारतभूस्थैः शक्यं स ग्राह्यः कर्तुम् ॥ ५५ ॥

* प्रगाथः काण्व आह—हे इन्द्राय । त्वं मद्रसूक्तानि । कृत्स्नपुत्रो देवयुगे मा प्राणं दत्तः । २७
 चानेन राज्यहरणादिदुःखेनातितया चिन्ताविकलितान्तरा भवन । न चास्मै नृपस्य गो गोमैः प्रसूतो ह्ये-
 काम प्रवर्षकं भगवन्तमिन्द्रमेवाश्रयत । उक्था = उक्थे वांज्यैः शंकरैश्च तमेवैव इत्युक्तम् । (८ । १ । १)
 अपि च—अस्मै इन्द्राय गायत्रं प्राणत्रयं हेतुभूतं प्रायश्चान्द्रं प्रर्चतं लिखितम् ।

तस्मादवश्यमेते विलिख्य कएवा इमानि सूक्तानि ।

इन्द्रस्यागमनार्थं कुत्सकरात् प्रेषयामासुः ॥ ५६ ॥

मन्यामहे ततः प्राग् वैदिकमन्त्रावतारकालेपि ।

आसीद्विपिप्रचारो विदुर्धेरुद्भाविनः कुशलैः ॥ ५७ ॥

मन्त्रनिर्माणकाले लिपिसत्त्वे चतुर्थं प्रमाणम् ॥ ४ ॥

६—ऋग्वेदो नामासीत् पश्चिमभारत ऋषिः कश्चित् ।

जरदस्त्रस्तस्याभूदौहित्रो ब्राह्मणद्वेपी ॥ ५८ ॥

ब्राह्मणविद्वेपात् स हि तेषां ब्राह्मणं लिपिं त्यक्त्वा ।

विपरीतां तु खरोष्ठीं लिपिमन्यां कल्पयामास ॥ ५९ ॥

ब्राह्मी वामादक्षिणमेति खरोष्ठी तु दक्षिणाद्वामम् ।

शाकद्वीपेऽन्यत्र च लिपिः खरोष्ठी प्रचलिताभूत् ॥ ६० ॥

अस्याः पुनः खरोष्ण्या विकारतोऽनेकलिपयः स्युः ।

विपरीताचरणादथ जरदस्त्रमतोनुगा मगाः ख्याताः ॥ ६१ ॥

शाकद्वीपिमगा इह पणिभिः सह भारतेऽभ्येस्य ॥

कीकटदेशे न्यूपुस्तं देशं मगधमाचख्युः ॥ ६२ ॥

तेषां प्रसङ्गतस्त्विह लिपिः खरोष्ठी समागता मगधे ॥

ब्राह्मी लिपिरासीत् प्राक् तेन द्विविधा लिपिः प्रचरिताऽत्र ॥ ६३ ॥

ब्राह्म्या बह्व्यो बह्व्यो विकृतय आसन् खरोष्ण्याश्च ।

ता अपि वामादक्षिणमथ वामं दक्षिणादायन् ॥ ६४ ॥

मगधे पाटलिपुत्रे वभूव सम्राडशोकः प्राक् ।

स लिपो उभयविधे अपि निजराष्ट्रे वर्तयामास ॥ ६५ ॥

इत्थं द्विविधो लेखो वामावर्ती च दक्षिणावर्ती ।

अद्यावधि प्रचरितो लोके सर्वत्र दृश्यते प्रायः ॥ ६६ ॥

वामावर्तिन्यास्त्विह जरदस्त्रो जन्मदी लिप्याः ।

ब्राह्मीलिपेर्विरोधादेव च भिन्नक्रमं लिपौ चक्रे ॥ ६७ ॥

तेन स्पष्टं सिध्यति जरदस्त्रस्याय जन्मतः पूर्वम् ।

ब्राह्मी लिपिः प्रचरिता सर्वत्रासीत् पुराकालात् ॥ ६८ ॥

पञ्चमं प्रमाणम् ॥ ५ ॥

७—परिपूर्णसभ्यतायां वृत्तायां निम्मिता इमा श्रुतय ।
 वैज्ञानिकता ह्येषां दृश्यत इह सभ्यतामूलम् ॥ ६६ ॥
 राजप्रजाविभाग सामाजिकता च धर्मनीतिश्च ।
 कार्यकार्यविभागो दृश्यत इह सभ्यताचिह्नम् ॥ ७० ॥
 कालेऽनादौ लक्षाधिकेषु वर्षेष्वतीतेषु ।
 वेदा इमेऽवतीर्णा बहुषु च शास्त्रेष्वतीतेषु ॥ ७१ ॥
 पूर्वे साध्या देवा पूर्व्या धर्माश्च पूर्वजा गाथा ।
 पूर्वाण्याख्यानान्यपि बहुधोल्लिख्यन्त इह वेदे ॥ ७२ ॥
 तस्मादेभ्यो वेदग्रन्थेभ्योऽपि च पुरातनेके ।
 उन्नत्यवनतिपर्य्यधारा लोकेऽवगम्यन्ते ॥ ७३ ॥
 एतद्वेदान् प्रागपि बह्व्यो विद्या अनेकधा भाषाः ।
 नाना लिपयो जाताः सभाव्यन्ते विलुप्ताश्च ॥ ७४ ॥
 प्रकृतिक्रमानभिज्ञाः सहस्रवट्कान्तरार्थमात्रदृश ।
 कालविलुप्तानर्थान्नाभ्युपगच्छन्त्यङ्गोनाद्धेनो ॥ ७५ ॥
 अद्यत्वे त्विह चाङ्मयमुपलब्ध चावदेवानि ।
 सर्वस्मादपि तस्माद्वेदः प्राचीन इति सत्यम् ॥ ७६ ॥
 वेदात्प्रागपि विद्या भाषा सिपयोऽनुवृत्ताश्चेन ।
 ध्रुवमत्र वेदकालेऽयेता आसन्निति ब्रूम ॥ ७७ ॥

षष्ठं प्रमाणम् ॥ ६ ॥

८—यास्कोऽप्याह निरुक्ते (१ । ६ । ४) धर्मानं दृष्टव्यं पुराऽनृत् ।
 श्रुत्वा मन्त्रग्रहणाक्षमा इम ग्रन्थसान्नु ॥ ७८ ॥
 विल्मो विभिन्नखण्डो विल्मग्रहणान रन्पिनो ग्ग ।
 लिपिमन्तरेण भिन्नो भिन्न खण्डो न शक्यनस्तिनेनुम् ॥ ७९ ॥

सप्तमं प्रमाणम् ॥ ७ ॥

९—द्वैपायनश्च कृष्णो हिमवति वदरीयने निवसन् ।
 वेदं व्यस्यन् मन्त्रान्संगृहा तुस हितागच्छति ॥ ८० ॥

मन्त्राणां संकलनं तेषां चानेकसंहिता रचनम् ।
लिपिमन्तरेण कर्तुं न शक्यमेकेन पुरुषेण ॥ ८१ ॥

अष्टमं प्रमाणम् ॥ ८ ॥

१०—साहसिकः पुनरन्यस्त्वदूरदर्शीत्यदीर्घदर्शीति ।

मागधराजशोकात् प्राग् लिपिसत्त्वं न भावयति ॥ ८२ ॥

हन्ताशोकस्य द्वाविंशतिशतकल्पवर्षाणि । [२२५०]

प्रययुः किन्त्विह रामः पञ्चसहस्रान्दतोऽभवत्पूर्वम् ॥ ८३ ॥

रामस्यापि च समये लिपिरासीदिति पुरा हनुमान् ।

नामाङ्किताङ्गुलीयकमदर्शयत् तत्र जानक्यै ॥ ८४ ॥

“वानरोऽहं महाभागे दूतो रामस्य धीमतः ।

रामनामाङ्कितं चेदं पश्य देव्यङ्गुलीयकम्” ॥ ८५ ॥ [वाल्मी०सु० ३६ । २]

चीनपरिव्राडासीदित्सङ्गस्तद्वचः प्रमाणं ये ।

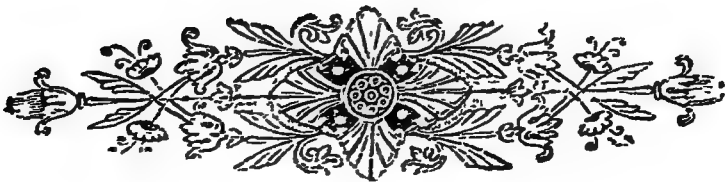
भारतविद्वच्छास्त्रं तु न प्रमाणं वदन्ति ते धन्याः ॥ ८६ ॥

मन्त्रनिर्माणकाले विद्यमानाया लिपेर्ब्राह्मीसंज्ञा ।

११—इत्थं च वेदकाले लिपिसत्त्वे सन्ति हेतवः कतिचित् ।

सा च लिपि ब्राह्मी वा दैवी वा नामतोऽन्या वा ॥ ८७ ॥

इति भारतपरिचये लिपिप्रसङ्गः समाप्तः ॥ ८ ॥



सभ्यताप्रसङ्गः ॥ ६ ॥

देव युगेभारतवर्षस्य परमोन्नतिः ।

अपि पूर्वस्मिन् काले परमोन्नतिश्चिरमायाता ।
एते तु भारतीया विश्वेषां शिक्षका अभवन् ॥ १ ॥
एष गुरुः सर्वेषां देशानामुत्तमो देशः ।
अत एवास्य मनुः प्रागवर्णयद् गौरवं पूर्णम् ॥ २ ॥
“एतद्देशप्रसूतस्य सकाशाद्ग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सवमानवाः” । (मनुः)
न तदात्वे यवनानां न रोमकाणां न चीनानाम् ।
ज्ञानं बलं च लक्ष्मीस्तथा यथा भारतीयानाम् ॥ ३ ॥
यानं तेषामधिकं तत इह विशाचतु पट्टि ।
भारतवर्षे प्रथमं प्रादुर्भूता असामान्यः ॥ ४ ॥
बलमपि तेषामधिकं बह्वस्त्विह चक्रवर्त्तिनोऽभूयन् ।
सप्तसमुद्रां पृथ्वीं मांधातैकः जशास तत्रोक्तम् ॥ ५ ॥
“यावत्सूर्य उदेति स्म यावच्च प्रतितिष्ठति ।
सर्वं तद्यौवनाश्वस्य मान्धातु चैत्रमुच्यते” । (विश्वगुप्तः अ० २१ : श्लो० ३५)
अमरीकाख्यो देशो देशो यो वाऽफ्रीकाख्यः ।
यूरोप एशिया तान् सर्वान् शान्तिं स्म मान्धाता ॥ ६ ॥
पाताले गन्धर्व्वीरा नागाः द्रुपीडिताः सतः ।
शरणमगुर्मान्धातुः स हि तेषां रक्षणचक्रे ॥ ७ ॥
इत्वाकुश्च ययातिः शशविन्दुर्हहयः नगरः ।
एव क च रविर्बश्य क च शशिर्वश्योऽभवन् सम्राट् ॥ ८ ॥
एषा सुवर्णभूमिर्गिरिषा दोग्धि भूयसीनक्ष्त्री ।
अन्नधनैः स्वान् विभ्रत्यन्यान् देशान् विभर्ति न्वाऽन्नायि ॥ ९ ॥

इति भारतपरिचये सभ्यताप्रसङ्गः समाप्तः ॥ ९ ॥

धर्मप्रसङ्गः ॥ १० ॥

भारतीय धर्माणां वैज्ञानिकत्वम् ।

अत्राचारविचाराः वैज्ञानिकनियतिभावनाकृतृप्ताः ।
तेनेह लौकिका अपि धर्मा इह पारलौकिकाः सर्वे ॥ १ ॥
सर्वेभ्योऽपि च देशान्तरीयधर्मेभ्य उत्कर्षः ।
धर्मेऽत्र भारतीये यदयं लोकद्वयौपयिकः ॥ २ ॥
मतभेदा वहवोऽस्मिन्नैको मार्गोऽत्र सुस्थिरः कश्चित् ।
इति दोषं ब्रूयतेऽन्ये भरतवर्षीयधर्मेऽस्मिन् ॥ ३ ॥
अनभिज्ञास्ते भारतधर्मरहस्यादसूक्ष्मदृशः ।
नैपा नीतिर्नायं भारतधर्मो यदृच्छयाकृतृप्तः ॥ ४ ॥
वैज्ञानिकस्तु धर्मः सर्वेषां नैकरूपः स्यात् ।
अपि देशकालपात्रप्रभेदतो भिन्नतौचित्यात् ॥ ५ ॥
नरकल्पितस्तु धर्मा नीतित्वात् संभवत्येकः ।
वैज्ञानिको मनुष्यो न च स्वतन्त्रोऽभिनेतुमेकतया ॥ ६ ॥
वैज्ञानिको हि सूक्ष्मोपपत्तिको भारते धर्मः ।
तस्य तदेव महत्त्वं यदनेकत्वं रवीन्दुनियतत्वात् ॥ ७ ॥

भारतीयधर्मस्वरूपम् ।

यो धृतः सन् धारयते स धर्मः । स्वरूपसंपादको गुणो धर्मः । प्रजासंरक्षणे दीक्षितो राजा भवति । दीक्षितोऽधिकारं प्राप्तः । यावता प्रजां स्वदीक्षानुसारेण पालयेत् तावता स राजा स्यात् । दुष्टनिग्रहानुग्रहाभ्यां शान्तिमसंरक्षणं पालनम् । स यद्येतन्न कुर्यात् न स तर्हि राजेत्युक्तः स्यात् । स स्वरूपाद् विच्यवेत । मनुष्यत्वमस्यावशिष्येत न राजत्वम् । तस्माद्राजस्वरूपसंपादकमिदं धर्मं धृतं सः राजानं धारयति तेनायं राज्ञो धर्मः । अतएवाहुः—“धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।”

धर्मो द्विविधः—प्राकृतः संस्कृतश्च । यत्र मनुष्याणां हेयत्वोपादेयत्वयोः स्वायत्तत्वं नास्ति स प्रकृत्या सिद्धः सर्वो गुणः प्राकृतो धर्मः । यथा मनुष्यत्वादिः मैथिलत्वसारस्वतत्वादिः । यावांस्तु गुणो मनुष्यैः स्वायत्ततयोपपाद्यते मनुष्येषु मनुष्यैराधीयते स संस्कारजन्यत्वात् संस्कृतो

धर्मः । यथा राजत्वं प्रद्विवाक्यत्वं गुरुत्वं भृत्यत्वम् । एवमादयो गुणा अधिभारयोगात्त्वगन्ते । तस्मात्ते संस्कृता धर्माः ।

अष्टधा व्याक्रियन्ते हीमे धर्माः—

- | | |
|------------------|------------------|
| १ दीक्षाव्रतम् । | ५ पुष्टिः । |
| २ संस्कारः । | ६ शान्तिः । |
| ३ आचारव्रतम् । | ७ स्वस्त्ययनम् । |
| ४ शुद्धिः । | ८ आनुशत्यम् । |

ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानां जन्मना लब्धोऽधिकारो दीक्षा । युक्तक्रमागतं कर्म पुष्टिः । अधिकारवृत्तिर्दीक्षाव्रतम् । तत्र ब्राह्मण व्याख्याम्याम ।

- १ स्वयं विज्ञानान्युपार्जयेत् । परेभ्यो विज्ञानान्युपदिशेत् । तत्र तपः ।
- २ स्वयं यज्ञैर्यज्ञपुरुषं याजयेत् । परेभ्यो यज्ञैर्यज्ञपुरुषं याजयेत् । स यज्ञः ।
- ३ राजभ्यो धनाढ्येभ्यश्च कररूपेण प्रतिगृहीयान् । वीनेभ्यो जीवनं दद्यान् । नदानम् ॥

यथाऽयं क्षत्रियो राजा आधिभौतिकेभ्यो दुस्त्वेभ्यो ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानां प्रजां संरक्षति । सरक्षणशुल्कतया करं प्रतिगृह्णाति । सत्यामावश्यकतायामधिकमपि समये समये प्रतिगृह्णाति । दीनदरिद्रेभ्यस्तज्जीवनार्थं ददाति च । तथायं ब्राह्मणो ब्रह्मा 'आदिभिरिकेभ्यो' दुस्त्वेभ्यो ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानां प्रजां संरक्षति । सरक्षणशुल्कतया राजभ्योऽपि करं प्रतिगृह्णाति । मन्त्राणां रक्षणं तायामधिकमपि समये समये प्रतिगृह्णाति । यथा राजा शासनमभामन्त्रणादीनां रक्षणं करोति । तानि भवन्ति तथामुप्य ब्राह्मणो देवयजनमण्डलादीनां पारादिपदानां रक्षणं करोति ॥

भोजमहाभोजी राजानो । चक्रवर्तिसार्वभौमो नृगजो । चन्द्रमतेन्द्रो वरुणोऽपि । विराजाविति चतुःकक्षं क्षेत्रं भवति । तथा द्विजो विप्रो देवो अग्निश्चतुःपादो भवति । त्रिजो ब्रह्मा मूर्धाभिषिक्तश्च लोकानां दीक्षापालो भवति । एतावत् सर्वं प्रजां पालयति ॥ अन्तर्गतं क्षेत्रमनुशास्ति । तस्माद् ब्राह्मणो राजभ्यः करं प्रतिगृह्णाति ॥ यथा नृपराजो नरो भूमौ राजा । नगरे सर्वमापणं सर्वा वीथ्यो राजमार्गा राज एव । राजानुपदेष्टुं नमोऽयं प्रजां संरक्षति । एवमेवै तेषां राज्ञामपि तत्र तत्राधिकारो ब्राह्मणानुपदेष्टुं प्रतिपन्नः । नरो राजा भूमौ । राजा ब्रह्मोऽधिपतिः । राजा वैश्यवर्गस्याधिपतिः । यत्र प्रजाः स्यात् प्रत्यन्दिनो विप्रः स तत्र राजा स्युः राजाज्ञां नानुपालयेयुः । स तर्हि राजा जायतेऽनुश्रुतोऽन्तिमः भवति । नरो राजा भूमौ । राजा ब्रह्मोऽधिपतिः । राजा वैश्यवर्गस्याधिपतिः । यत्र प्रजाः स्यात् प्रत्यन्दिनो विप्रः स तत्र राजा स्युः राजाज्ञां नानुपालयेयुः । स तर्हि राजा जायतेऽनुश्रुतोऽन्तिमः भवति । नरो राजा भूमौ । राजा ब्रह्मोऽधिपतिः । राजा वैश्यवर्गस्याधिपतिः । यत्र प्रजाः स्यात् प्रत्यन्दिनो विप्रः स तत्र राजा स्युः राजाज्ञां नानुपालयेयुः । स तर्हि राजा जायतेऽनुश्रुतोऽन्तिमः भवति ।

स तद्ब्रह्मा ब्रह्मवीर्याच्चयुतोऽनधिकारो भवति न स्वधर्मं परिपालयितुं शक्नोति । यथा शरीरे
आग्नेयमुदरमण्डलं—वायव्यमुरोमण्डलं—ऐन्द्रं शिरोमण्डलं परस्परानुगृहीतं वीर्यवद् भवति ।
पृथक्कृतं चेतदेकैकं स्वतन्त्रं सन्निवीर्यं मृतं भवति । तथेदं विष्णुमण्डलं क्षत्रमण्डलं ब्रह्ममण्डलं च
पृथक्कृतं सदेकैकं स्वतन्त्रं भूत्वा निर्वीर्यं मृतं भवति । स्वतन्त्रा वेश्या न राजाज्ञामनुपालयति स्व-
तन्त्राश्च राजानो न ब्राह्मणाज्ञामनुपालयन्ति । तेनैते त्रयोऽपि निर्वीर्या मृता इव संप्रति दृश्यन्ते ।
परस्परानुगृहीतारस्वेते स्वं स्वं धर्ममसंकीर्णमनुवर्तमाना वीर्यवन्तः स्युः । सर्वैश्चैतैः स्वस्व धर्मा-
नसांकर्येणानुतिष्ठद्विरेकः समाजामा जीवितो भवति । तत्रायं ब्राह्मणः समाजात्मनः शिरःस्था-
नीयः ॥ स एष व्याख्यातः ॥ १ ॥ एवमुदरस्थानीयः क्षत्रियः । उदरस्थानीयो वैश्यश्च व्याख्यातव्यः ।
अस्य हि समाजरूपपस्यात्मनोऽयं ब्राह्मणस्तावदाविदैविकव्यापत्तिनिवर्तकत्वाच्चर्मस्थानीयोन्तरङ्गो-
ऽङ्गरक्षको भवतीति शर्मैत्युच्यते—“चर्मैति मानुषं शर्मं देवत्रा” ! (श० १ । १ । ४ । ४) इति
श्रुतेः । क्षत्रियस्तु आधिभौतिकव्यापत्तिनिवर्तकत्वाद् वर्मस्थानीयो वहिरङ्गोऽङ्गरक्षको भवतीति
वर्मैत्युच्यते ॥ द्वाविमौ गोपयितारौ भवतः । यस्तु ताभ्यामुभाभ्यां संगुप्यते स गुप्तो वैश्यः ।
तेषामेपां त्रयाणां स्वस्व व्रतोपयोगिशक्तिप्रवर्धककर्मकरणं स्वस्वव्रतोपयोगिशक्तिव्यापादककर्म-
परित्यागश्च प्रतिस्विको धर्मः सिद्धो भवतीति विज्ञेयम् ।

वैज्ञानिकधर्मनिबन्धनं भारतवर्षमहत्त्वम् ।

एतद् भारतवर्षप्रशंसनं यत्पुराणेषु ।

वैज्ञानिकं तदुक्तं धर्मो न यदृच्छायाऽत्र क्लृप्तोऽस्ति ॥ १ ॥

अस्मिन्वर्षे वेदविज्ञानधारा दीक्षा शिक्षापूर्णपाकोदयेन ।

दिव्या धर्मा यादृशाः सन्ति दृष्टा दृश्यन्ते ते नान्यदेशेषु तद्वत् ॥ २ ॥

चातुर्वर्ग्यं चातुराश्रम्यमेवं चातुर्वर्ग्यं यज्ञदाने तपश्च ।

इष्टापूर्ते दत्तमाराधना वा तीर्थात्रयाणां देवतानां गुरुणाम् ॥ ३ ॥

इत्थं दृष्टा वेदविद्भिः पुराणैरस्मिन्वर्षे भारते धर्मभेदाः ।

अत्रैवैषामस्ति सम्यग् विधानं देशेऽन्यस्मिन् सन्ति नैषामुदर्काः ॥ ४ ॥

एतत्सत्यं वर्णयन्ति स्म पूर्वे सूक्ष्मप्रेक्षादक्षपौराणिकाग्र्याः ।

ब्राह्मेऽध्याये पञ्चविंशे पुराणे भूयो भूयोऽन्यत्र चान्यत्र चेति ॥ ५ ॥

पौराणिकं भारतवर्षमाहात्म्यम् ।

न भारतसमं वर्षं पृथिव्यामस्ति किञ्चन ।

यत्र विप्रादयो वर्णाः प्रभुवन्त्यभिवाञ्छितम् ॥ १ ॥

धन्यास्ते भारते वर्षे जायन्ते ये नरोत्तमाः ।
 धर्मार्थकाममोक्षाणां प्राप्नुवन्ति महाफलम् ॥ २ ॥
 प्राप्यते यत्र तपसः फलं परमदुर्लभम् ।
 सर्वदानफलं यत्र सर्वयज्ञ फलं तथा ॥ ३ ॥
 नीर्थयज्ञफलं सम्यक् गुरुसेवाफलं तथा ।
 देवताराधनफलं गार्हस्थ्ये चैव यत्फलम् ॥ ४ ॥
 यत्र देवाः सदा हृष्टा जन्म वाञ्छन्ति शोभनम् ।
 नाना व्रत फलं यत्र नाना शास्त्रफलं तथा ॥ ५ ॥
 अहिंसादिफलं सम्यक् फलं सर्वाभिराञ्छितम् ।
 ब्रह्मचर्यफलं यत्र स्वाध्यायेन च यत्फलम् ॥ ६ ॥
 यत्फलं धनवासेन संन्यासेन च यत्फलम् ।
 इष्टापूर्ते फलं चैव तथाऽन्यच्छुभकर्मणाम् ॥ ७ ॥
 प्राप्यते भारते वर्षे न चान्यत्र कचिद्भुवि ।
 क शक्नोति गुणान्वक्तु भारतन्याखिलानपि ॥ ८ ॥ [ब्राह्मसूत्र, २४ अ० १२]

भारतीयमहर्षीणां वैज्ञानिकतया दूरदर्शित्वम् ।

अत्रत्या विद्वांसो मान्या ब्रह्मर्षयः पूर्वे ।
 विज्ञानं तदपश्यन् येनापश्यन् परत्र कर्मफलम् ॥ १ ॥
 मरणोत्तरमयमात्मा विलुप्यते सर्वधेति नावेयात् ।
 जीवन्निव स तदानीमपि सुखदुःखे तनुं गतो भुङ्क्ते ॥ २ ॥
 इह यत्कर्म कृतं त्याच्छुभमशुभं वा फल भ्रवं तत्र ।
 लभते परत्र जीवः स्वर्गमुखं यातनां यामीव ॥ ३ ॥
 यज्ञस्तपश्च दानानीष्टापूर्ते च दत्तं च ।
 कर्म स्वर्गप्राप्त्यै चिकर्म्म चाकर्म ॥ ४ ॥
 इत्थं यज्ञं कुर्यादित्यं कुर्यान् तपश्च दानं च ।
 परपीडनं न कुर्याद् वपुषा वचसा च मनसा च ॥ ५ ॥
 पारत्रिकमिदमित्यं धर्मश्चार्थश्च जगत्तत्र ।
 मोक्षश्च भारतीयैः पूर्वैर्विज्ञानतो दृष्टः ॥ ६ ॥

कुर्वन्ति भारतीया एव परलोकसाधनं कर्म ।
 उत्तरजन्मन्युत्तमयोनिनिदानंत एव जानन्ति ॥ ७ ॥
 इतरजनाः श्रद्धते परलोके नैवमज्ञानात् ।
 तेषां सर्वमपीदं कर्मैहिकभोगसाधनं नियतम् ॥ ८ ॥
 अद्येतरवर्षीयप्रोन्नतिकालोऽस्ति किन्तु तत्रापि ।
 नैपां तद्विज्ञानं मस्तिष्केऽद्यापि संरूढम् ॥ ९ ॥
 धन्यं भारतवर्षं यत्रैतद्बहु पुरातने काले ।
 विज्ञानं प्रतिबुद्धं सर्वो पृथ्वी यतोऽनभिज्ञास्ति ॥ १० ॥

उन्नत्यवनतिविचारे भारतीयानां प्राचां विदुषां सिद्धान्तः ।

क्षीणभारतोपहासानौचित्यम् ।

१—भारतवर्षस्यास्य प्राचीनं गौरवं श्रुत्वा ॥
 अद्यत्वेऽवनतं तद् दृष्ट्वोपहसन्ति वैदेश्याः ॥ १ ॥
 घाष्ट्यं तदेतदेपामनभिज्ञत्वं बालकत्वं च ॥
 अपमानयन्ति ये तु क्षीणं दैवापराधेन ॥ २ ॥
 अपि युद्धयतोर्द्वयोरिह जयति क च दुर्वलो दैवात् ॥
 दैवापराधतश्च क्वापि पराजीयते प्रबलः ॥ ३ ॥

धर्मरक्षोपेक्षायां भारतावनतिहेतुत्वम् ।

२—भारतवर्षाधिपतिर्भारतधर्मं न हन्त पालयति ॥
 संप्रति भारतवर्षे शास्त्ररूपेणैव हेतुरवनत्याः ॥ ४ ॥
 भारतवर्षाधिपतिर्यमिदानीमुन्नतेरस्य ।
 हेतुं पश्यति स ध्रुवमवनतिहेतुस्ततोऽवनतिः ॥ ५ ॥

चातुर्वर्ण्यव्यवस्थायां अवनतिहेतुत्वाभावः ।

३—अप्यनभिज्ञाः केचिच्चातुर्वर्ण्यव्यवस्थानम् ।
 अवनतिहेतुं प्राहुर्न त्वेते दूरदर्शिनः सन्ति ॥ ६ ॥
 भारतवर्षे यावच्चातुर्वर्ण्यव्यवस्थानम् ।
 आसीत् सुदृढं तावत् परमोन्नतिरस्य देशस्य ॥ ७ ॥

यदधि राज्ञोऽसत्त्वाच्चातुर्वर्ण्यव्यवस्थानम् ।

अभवच्छ्रित्यिलं लोके तत् आरम्भो निपातम् ॥ ८ ॥

चातुर्वर्ण्यव्यवस्थाया एव भारतीयोन्नतिहेतुत्वम् ।

४—यत्तु ब्रूयुः केचिच्चातुर्वर्ण्यव्यवस्थाया ।

देशान्तरेष्वसत्त्वेऽप्युन्नतिरस्तीत्यहेतु सा ॥ ६ ॥

तत्र ब्रूमः सोन्नतिरेतद्देशोन्नतेस्तुलनाम् ।

नार्हति भारतवर्षोन्नतिरासीदुन्नति परमा ॥ १० ॥

भारतवर्षस्योन्नतिरथ चोन्नतिरन्यदेशानाम् ।

भिद्यत इतरतरतः परमं त्वेवान्तर हि तयो ॥ ११ ॥

आत्मोन्नतिरिह परमा भौतिक्युन्नतिरथान्यदेजेषु ।

भौती परसापेक्षा निरपेक्षा त्वात्मन निद्धि ॥ १२ ॥

विज्ञानतेजसोः संपत्त्यै प्रथमतः शिल्पद्वारा धनापेक्षा ।

५—आत्मोन्नतिरिह यद्यपि परमोन्नतिरस्ति किन्तु नोदयेति ।

न विना धनं संपत्त्या न च राजानुगृहेण विना ॥ १३ ॥

अन्योन्याव्यतिरेकात् सिद्धिर्हिान्ययोग्यनापेक्षा ।

उदरस्थं च हृदयस्थं च शिरस्यस्थं यथा घनिष्ठमङ्गम् ॥ १४ ॥

धनतः प्राणोत्साहो धनतो विज्ञानमुपपन्नम् ।

प्राणोत्साहादपि वा धनमपि विज्ञानमायानि ॥ १५ ॥

विज्ञानतो धनं च प्राणोत्साहश्च जायते ।

सिद्धेर्नैकेनान्यद् द्वयमपि सिद्धं ध्रुवं भवति ॥ १६ ॥

यावद् भारतवर्षे नोत्साहो नास्ति विज्ञानम् ।

तावद् धनमधिकाधिकमपेक्ष्यतेऽन्यस्य नन्विदम् ॥ १७ ॥

विज्ञानतेजसोरिह यावद्भागोऽस्ति भारते ऽऽहम् ।

शिल्पैरेव तु तावद्धनानि ते साधनानि ॥ १८ ॥

सिद्धे प्राणोत्साहे विज्ञाने वा पुनर्नापेक्षा ।

न श्यात् सर्वेऽप्यर्था विज्ञाननेनेऽप्यपेक्षन् ॥ १९ ॥

विज्ञानं हि महार्थं मन्दार्थं तद्धनं भवति ।
यद्यद्धनैरसाध्यं तद्विज्ञानेन साध्यते न चिरात् ॥ २० ॥

शिल्पविज्ञानस्य आत्मोन्नतिहेतुविज्ञानत्वाभावात् ।

वपुर्वलाभ्युन्नतितो धनोन्नतिः परा ततोऽपि प्रवरा प्रतीयते ।
प्राणोन्नतिः किन्तु ततोऽपि शस्यते ज्ञानोन्नतिर्नास्ति ततः परोन्नतिः ॥ १ ॥
ज्ञानोन्नतिर्यद्यपि शिल्पगाधुनाप्यस्त्येव देशेष्वखिलेषु भूयसा ।
तथापि सा भूतबलव्यपेक्षया पराश्रिताऽस्तीति न सातिशस्यते ॥ २ ॥
यदस्ति शिल्पोन्नतिकारिशिल्पिनां विज्ञानमेतत् कथंचिदिष्यते ।
लोकोपकारीह धनाप्तिकारणं तथापि आत्मोन्नतिहेतुरस्ति तत् ॥ ३ ॥

आत्मोन्नत्यपेक्षया धनोन्नतेरत्यन्तनिकृष्टत्वम् ।

यथेच्छलब्धिं सुखसाधनानां तत्साधनानामपि साधनानाम् ।
स्वर्णादिकानामुपलब्धिमद्य त्वभ्युन्नतिं प्राहुरिहान्यदेश्याः ॥ १ ॥
धनं सुखायास्तु तदेव दुःखस्याप्यस्ति हेतुः कचनानतिशयं ।
अमर्षणोर्ष्यादिविरोधमूला उपद्रवा अप्यत उद्भवन्ति ॥ २ ॥
तेनर्षिजाता इह भारतीयाः धनोन्नतिं नोन्नतिमाहुरार्याः ।
आत्मोन्नतिस्तून्नतिरिष्यते तैराध्यात्मिकीमुन्नतिमाश्रुरेते ॥ ३ ॥

तेजोविज्ञानाभ्यामिव धनेनास्वावलम्बनस्वातन्त्र्याभावः ।

प्राणादपि विज्ञानात् सिध्यत्यात्मावलम्बनं लोके ।
न तथा धनेन शक्यं न धनं सर्वत्र सह भवति ॥ १ ॥
धनिकानामिह गर्वो यत्र धने तस्य ते स्ववशात् ।
रक्षां कर्तुमशक्ता यदि राजा नानुगृहीयात् ॥ २ ॥

धनोन्नतेनिकृष्टत्वे त्रिदोषोत्पादकत्वहेतुः ।

धनैरुन्नतिस्तावदेवोन्नतिः स्यान्न यावन्मनः प्राणयोरुन्नतिः स्यात् ।
मनः प्राण आत्मेयमात्मोन्नतिश्चेत् परेषां श्रियोऽप्यस्य सर्वो वशेभ्युः ॥ ३ ॥

धनोन्नतिर्भूतपरिग्रहोन्नतिर्नाभ्युन्नतिर्वास्तविकी प्रतीयते ।
 दीपाकुलत्वात् सहसा भवन्ति हि त्रयोऽत्र दीपा मुग्धाधनजन्मा ॥ २ ॥
 आराममार्गं तस्वोऽयनस्था राजेच्छया नर्बजनोपभोग्या ।
 तथा धन सर्वविधं तु बाह्यं राजेच्छयैर्वैजजनो भुनक्ति ॥ ३ ॥
 तस्माद्धनं सर्वविधं हि राज्ञो न तु मयकीयं धननमि किञ्चिन् ।
 ममेदमस्तीति वृथाभिमानो यथा प्रगृह्यत्य शुक्त्य भोग्ये ॥ ४ ॥
 पित्रा धृतं वल्लभसमृद्धभावः शिशुं स्वभाग्योपचयान् मुग्धोऽन्तु ।
 भोग्ये न तस्यात्मवलप्रभावस्तस्मात् सात्मोन्नतिरित्यन्तेऽस्य ॥ ५ ॥
 तथा नृपानुग्रहलब्धवित्तः सुगानि भुङ्क्तां किमनेन जानम् ।
 राज्ञः कृपा सास्ति, नृपानपेक्षं तद्वत्तुल्येऽयमि जनो न गतः ॥ ६ ॥
 दु खं क्षये दु खत एव लाभो मिथो विरोधाद् दूरे धनानाम् ।
 दु खानुविद्धं धनत सुखं त्याद्धनं कचिर्जायतनाशहेतु ॥ ७ ॥
 शस्त्रास्त्रयोगेन तु विक्रमोद्यन्तद्विग्रमयोर्पारिजितं शम्भम् ।
 क्लैव्यं स वैक्लव्यमुपेत्यशस्त्रो न त्यात्मना किञ्चिद्वलं स र्जुम् ॥ ८ ॥
 धनानि भाराय भवन्त्यशक्तेर्धनानि भाराय भवन्त्यदुष्टे ।
 धनैर्वणिक्त्वं न धनैर्नृपं स्यादुत्साहनं गान्ति नृपां रत्नाङ्गान् ॥ ९ ॥
 नैसर्गिकोन्माहतेजसोर्मध्यमकृत्वाऽन्मोन्नतिरस्यम् ।
 उत्साह आत्मोन्नतिरस्ति शक्तिर्नैजश्च तन् चन्द्रमनेन स्य ।
 उपैति भूयानि धनानि लज्जामिन्नायन्त्य स्वयमायुषानि ॥ १० ॥
 उत्साह आत्मोन्नतिरस्ति तस्माद् विनाशमाणा यन्तं विनाशिनः ।
 संपद्यते तेन परानन्यपानपीजतेऽल्पानि च ग्रथनीयानि ॥ ११ ॥
 आत्मा प्राण प्राण उत्साह एतन्मात्रान्मात्राद् विनाशजैरपि ।
 नो दारिद्र्यं वित्ततो यो हरिद्रो यद्येन्मात्रे नानि मोऽयं नरः ॥ १२ ॥
 वित्तादस्योत्साह उत्साहनो वा विनं तोरे नृपते र्गन्तु नरे ।
 यस्तूत्साहो विनजन्मा स मन्दो हन्त्यो स्यात्तज्जतेऽप्यनेन ॥ १३ ॥
 बाह्यमपत्यपेक्षया प्राणमपत्येन्नतः जन्मादन्तः ॥ १४ ॥
 यावत्यो वा लोके दृश्यन्ते शान्तं जन्ति ।
 प्राणस्तासां कोश प्राणविया एव ता मयः ॥ १५ ॥

योऽल्पप्राणः सोसावकिञ्चनोऽत्यल्पशक्तित्वात् ।

यावानधिकः प्राणो यत्र स तावान् विशिष्यते लोके ॥ २ ॥

तस्मादिह बहिरङ्गो न भूतभारस्तथोन्नतेर्मूलम् ।

प्राणोऽयमन्तरङ्गो यथात्मनोऽभ्युन्नतिं कुरुते ॥ ३ ॥

प्राणसंपत्त्यपेक्षया विज्ञानसंपत्तेरात्यन्तिकोन्नतिहेतुत्वम् ।

प्राणाभिवृद्धिहेतुर्विज्ञानं साधितं धर्मैः ।

यद्विषये विज्ञानं पूर्णं तत्रैव सिद्धः स्यात् ॥ १ ॥

देशान्तरवदिदानीं भारतवर्षेऽपि जनतायाः ।

वेज्ञानिको न मूर्खां प्रदृश्यते हन्त दुर्योगात् ॥ २ ॥

अपस्वार्थिनां धनहेतुकसुखभोगप्रवणानां मोघजीवत्वम् ।

सुखभोगोन्नतिरित्याहुर्भोगलिप्सवो लोकाः ।

ते त्विह पशुसामान्याः पशवोऽपि हि भोगमीप्सन्ते ॥ १ ॥

एषा ह्यासुरबुद्धिर्यात्त्यन्तं स्वार्थपरता स्यात् ।

स सुखप्रवणः पशुवज्जीवत्युदरंभरिर्मोघम् ॥ २ ॥

मोघाशान्ते मोघकर्माण एते मोघ तेषां जीवितं जन्म मोघम् ।

येषां पाकः कर्म वा जीवितं वा स्वार्थान्वानां सर्वमेवात्महेतोः ॥ ३ ॥

किमनेन यत् स जीवति का हानिर्वा न जीवेच्च न ।

विज्ञानवीर्यविकलस्यजननिः श्रेयसी धनिनः ॥ ४ ॥

विज्ञानं वीर्यं वा जीवनसारस्ततो जगतः ।

क्रियतेऽभ्युन्नतिरेतेनेदं जगदुपकृतं भवति ॥ ५ ॥

विज्ञानं वीर्यं वा भवति मनुष्ये मनुष्यत्वम् ।

विज्ञानावीर्यरहितः सुखमुक् स्याद् राजकृपयैव ॥ ६ ॥

विज्ञानतेजसोत्रं ह्यक्षत्रवीर्ययोरुत्पत्तौ चातुर्वर्ण्यधर्मानुपालनं हेतुः ।

क्षत्रं वीर्यं ब्रह्म तु विज्ञानं या तदुन्नतिः क्रियते ।

सैवोन्नतिरिह वाच्या न धनोन्नतिरुन्नतिः कल्प्या ॥ १ ॥

आत्मनि मनसि प्राणो यावन्न वलं प्रवर्त्ततेऽतिशयात् ।
 विज्ञानं वीर्यं वा तावत्पुरुषेषु नोदेति ॥ २ ॥
 कचिदिह मनसि प्राणो तद्वलमुदितं स्वतो भवति ।
 अपि वा साधनतस्तत्पुरुषेऽवश्यं समुद्भवति ॥ ३ ॥
 चातुर्वर्ण्यं धर्मं व्यवस्थया यदि तु साधयति ।
 पुरुषे वलं तदेदं ब्रह्मक्षत्रं समुद्भवति ॥ ४ ॥

अथथाकृतस्य चातुर्वर्ण्यधर्मस्य वीर्योत्पत्तौ हेतुत्वाभावः ।

विज्ञानं तु ब्रह्मवीर्यं निरुक्तं यस्तूत्साह क्षात्रवीर्यं तदाहुः ।
 विड्वीर्यं तद् यानि शिल्पानि लोके पूर्वं पूर्वं श्रेष्ठमेपां त्रयाणाम् ॥ १ ॥
 बलमवले तु शरीरे व्यायामादिभिरुपायतस्तु यथा ।
 जनयति तद्वज्जनयति चातुर्वर्ण्यं व्यवस्थया वीर्यम् ॥ २ ॥
 नियतोपायविरुद्धो व्यायामो हानिकृद् वृथा भवति ।
 अथथाकृतं तथेदं चातुर्वर्ण्यं वृथा धर्मम् ॥ ३ ॥
 तदिदं चातुर्वर्ण्यं वैदिकज्ञानतः सम्यग् ।
 ज्ञातं सम्यक् चरितं ब्रह्मक्षत्रादिवीर्यजनकं स्यात् ॥ ४ ॥
 तस्मात् प्रथमं वैदिकविज्ञानं साधु जानीयात् ।
 तेनाधिदैविकार्था अध्यात्मं साधु नीताः स्युः ॥ ५ ॥
 चातुर्वर्ण्यस्येदं शैथिल्यं तु व्यवस्थायाः ।
 अवनतिहेतुर्भारतवर्षस्याद्यत्वं आभाति ॥ ६ ॥
 धर्मप्राणं भारतवर्षं शिल्पे श्लथं पुरैवाभूत् ।
 धर्मप्यधुना शिथिलं भूत्वोभयतोऽभवद् भ्रष्टम् ॥ ७ ॥

भारतस्य पुनरभ्युत्थाने चातुर्वर्ण्यधर्मानुपालनस्यैव हेतुत्वम् ।

चातुर्वर्ण्ये धर्मे यदि भूयोऽभ्युन्नतिं कुर्यात् ।
 नूनं प्राग्वदिदानीमप्यात्मोन्नतिमलं यायात् ॥ १ ॥
 चातुर्वर्ण्ये धर्मेऽभिज्ञानार्थं प्रवृत्त्यर्थम् ।
 वैदिकविज्ञानानां बाहुल्येन प्रचार उपपाद्यः ॥ २ ॥

चातुर्वर्ण्यधर्मप्रवृत्त्यर्थं वैदिकविज्ञानप्रचारवाहुल्यस्यावश्यकत्वम् ।

भारतधर्मरहस्यं वैदिकविज्ञानतः प्रतीयेत ।

ज्ञानादुदियाच्छ्रद्धा ततः प्रवृत्तिः स्वतः प्रभवेत् ॥ १ ॥

वैदिकधर्माचरणात् प्रवर्द्धते वीर्यमुन्नतिश्च ततः ।

आत्मोन्नत्या प्राणोन्नत्या वित्तानि सहजानि ॥ २ ॥

इत्युन्नत्यवनतिविचारः ।

इति भारतपरिचये धर्मप्रसङ्गः समाप्तः ॥ १० ॥



भारतवर्षीय-ब्रह्मवीर्याख्यानम् ।

भारतवर्षमहत्त्वहेतवश्चतुःषष्टिविधाः ।

- १—भारतवर्षगुरुत्वं पुरायुगे विश्वविख्यातम् ।
 आसीत् तत्र च हेतुविद्येवासीद् विशेषेण ॥ १ ॥
 प्राकृतविद्या, लौकिकविज्ञानं पार्थिवार्थविषयं यत् ।
 दिव्याविद्या, वैदिकज्ञानं सूर्य्यरसविषयम् ॥ २ ॥
 तत्र प्राकृतविद्या निगमागमभेदतो द्विविधा ।
 इत्थं त्रिविधा विद्या भारतवर्षस्य गौरवे हेतुः ॥ ३ ॥
 लौकिकसिद्धेरर्चिर्हिमार्गं क्लृप्तस्तु नीतिः स्यात् ।
 वैदिकसिद्धे राक्षसिमागो दृष्टस्तु धर्मः स्यात् ॥ ४ ॥

निगमविद्याभेदाः ।

- २—अ.सु च दिव्या विद्या भवति चतुःषष्टिभेदतो भिन्ना । (६४)
 नैगमविद्यास्तत्र च मुख्यतयाऽष्टादश प्रथिता ॥ ५ ॥
 अगमविद्या विश शतमित्यं सर्वविद्यानाम् । (१२०)
 द्विशती द्वयधिका संख्याऽध्वान्तरभेदास्तु ब्रह्म स्युः ॥ ६ ॥ (२०२)
 वेदा सद्बोधवेदा अष्टात्रय पट् तदङ्गानि ।
 इतिहास सपुराणो योगो न्यायश्च मौमांसा ॥ ७ ॥
 वेदा अथोपवेदा वेदाङ्गानि च तथोत्तराङ्गानि ।
 चत्वारश्चत्वारः पट्चत्वारि नैगमश्रेणी ॥ ८ ॥ (१८)
 ज्योति शास्त्रं त्रिविधं गणितं फलितं च संहिताशतकम् ।
 ताराज्ञान कुण्डलत्रमिति वृष्टिविज्ञानम् ॥ ९ ॥
 विद्यागणिते प्रबला ऋतुपर्णलौ यया तु वृक्षाणाम् ।
 पर्णानि दूरतः प्रागगणयतां नानृतं तत्र ॥ १० ॥

आगमविद्याभेदाः । १२० ।

- ३—आगमविद्या षोढा—सिद्धान्तः संहिताकल्पः ।

यामलहामरतन्त्राण्येषां भेदाश्च बहवः स्युः ॥ ११ ॥

पट्टकल्पाः सिद्धान्ताश्चतुर्दशाष्टादशेह सांहितिकाः ।
 तन्त्राणि चतुषष्टिर्यामलदशकं च डामरा अष्टौ ॥ १२ ॥
 मणिमन्त्रौषधिभेदात् त्रिविधा विद्याः सहस्रशस्तन्त्रे ।
 ताभिः किं नहि सिध्येत् कः स्पष्टेतेह तद्विद्भ्यः ॥ १३ ॥
 सनिवर्तनाभिचारा डामरविद्याथ यामलेत्याख्या ।
 नैमित्तिकी हि विद्या वृष्ट्यादिर्ज्ञायते यत्र ॥ १४ ॥
 कल्पा औपासनिकास्तेषु पढाम्नायभेदाः स्युः ।
 ऊर्ध्वः पूर्वो दक्षिणपश्चिमवामाधरा इति हि ॥ १५ ॥
 ऊर्ध्वान्तयो योगः पूर्वो वेदोदितो यज्ञः ।
 स्मार्तो दक्षिणमार्गः पश्चिमको यावनो रत्नेच्छः ॥ १६ ॥
 वामः पञ्चमकारोऽघोरो मार्गोऽधराम्नायः ।
 विज्ञानाद्भुतविद्या रसायनाद्या तु सिद्धान्तः ॥ १७ ॥
 क्रीडाकौतुकविद्या रत्नपरीक्षा च पंपरीक्षा च ।
 सामुद्रिकी च शकुनं पशुतन्त्रं मुकुटभूषादि ॥ १८ ॥
 विद्या दगार्गलाख्या नीतिः सर्वा पुराणमितिहासः ।
 एवविधाः प्रकीर्णा बहुविद्याः संहिता सूक्ताः ॥ १९ ॥

<p>निगमविद्याविभागाः ॥ १८ ॥</p> <p>४ वेदाः = ऋग्यजुःसामाथर्वाणः श्रुतयः ।</p> <p>४ उपवेदाः = आयुर्वेदधनुर्वेदगान्धर्ववेदार्थवेदाः ।</p> <p>६ वेदाङ्गानि = शिक्षाछन्दोव्याकरणनिरुक्तज्योतिःकल्पाः ।</p> <p>४ उत्तराङ्गानि = इतिहासपुराणन्यायमीमांसायोगाः ।</p>	<p>आगमविद्याविभागाः । १२० ।</p> <p>१८ संहिताः इतिहासादयो नानाप्रकीर्णविषयाः ।</p> <p>१४ सिद्धान्ताः रसायनादयो वैज्ञानिकविद्याः</p> <p>६ कल्पाः आम्रायाः ऊ. पू. द. प. उ. अ.</p> <p>१० यामलानि वृष्टिविज्ञानादिनैमित्तिकविज्ञानानि ।</p> <p>८ डामराः । अभिचाराः सनिवर्तनाः ।</p> <p>६४ तन्त्राणि-मणिमन्त्रौषधयः ।</p>
१८	१२०

४—यद्यप्यासां काश्चित्संप्रति देशान्तरेऽपि दृश्यन्ते ।

किन्त्वद्यापि च कृत्स्ना सर्वा साऽत्रैव देशेऽस्ति ॥ २० ॥

यज्ञा. सवेदविद्या आगमभेदा. पुराणयोगाश्च ।
 धर्मत्रयं निरुक्तं न्यायो मीमांसनं कलितम् ॥ २१ ॥
 अद्याप्येता विद्या दृश्यन्त इहैव भारते वर्षे ।
 देशान्तरस्थ जनता नासां जानाति माहात्म्यम् ॥ २२ ॥
 अद्य तु यद्यपि विद्या भारतवर्षे श्लथा सर्वा ।
 किन्त्वाप्याणां तत्र च परवशता विद्यते हेतुः ॥ २३ ॥

दिव्यविद्याप्रभेदाः (६४) ।

- ५—एताः प्राकृत विद्या अद्भुतविद्यास्तु सन्ति तद्भिन्ना ।
 आत्मबलादुत्पन्नास्ताभ्यो भारतशिरोऽत्युच्चम् ॥ २४ ॥
 दिव्यं ज्ञान योगजसिद्धयाऽऽत्मबल यदुद्भवति ॥
 तस्य कला आलम्बनसंदीपनभेदतश्चतस्रः स्युः ॥ २५ ॥
 १ २ ३
 मानसकलाऽधिदैवतकला तथेन्द्रियकलाऽध्यात्मम् ॥
 ४
 शिल्पकलेति विभेदादात्मबलं तच्चतुष्कलं भवति ॥ २६ ॥
 विज्ञानमेक आत्मा, तत्र चतुर्भ्यो निधीयते हि बलम् ॥
 १ २ ३ ४
 प्रज्ञामनसो, धीन्द्रियकर्मेन्द्रियभूत योगेभ्यः ॥ २७ ॥
 आलम्बनं मनो यदि मन एवोद्दीपनं यदा भवति ॥
 १
 १—आत्मबलं तन्मानसमेतद्भेदा अनेकधा दृष्टा ॥ २८ ॥
 शिरसो बलं यद्वर्जितमुद्दीपयतीह देवतैर्यदि तत् ॥ २९ ॥
 १
 २—आत्मबलं तद् दैविकमस्य च बहव स्मृता भेदा ॥ २९ ॥
 यज्ञजबलं यदात्मनि तद् यदि यज्ञान् प्रदीपितं भवति ॥ ३० ॥
 ३
 ३—आत्मबलं तद् याज्ञिकमेतद् भेदाश्च बहव स्युः ॥ ३० ॥
 शिल्पकलाविज्ञानं शिक्षाप्राप्तं यदुत्पत्तिशयात् ॥ ३० ॥
 ४—व्यवसायावसायैर्दीपयते भौतिकं तत् स्यात् ॥ ३१ ॥
 मानस—दैविक—याज्ञिक—भौतिक—भेदाच्चतुर्विधा विद्या ॥
 प्रत्येकं षोडशधा तत इह विद्याश्चतुःषष्टिः ॥ ३२ ॥
 भारतवर्षीयार्थेरेता विद्याश्चतुःषष्टिः ॥
 प्रथमं दृष्टान्तस्माज्जगतो गुरवस्त एवासन् ॥ ३३ ॥

आत्मबल-प्रदर्शनी-तालिका

१	मानसवलानि षोडश (१६)	२	धीन्द्रियवलानि षोडश (१६)
	मनःसंयमाद् योगबल सिद्धयोऽष्टौ		हृदयसंयमात् तपोबलसिद्धयोऽष्टौ
१	अणिमा ।	१	देवसाक्षात्कारच्छायापुरुषसिद्धिः ।
२	महिमा ।	२	बलगा (कृत्याभिधाना)
३	गरिमा ।	३	आत्मोत्क्रमसाक्षात्कारः ।
४	लघिमा ।	४	मृतपुरुषसाक्षात्कारः ।
५	प्राप्तिः ।	५	विश्वरूपदर्शनम् (विराटरूपदर्शनम्) ।
६	प्राकाम्यम् ।	६	मायाव्यामोहनम् ।
७	ईशित्वम् ।	७	उपश्रुतिविद्या ।
८	वशित्वम् ।	८	संस्कारोपधानी ।
१	इन्द्रियसंयमाद् दिव्यदृष्टिसिद्धयोऽष्टौ	२	प्राणसंयमाद्—देवबल सिद्धयोऽष्टौ
६	अतीतानागतज्ञानजन्मान्तरज्ञानम् ।	६	कायव्यूहः ।
१०	दूरपरोक्षज्ञानम् ।	१०	परकायप्रवेशः ।
११	सर्वभूतरुतज्ञानम् ।	११	प्राणहोरीणी ।
१२	मनोविज्ञानम् ।	१२	मृतसंजीवनी दैवी शक्तिः ।
१३	भूगर्भज्ञानम् ।	१३	स्थाणुसंजीवनी ।
१४	भुवनज्ञानम् ।	१४	छायाविग्रहणी ।
१५	ओषधिप्रभावज्ञानम् ।	१५	आकृतिपरिवर्तिनी ।
१६	ताराज्योतिःप्रभावज्ञानम् ।	१६	लिंगपरिवर्तिनी ।
३	याज्ञिकानि कर्मेन्द्रियवलानि षोडश (१६)	४	भूतवलानि षोडश (१६)
	नैगमीय मन्त्रबलसिद्धयोऽष्टौ		महोपधिवलसिद्धयोऽष्टौ
१	सर्पाकर्षिणी ।	१	मृतसंजीविनी गुटिका ।
२	अग्निजलस्तम्भिनी ।	२	संजीवनकरणी ।
३	अक्षयकरणी ।	३	विशाल्यकरणी ।
४	निग्रहानुग्रहणी ।	४	सावर्ण्यकरणी ।
५	पुत्रसंजननी पुत्रेष्टिः ।	५	संधानकरणी ।
६	प्रावृषेया जलवर्षिणी ।	६	अरिष्टभपज्या ।
७	आपोनपत्रीयम् ।	७	डिम्भप्रसविनी ।
८	मधुविद्या ।	८	बलातबले ।

३	आगमीय मन्त्रवलसिद्धयोऽष्टौ	४	यन्त्रवलसिद्धयोऽष्टौ
६	मारणम् ।	६	दिव्यविमानं त्रिचक्रं रथाकारम् ।
१०	मोहनम् ।	१०	पुष्पकविमानं हसरयो वद्विष्णु
११	उच्चाटनम् ।	११	सोमविमानम् नगराकारम् ।
१२	वशीकरणम् ।	१२	सूतविमानम् नकाकारम् ।
१३	विद्वेषणम् ।	१३	हय्यश्वविमानं हयशुग्माकारम् ।
१४	स्तम्भनम् ।	१४	प्लवविमानं पद्माकारम् ।
१५	आकर्षणम् ।	१५	अमृतगवी विश्वरूपा ।
१६	संरक्षणम् ।	१६	शिलासतरणी संतरणशिला ।

आसां विद्यानां प्रयोगोदाहरणानि कानिचित् प्रन्यन्ते ।

१—मनःसयमाद् योगवलसिद्धयोऽष्टौ यथा—

(१) अग्निमा अणुता ह्रस्वकायता । विशालकाय य सकल्पमात्रेण तत्क्षणदेववयवापचयेन मशकादिवत् जुद्रशरीरोपपादनम् । यथा हनुमान समुद्रलङ्घनकाले विशालकायेन प्रसन्त्या सुरसाया मुखे मशकवत् जुद्रो भूत्वा प्रविश्य निर्गतः ॥ १ ॥ रावणगृहे सीताशोधनाय प्रवृत्तो वृषदशकवत् जुद्रशरीरो भूत्वा प्रच्छन्नो गृहान् परिगो ययामान ॥ २ ॥ लङ्कायामशोकवाटिकायां सीतारावणसंवादं श्रोतुमत्तिजुद्रशरीरो भूत्वा वृत्तान्तं प्रच्छन्नस्तस्थौ ॥ ३ ॥

(२) महिमा महत्ता वायवैपुल्यम् । जुद्रशरीरस्य सतो महाविशालशरीरसंपादनम् । यथा हनुमान् सर्द्रलङ्घने सुरसामुखे प्रवेशाभावाय कायं महाविशाल चक्रे ॥ १ ॥ यथा वा बालुभन्वन्तरे मत्स्यस्य मनुस्तपतिरस्यतिजुद्रशरीरस्यापि क्षणेन महाविशालशरीरोपपत्तिः ॥ २ ॥

(३) गरिमा गुरुत्वं शरीरभावर्द्धनम् । यथा निषधपर्वते संचरतो भीमस्य दन्ताभिनां नाशयितु मध्ये मार्गं पतितेन हनुमता शरीरगुरुत्वं प्रवर्द्धितमिति न जराग्रं जुद्रकायोऽपि कपिरनेन भीमेनोत्थापयितुमशक्योभूत् ॥ १ ॥ जंगले लंगयां रावणसभायां पादमवरोप्य बलिष्ठैरपि सर्वे राजसैनुधाप्यपात्रे विनिक्षेपे ॥ २ ॥ बालकेन श्रीकृष्णेन म्हाकायमहाबलिदृचारूहपरिरुद्धं मन्त्रेण ॥ ३ ॥

(४) लघिमा गुरुतरशरीरस्यापीधीवातूलवत् शरीरलघूकरणाद् विमानादिसाधनं विनापि आकाशे संचारः । यथोक्तं योगसूत्रे—“कायाकाशयोः संवन्धसंयमाल्लघुतूलसमापत्ते-
श्चाकाशगमनम्” ॥ ३ । ४१ ॥ इति ॥ यथा हनुमान् शरीरलघूकरणादाकाशमार्गेण
पश्चादधारेण समुद्रमुल्लङ्घये ॥ १ ॥ नारदश्चानेकवारमाकाशमार्गेण सञ्चरन् द्वारकायां
श्रीकृष्णान्तिकमन्यत्रात्यत्र चाजगाम । विभीषणश्चाकाशमार्गेणागत्य रामसेनायामाजगाम ॥
“उत्तरं तीरमासाद्य खस्थ एव व्यतिष्ठत ।”

स उवाच महाप्राज्ञः खस्थ एव विभीषणः—”(यु० १७) १६५ ॥

“खात् पपातावनिं हृष्टो भक्तैरनुचरैः सह” (यु० १६) इति रामायणे तथोक्तेः ॥ १६६ ॥

(५) प्राप्तिः एकत्र स्थितवता बहुविप्रकृष्टार्थस्यानायासेनेन्द्रियैर्ग्रहणम् । यथा भूमिस्थ एवाङ्गु-
ल्यग्रेण चन्द्रमसं स्पृशति । पर्वताग्रस्थितादुद्यानात् फलमवचिनोति ।

(६) प्राकाम्यम् पृथिव्यादितत्तद्धर्मनिभिधातान् मनोवृत्त्यप्रतिबन्धः भूमावपि मज्जति यथोदके-
मज्जति । शिलामप्यनुविशति । नापः स्निग्धाः क्लेदयन्ति । नाग्निरुष्णो दहति । न
वायुः परिणामी वहति । अनावरणेऽप्याकाशेऽयमावृतकाय इव भूत्वा सिद्धानामप्य-
दृश्यो भवति । आनपस्योऽन्यातपा वरणाच्छायायामिव भवति । अप्रतिरुद्धगतित्वाद्
वन्द्यगृहतोऽपि वहिर्भावः । यथा द्वारकान्तिके रैवतकपर्वते जरासन्धसैनिकैः सर्वतः
प्रतिरोधितस्यापि श्रीकृष्णस्य द्वारकायां प्रवेशः । मथुरायां जरासन्धसैनिकैः कालयवन-
सैनिकैश्चावरौधितस्यापि तरयेकेनाहा द्वारकायां नवनिर्मितायामखिलवालवृद्धबीनिकाय-
संप्रापणं युद्धाय पुनरागमनं च ॥ २ ॥ अद्भुत कर्मणोऽप्यत्रैव संनिवेशः । यथोक्तं
भारते दमयन्तीं प्रति केशिन्या नलचरिते—

“ह्रस्वमासाद्य संचारं नासौ विनमते क्वचिन् ।

तं तु दृष्ट्वा यथा सङ्गमुत्सर्पति यथा सुखम् ॥ १ ॥

संकटेऽन्यस्य तु महान् विवरो जायतेऽधिकः ।

तस्य प्रचालनार्थं य कुम्भान्तत्रोपकल्पिताः ॥ २ ॥

ते तेनावेचिताः कुम्भाः पूर्णा एवाभवन्तनः ।

नृणमुष्टिं समादाय सविनुस्तं समादधत् ॥ ३ ॥

अथ प्रज्वलितस्तत्र सहस्रं हव्यवाहिनः ।

तद्भुततमं दृष्ट्वा विस्मिताहमिहागता ॥ ४ ॥

अन्यच्च तस्मिन् सुमहादश्चर्यं लक्षितं मया ।
यदग्निमपि संपृश्य नगसौ दहते शुभे ॥ ५ ॥
छन्देन चोदकं तस्य बहत्यावर्जितं द्रुतम् ।
अतीव चान्यत् सुमहादाश्चर्यं दृष्टवत्यहम् ॥ ६ ॥
यत् स पुष्पाण्युपादाय हस्ताभ्यां ममूदे शनैः ।
मृद्यमानानि पाणिभ्यां तेन पुष्पाणि नान्यथा ॥ ७ ॥
भूय एव सुगन्धीनि हृदितानि भवन्ति हि ।
एतान्यद्भुतलिङ्गानि दृष्ट्वाहं द्रुतमागता ॥ ८ ॥ “इति” (वन० ७५) ॥

(५) ईशित्वम् अलौकिककर्मकरणे सामर्थ्यलाभः । अणिमादीनां पण्णां योगविभूतीनां स्वस्मिन्निवापरस्मिन्नापि संपादनम् । यथा हनुमान् द्रोणाचलमुत्थापयित् श्रीकृष्णो वा गोवर्धनमुत्थापयितुं तस्य त याचलस्य विग्रहे लघिमानं जनयामास । तेनैव हनुमान् हस्तेन द्रोणाचलमुद्धृत्य लङ्कामानयत् ॥ १ ॥ विश्रामित्रांसराक्षुरजानं जीवन्तमेव द्विषि प्रतिष्ठापयामास ॥ २ ॥ वसिष्ठश्च नन्दिनोबुद्धः परः सहस्राणि सैनिकानि जनयामास ॥ ३ ॥ श्रोक्त्राणोद्धारकाश्च एव हरिनापुरे द्वीपयाश्चोरपरिवद्वयानास ॥ ४ ॥ अगस्त्येन समुद्रः परिरोधितः ॥ ५ ॥ ननु रत्यो जलप्रलयनोकां शुद्धेन दधार ॥ ६ ॥ अन्तर्द्धानमप्यत्रैव सनिविशते । तच्चोक्तं योगसूत्रे कायरूपसंयमात् तद् प्रायशक्तिगन्तम्भे चक्षुः प्रकाशासंप्रयोगेऽन्तर्द्धानम् ॥ ३ । २० ॥ इति ॥

(८) वशित्वम् प्रबलस्य वशीकारः । यथा श्रीकृष्णो नाग वशीचक्रे ॥ १ ॥
ऋषीणामाश्रमेषु सिंहादयो हिंस्रजीवा वशीकृता अत्रोद्दिष्टस्तथु ॥ २ ॥
भूतवशीकारोऽयत्रैव संनिविशते ।
इतोऽन्या अप्यनेकधा योगसिद्धयो योगपातञ्जले विभूतिपादे प्रदर्शिताः । इत्यष्टौ संयमसिद्धयः ॥ ८ ॥

२—इन्द्रियसंयमाद् दिव्यदृष्टिसिद्धयोऽष्टौ यथा—

(१) अतितानागतज्ञानम् = भूतभविष्यज्ञानम् । तत्र तीतज्ञानं तावत् चिरकालतः तत्रिपयाणां प्रत्यक्षविद्यमानवद्ग्रहणम् । यथा वसिष्ठो दिलीपराजाय दत्तं कामगवीगार्पं ददर्श । वाल्मीकिमुनिश्च परोक्षं रामचरितं सर्वं यथावद्दर्श ॥ २ ॥ पातञ्जले योगसूत्रे तु—
“धर्म्मलक्षणवस्थापरिणामत्रसंयमदत्ततानागतज्ञानम्” (३ । १६) इत्युक्तम् ॥

“संस्कारसाक्षात्करणात्पूर्वजातिज्ञानम् ॥ ३ । १८ ॥ इति योगसूत्रोक्तं जन्मान्तरज्ञान-
मप्यतीतज्ञानमेव । यथा जैगीपव्यस्य दशसु महासर्गेषु जन्मपरिणामक्रममनुपश्यतो
विवेकजं ज्ञानं प्रादुरभूत् । श्रीकृष्णश्चाह ॥

“यहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ॥
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप” ॥ इति ॥

यथा महाभारतयुद्धे प्रवृत्तानां कर्णदुर्योधनादीनां जन्मान्तरस्थानुरयोनिष्वं वेदव्यासो
दृष्ट्वा आदिपर्वणि वणयामास । शुकदेवस्य च पूर्वजन्मनि शुकपक्षित्वं शिवगौरीसंवादश्रोतृत्वं
चाख्यातमार्थैः । अथ भविष्यज्ञानम् अनागतज्ञानम् । तद् यथा संभलप्रामे कल्की भविष्यतीति
भारतीयाः पश्यन्ति ॥ १ ॥ पुराणे भविष्यतो राजवंशाः प्रदर्शिता ॥ २ ॥ शूद्राश्च ब्राह्मणाचारा
ब्राह्मणः शूद्रवृत्तय इत्येव तदयः कलियमो भविष्यन्तः पुराणे प्रदर्शिताः ॥ ३ ॥ सूर्यचन्द्रोपरागा
भविष्यन्तः कथ्यन्ते ॥ ४ ॥ कालज्ञानमप्यत्रैव सर्गनिविशते । अनया विद्ययात्मनः प्रत्येकं मृत्यु-
कालो विज्ञातो भवति । कालज्ञानोपायभेदे छायापुरुषसिद्धिरभ्यति ॥ ५ ॥

(२) दूरातिक्रान्तदशनश्रवणम् । तत्रादौ दूरपरोक्षदशनं यथा । संजयो हस्तिनापुरे स्थितो
वेदव्यसदृष्टादिव्यहृष्टप्रभावेण दूरदेशे कुरुक्षेत्रे जायमानं युद्धं यथावत् पश्यन् धृतरा-
ष्ट्रं च कथयतिस्म ॥ १ ॥ श्रीकृष्णो द्वारकास्थितो हस्तिनापुराध्याया द्रौपद्याश्चीरहरणं
दुःशासनकृतं पश्यत् तदुक्तं योगसूत्रे—“प्रवृत्त्या लोकन्यासात् सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्ट-
ज्ञानम्” ॥ ३ । २४ ॥ इति ॥ अथ विदूरश्रुतिः । संजयो वेदव्यासप्रततिविद्याप्रभावेण दूरे
कुरुक्षेत्रे भवतः कृष्णार्जुनगीतासंवादं स्वदेशस्थो यथायथं शुश्राव ॥ १ ॥ “श्रोत्राकाशयोः
संवन्धसंयमः द्विव्यं श्रोत्रम्” ॥ ३ । ४० ॥ इति योगसूत्रम् ॥

(३) सर्वभूतरुतज्ञानम् ॥ तदुक्तं योगसूत्रे—“शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासात् संकरस्तत्
प्रविभागसंयमात् सर्वभूतरुतज्ञानम् ॥ ३ । १७ ॥ इति ॥
युधिष्ठिरविदुरादयः पक्षिरुतं जानन्ति स्म ॥ ब्रह्मदत्तश्च काम्पिल्यो राजा पिपीलिकारुतं
जानाति स्म ॥

(४) मनोविज्ञानम् । मनसः संकल्पनकाले शारीरः प्राणवायुः क्षोभितो विकृतिमापद्यते ।
विवर्णणेन च तेन रोक्कूपेभ्यो दहिर्भवता विक्षिप्तः परिच्छिद्येऽयं शरीरमभितो बाह्य-
वायुः पुरुषमन्सोऽभिज्ञानाय प्रभवति । यथोक्तं वेदमन्त्रे—

“मनसा यंकल्पयति, तद्वातमभिगच्छति ॥

वातो देवेभ्य आचष्टे यथा पुरुष ते मनः”—इति ॥

ब्राह्मणेऽपि श्रूयते—

“मनो देवा मनुष्यस्य जानन्तीति ।

मनसा सकल्पयति, तत् प्राणमपि पचते ।

प्राणो वातम्, वातो देवेभ्य आचष्टे यथा पुष्पाय मनः”—इति ।

(शत० ब्रा० ३ । ३ । ३ ।) ॥ “प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानमिति” (३ १६) योगसूत्रम् ।

(५) भूगर्भज्ञानम् । महौषधसंस्कृतचक्षुषा अधोमुखजातेन भूतलाधस्तादशहस्तपर्यन्तं स्थितानां भावानां साक्षात्कारः शक्यते कर्तुम् । तत्र दिव्याञ्जनप्राधान्येऽपि तेन दैवीदृष्टिरेवानु-
गृहीता भवतीत्यत्र समादेशः ।

(६) भुवनज्ञानम्—अति हि सप्तलोकसंग्रहश्लोकः । “ब्रह्मन्निभूमिको लोकः प्रजापत्यस्ततो महान् । माहेन्द्रश्च स्वर्त्युक्तो दिवि तात भुवि प्रजाः”—इति । आचोचे. प्रभृति मेरुपट्टं यावद् भूजोकः ॥ १ ॥ मेरुपट्टादारभ्य द्वाद् ग्रहनक्षत्रतारा विचित्रोऽन्तरिक्ष-
लोकः ॥ २ ॥ तत्परः पञ्चविधो माहेन्द्रः स्वर्गलोकः ॥ ३ ॥ प्रजापत्यो महर्लोकः ॥ ४ ॥ जनलोकस्तपोलोक सत्यलोक इति त्रये ब्रह्मलोकः ॥ ७ ॥ एषां साक्षादिव दर्शनं भुवनज्ञानम् । भुवनज्ञानं सूर्ये सयमादात योगसूत्रम् ।

(७) ओषधिप्रभावज्ञानम्—यथा सोमहरीतकीविनीतकजङ्घिडापाम, गां दीनामो रधीनामनुलिता प्रभावा आथर्वणसंहितायां मन्त्रैराम्नाताः तेषां प्रभावाणां यथावत्परिज्ञानमार्यं भवति नत्वनृषिश्चक्षुष्योग्यं प्रभवं ज्ञातुं शक्नोति । उक्तं चाभियुक्तैः—

“आविर्भूतत्रकाशानामनुप लुतचेतसाम् ।

अतीतानागतज्ञानं प्रत्यक्षात् विशिष्यते ॥ १ ॥

अतीन्द्रियानसंवेद्यान् पश्यन्त्यार्पेण चक्षुरा ।

ये भावान् वचनं तेषां नानुमानेन वाध्यते” ॥ २ ॥ (वाक्यपट्टीयम् क्र० ६ । ३ । १०६)

(८) तारा ज्योतिःप्रभावज्ञानम् । यावत्त्य इग रोचन्ते रोचना दिवि तासामेकैकस्याज्योतिष प्रभावग्रहणसूचीणामेव शक्यम् । असंख्यातास्तपि तासु—एकता द्विता त्रिता—इत्येवं त्रैधा विभक्तासु त्रितानां प्रायेणाख्यानां प्रभावा वेदे श्रूयन्ते । यथा—

“जज्ञानः सप्तनारुभिर्मैरामारासत श्रिये ।

अतं ध्रुवो रयीणां चिकेतदा”

इत्यादिभिर्मन्त्रैर्ध्रुवादितारकाणां प्रभावा आम्नाताः । “चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम्” । ३ । २६
इति योगसूत्रम् ।

३—हृदयमयमात् तपोवलसिद्धयोऽष्टौः ॥ ८ ॥

(१) देवप्रत्यक्षीकरणम् = कतिचिद् भावमालम्ब्य तत्र धारणाध्यनसमाधिसंयमे हृदयस्थम-
नस एवोपादानात् तत्तद्देवतारूपाविर्भावः एतच्च पुरायुगे तपश्चरतामृषीणां मनुष्याणां
वा भूयः श्रुतमितिहासपुराणेषु । भरद्वाजपुत्रो यवक्रीतो ब्राह्मणानामनधीता एव वेदाः
प्रतिभान्तिवति कामनया घोरं तपस्तप्त्वेद्रं प्रत्यक्षीचकार । तमिन्द्र उवाच । अमार्ग एष
विप्रर्षे येन त्वं यातुमिच्छसि । किं विधातेन ते विप्र गच्छाधीहि गुरोर्मुखादिति
(भा० वन० १३५) । छायापुरुषसिद्धिरप्यत्रैव संनिविशते ।

(२) बलगा कृत्या अभिचारविद्या । परविद्रोहाय पुराक्रूराः कृत्यापुरुषाः स्त्रियो वा तपः
प्रभावादुत्पाद्यन्तेस्म ॥ राक्षसपुरुषः स्त्रियो वा राक्षस्यस्तत्काल जनिता निर्दिष्टपुरुषस्य
प्राणानपहरन्ति विभीषयन्ति वा ॥ यथा भरद्वाजरैभ्यो सखायावास्ताम् । भरद्वाजपुत्रो
यवक्रीरैभ्याश्रमं गत्वा रैभ्यपुत्रस्यावसोः पत्नीं बलादाक्रम्य मैथुनायोपचक्रमे ।
रुदन्त्यास्तस्या वृत्तमभिज्ञाय स रैभ्यो मन्युनाविष्टो जटामेकामवलुञ्चयानौ जुहाव ।
ततो जटत्कारानारीः समुत्तस्थौ । पुनरन्यां जटामालुञ्चयानौ जुहाव । ततो घोररक्ष-
भीमदर्शनं रक्षोऽभवत् । यवक्रीवैध्यतामिति तौ रैभ्योऽब्रवीत् । भुञ्जानस्य यवक्रीतस्यादौ
कृत्या कमण्डलुं जहार । ततः शूलहस्तेन रक्षसा काल्यमानोऽयमुच्छिष्टमुखोऽन्यत्र
शरणमपश्यन्नग्निहोत्रशालां गन्तुमिच्छत् । तत्रान्वेन गृहरक्षिणा निगृहीतः पपात । शूलेन
रक्षसाऽऽहतः प्राणोस्तत्याज । (महाभा० वन० १३६) ।

(३) आत्मप्रयाणदर्शनम् = मुमूर्शोः शिरः प्रदेशादूर्ध्वमाकाशे सद्य उत्क्रममाणमात्मानं प्रत्य-
क्षमनुपश्यति । यथा वेदव्यासो द्रोणस्यात्मानमूर्ध्वं गच्छन्तं ददर्श ।

(४) मृतपुरुषदर्शनम् । मृतानां पुरुषाणां प्रतिकृतयश्चायापुरुषाः प्रत्यक्षं दृश्यन्ते । यथा वेद-
व्यासो भारतयुद्धे मृतानां पुरुषाणां छायापुरुषान् परिदर्शयामास ॥

‘एष राजा दशरथो विमानस्थः पिता तव ॥

लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा त्वमेनमभिवादय ॥ १ ॥

लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा ददर्श पितरं प्रभुः ॥

विमानशिखरस्थस्य प्रणाममकरोत् पितुः” ॥ २ ॥

इति रामायणे युद्धकाण्डे १२१ रावणवधान्ते रामेणदशरथो दृष्टोऽनुभाषितश्च ॥

एतस्तिन्नेव काले तु जरत्कारुमहातपाः ।

वायुभक्तो निराहारः शुष्यन्नहरहर्मुनि ॥ १ ॥

स ददर्श पितृन् गते लम्बमानानधोमुखान् ॥

निराहारान् कृशान् दीनान् गते स्वत्राणमिच्छतः ॥ २ ॥

इति भारतादि पर्वणि (४५) पितृदर्शनमुक्त्वा ।

(५) विराट् पुरुषदर्शनम् = यथा श्रीकृष्णेन भारतमहायुद्धोपक्रमेऽर्जुनाय भविष्यत्क्षणसंभावितस्य विश्वरूपस्य प्रागेव साक्षात्कारः कारितः । यथा वा श्रीकृष्णेन दुर्योधनसभायां धृतराष्ट्राय दिव्यचक्षुः प्रदाय सर्वेभ्यः सभासद्वया विश्वरूपं प्रदर्शितम् । यथा वा यशोदायै स्वमुखान्तरतो नानावैचित्र्यं परिदर्शितम् ।

(६) माया व्यामोहनी = यथा नारदाभिमानखण्डनार्थं कनकलक्ष्मणप्रदेशे मायापुरीनिर्माणं तत्र सुन्दरीस्वयंवरविधानं च । यमुनायां स्नानार्थमभिप्लुतस्य नारदस्याभिप्लवनोत्प्लवनयोरन्तरतः क्षणमात्रेऽवकाशे चत्वारिंशद्वर्षाणि माययातिवाहितानि । तत्र च नारदस्य स्त्रीभिर्वा गमितस्य राज्ञा विवाहं पुत्रपौत्रादिमुपयः तेषां निःशेषाणां मृत्युः । ततो दुःखकार्त्तरया राजमहिष्यास्त याशुद्विस्तनार्थं यमुनायामागतयाः स्नात्वा जलादुत्प्लवन्त्या पुनर्नारदवस्त्रपेणाविर्भावं पुराणेतिहासेषु भ्रम्यन्ते । मात्तिकाधत नगराधीनं शाल्वकृष्णेन सह युध्यन् द्वारकाधीराद्वकपरिचारकत्वेण न्यमायापुरुषेण वसुदेवमृत्युसंघातं कृष्णाय श्रावयामास । क्षणेन पुनः शाल्वविमानाद्वसुदेवशिरश्छिद्यमानमयन्तात्कृष्णान्तिके निपातयामास । तद् दृष्ट्वा कृष्णः पूर्वं चिन्ताग्रस्तोऽभून् । पश्चात्पुनः शाल्वकृतां मायां विज्ञाय निविदादः शाल्वं निपातयामास ।

“तमेवमुक्त्वा रुदतीं सीतां मायामयीं च ताम् ।

शितधारेण खड्गेन निजवानेन्द्रजिन् स्वयम्” ॥ १ ॥ (इति यु० ८१)

रामायणे मेघनादेन मायासीतावध उक्तः ॥

(७) उपश्रुतिविद्या खलु रात्रिनाम्नी सा विद्या यथा गुप्तं विलीनमपह्नुनमज्ञानप्रदेशान्धमर्थप्राप्तिं वा परिमार्गमाणास्तमनायासेनोपलभन्ते । आकाशवाय्वा वा मिश्रवाय्वा वा कस्मिन्तिरव्यावृत्तमनुपदवाचा प्रकारान्तरेण वा तत्त्वानुसुपध्नुं भवति यत्रापि परिमार्जि-

तव्योऽर्थः स्थितो भवति । यथा देवराजे ब्रह्महत्यादोषेण कचित् प्रच्छन्ने नहुषे चैन्द्रं पदमध्यारूढे शची तयोपश्रुतिविद्यया तं देवराजं कचित्सरसि प्रच्छन्नं व्यजानात् । तदुक्तं भारते—

“पुण्यां चेमामहं दिव्यां प्रवृत्तामुत्तरायणे ॥

देवीं रात्रिं नमस्यामि सिध्यतां मे मनोरथः ॥ १ ॥

यत्रास्ते देवराजोऽसौ तं देशं दर्शयत्व मे ।

इत्याहोपश्रुतिं देवीं सत्यं सत्येन दृश्यताम् ॥ २ ॥

प्रयतां च निशां देवीमुपातिष्ठत तत्र सा ।

पतिव्रतात्वात् सत्येन सोपश्रुतिमथाकरोत् ॥ ३ ॥

सरसस्तस्य मध्ये तु पद्मिनी महती शुभा ।

विसतन्तुप्रविष्टं च तत्रापश्यच्छतक्रतुम् ॥ ४ ॥” (भार० उ० १३)

(८) संस्कारोपधानी—सा विद्यां यया योगिराजः कस्य चिच्छिरोर्मूर्ध्नि हस्तं निधाय तस्मिन् सर्वविद्याप्रबोधान् संस्कारविशेषान् मन्त्रप्रभावेणाधत्ते । तदुक्तं मन्त्रमहोदधौ पञ्चमतरङ्गे—

(१) विद्वत्कुलसमुद्भूतमष्टवर्षं शिशुद्वयम् ॥ उपवेश्य तयोर्भूर्ध्नि करौ दत्वा जपेन्मनुम् ॥ ८६ ॥ वेदान्तन्यायसंयुक्त्या विचिदेते बभावपि । यः कोतुकी स आश्चर्यं विद्यायाः पश्यतु ध्रुवम् ॥ ८७ ॥

(२) दुर्वोत्थया तु लेखन्या रोचनारसयुक्ता । बालस्याच्छिन्ननालस्य जिह्वायां विलिखेन्मनुम् ॥ ८३ ॥ संप्राप्ते चाष्टमे वर्षे सर्वशास्त्रज्ञतामियात् । मन्त्रेणायुतसंज्ञतां वचां बालस्य कण्ठतः ॥ ८४ ॥ बध्नीयात् पूवत्प्रोक्तं वर्जित्वा विद्वान्तः । द्वादशे वत्सरे प्राप्ते भक्षिता सा कविस्वकृत् ॥ ८५ ॥ इति ॥

४—प्राणसंयमाद्दैववसिद्धयोऽष्टौ यथा—

(१) कायबूहः युगपदेनैकशरीरधारणमनेकदेशे भिन्नशरीरेणावस्थानं च । यथा श्रीकृष्णो रासलीलायां प्रतिगोपीशरीरसहकारेणान्यान्यशरीरोपपन्नस्तस्यौ । यशोदासदेशं तिष्ठत् गोपीनां गृहेष्वपि तत्कालं तस्यौ ॥ १ ॥

(२) परकायप्रवेशः—स्वशरीरं पृथक् संस्थाप्य शुद्धेनात्मना शरीरान्तरे प्रवेशः तदुक्तं योगसूत्रे बन्धकारणशैथिल्यात् प्रचार सवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः । ३ ॥ ३७ ॥ इति ॥

यथा शंकराचार्या राज्ञः शरीरे विवेश । यथा वा किन्दमो नाम मुनिर्मृगशरीरे प्रविश्य
मृगया सह रेमे । (भा० आदि० १२३)

(३) प्राणसंहारिणी=यथा वेनस्य राज्ञः उनमार्गं गच्छतः प्राणान् कुशाघातेन महर्ष-
योऽपजह्नु ।

(४) मृतसंजीवनी दैवीशक्ति=उत्क्रान्तप्राणे शरीरे पुनः प्राणसंधनम् । यथातिवेगेन
धावमानानां रथाश्वानां प्रत्याघातान्मृतं ब्राह्मणशिशुं जानः पुरोहितः पुनरुज्जीवयामा-
सेति बृहद्देवतायामुक्तम् ॥ १ ॥ सांदीपिनिना गुरुदक्षिणात्वेन मृतं मे पुत्रमानयेत्युक्त-
कृष्णस्तत्पुत्रं स्वयमुज्जीव्य गुरवेऽपयामास ॥ २ ॥ अथ रैभ्यभरद्वाजी सखायावार्ताम् ।
रैभ्यः कृत्यामुत्पाद्य भरद्वाजसुतं यवक्रीतं मारयामास । पुत्रशोकपरिततो भरद्वाजः
स्वयं प्राणांस्तत्याज । अथ रैभ्यपुत्रो ज्वेष्ठः परावसुमृगभ्रमात् स्वपितरं धातयामास ।
रैभ्यस्य कनिष्ठपुत्रोऽर्वावसुः जयेष्टभ्रातुर्ब्रह्मवध्याप्रायश्चित्तमचरत् । सोऽर्वावसुरुग्रं
तपः कृत्वा सूर्यस्य रहस्यवेदं चक्रे । तेन कर्मण्यर्वावसोरन्यादयो देवाः प्रीता अभवन् ।
अर्वावसुप्रार्थनया प्रसन्ना देवारैभ्यं भरद्वाजं यवक्रीतं चेत्येतान्तमृतान् पुनरुज्जीवया-
मासु । सूर्यवेदस्य च प्रतिष्ठां चक्रुः ।

“अर्वावसुप्रार्थनया देवाः सेन्द्रपुरोगमा ॥

संजीवयित्वा तान् सर्वान् पुनर्जग्मुर्निविष्टपम्” ॥ १ ॥

(इति भारते यन १३८ तथोक्तः)

अथ हैहयकुमारोऽरिष्टनेमितार्क्ष्यं य पुत्रं मृगभ्रमाज्जघान । स ब्रह्मवध्या-
निर्विण्णस्तन्निष्कृत्यै तार्क्ष्याश्रमं गत्वा निष्कृतिमर्थयामास । तार्क्ष्यस्तूचे ।
यस्त्वया ब्राह्मणो हतः सोऽयं ममैव पुत्र आसीत् । स मयोज्जीवितोऽयं तद्यत्रे तिष्ठति ।
कथमयं जीवितोऽभूदिति विस्मयेन पृष्ठस्तार्क्ष्य उवाच—

“सत्यमेवाभिजानीमो नानृते कुर्महे मन ॥

स्वधर्ममनुतिष्ठामस्तस्मान्मृत्युभयं न नः ॥ १ ॥

यद् ब्राह्मणानां कुशलं तद्देवां कथयामहे ॥

नैषां दुश्चरितं ब्रूमातस्मान्मृत्युभयं न नः ॥ २ ॥

अतिथीनञ्जपानेन शृत्यानयशनेन च ॥

संभोज्य शेषमश्नोमस्तामान्मृत्युभयं न नः ॥ ३ ॥

शान्ता दान्ता क्षन्ताशीलास्तीर्थदानपरायणाः ।

पुण्यदेशनिवासोऽश्च तस्मान्मृत्युभयं न नः ॥ ४ ॥

(इति भारते वन १८४)

अकालमृत्युप्रतिघातः प्रवृत्तः ॥ स्वायु प्रदानमप्यैव संनिविशते । यथा सर्पदंशनेन मृतायाः प्रमद्वराया रुरुणा स्वार्थायु प्रदानेन पुनरुज्जीवनम् । यथा वा रामचन्द्राय दशरथेन स्वजीवनशेषायुःप्रदानम् ॥ विषहरविद्याप्यत्रैव संनिविशते । यथा ब्रह्मणा कश्यपाय विषहरविद्यादानम् । यथा वा हरिद्वारे नागेन भीमाय विषहरविद्यादानम् ॥

(५) स्थाणूज्जीवनी = शुष्कतरोः पुनराद्रीभावात् पणौद्गमनम् । गोयत्रीमन्त्रप्रभावेणाभि-
रुन्निताभिरद्भिः परिषिक्तः शुष्कतरुस्तं रसमात्मानं गृहीत्वा पुनरुज्जीवितो भवति ।
अतः तत्र सद्यः पणान्याविर्भवन्ति । यथोक्तं यजुर्ब्राह्मणे—“तं हैतमुदालकं आरुणि-
र्वजसनेयाय याज्वल्केयायास्तेवासिने उत्केवाच—य एतं शुष्कं स्थाणौ निषिञ्चेत्
जायेरन् शाखाः प्ररोहेयुः पलाशानीति ।”

(६) छायाग्रहणी = प्राणिनः शरीरच्छायां तच्छरीरगन्धपर्व्याप्तामोक्रम्य तद्द्वारां तत्प्राणि-
शरीरानुकर्षणम् । यथाऽऽकाशमार्गेण समुद्रमुल्लङ्घयतो हनुमन्श्छायां प्रसित्वा सिंहिक्या
समुद्रस्थया हनुमानाकाशस्थोऽधस्तान्निपातितः ।

(७) अकृतिपरिवर्तिनी = शरीराकृतेरन्यजातीयाया अन्यजातीयतासम्पादनम् । यथा मृग्या
मैथुनं चरतो मृगरूपस्य किन्दमस्य मुनेः पाण्डुना मृगयां चरता हननम् । यथा वा
मनुयाकारो विष्णुर्वराहो मोहिनी वा समपद्यत । धर्मः शुनो रूपं दध्रे । शिविपरीक्षा-
यामग्निः कपोतोऽभूदिन्द्रः श्येनः ।

“इन्द्रः श्येनः कपोतोऽग्निर्भूत्वा यज्ञेऽभिजग्मतुः ।

ऊरुं राज्ञः समासाद्य कपोतः श्येनजाङ्गयात् ॥ १ ॥

शरणार्थी तदा राजन्निलिल्ये भयपीडितः ।”

(वन १३०) इति भारतीकः ।

स तदां राक्षसेन्द्रेण संदिष्टो रंजनीचरः ।

शुको विद्वज्जमो भूत्वा तूर्णमोक्षित्य चाम्बरम् ॥ १ ॥

स, गत्वा दूरमध्वानमुपर्युधुरं सागरम् ।

संस्थितो ह्यम्बरे वाक्यं सुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥

(यु० २०) इति रामायणे राक्षसः शुक्लपधारणमुक्तम् ।

रूपान्तरीकरणमिदं पुरायणे देवकुले भूयसाभ्यतमासीत् अद्भुत-रूपकरणमप्यत्रैव संनिविशते । यथा नृसिंहो यथा वा शरभः ।

(८) लिङ्गपरिवर्तिनी = लिङ्गयोनिव्यत्यासः । अनया विद्यायां पुंसां स्त्रीत्वं स्त्रीणाम् पुंत्वं च शक्यते कर्तुम् । यथा शिवः कदाचिदुभावने प्रविशतः सुश्रमस्य राज्ञः स्त्रीवन्नितायां पुंस्त्वं चक्रे । इति भारताख्ये पुराणेषु च सर्वेऽत्रिलोप-ख्येने सुप्रसिद्धम् ।

नैगमीयमन्त्रवलासिद्धयोऽष्टौ ।

(१) सर्पावर्पिणी = सर्पावर्पिण्या विद्याया मन्त्रवलेन सर्पाः दूरस्था अपि अभीष्टदेशे आहू-
व्यन्ते निगृह्यन्ते निर्विभीक्रियन्ते यथा जनमेजयकृते सर्पसत्रे यजकाः समिद्धेऽग्नौ मन्त्रैः
सर्पानाजुहुवुः ।

“क्रोशयोजनमत्रा हि गोकर्णस्य प्रमाणतः ।

पतन्त्यजलं वेगेन प्रक्षीते हव्यवाहने ॥ १ ॥

उच्चवाचाश्च बहवो नानावर्णा विपोल्यणः ।

घोराश्च परिघप्रख्या दन्द्शूका तहानलाः ॥ २ ॥”

(इति भारते ५२)

(२) अग्नितन्मनीविद्या सा यया मन्त्रेणाग्निं शीतलीक्रियते । तेनाग्नौ प्रविष्टोऽपि पुरुषो न दहते । सोऽग्नितन्मन्त्रेणा सम्पद्यते । सत्येन मन्त्रेण मणिना च । सत्येन यया धर्माविकारिभिरपरा गी पुरुषो द्विष्यते तेन हृदयनिर्द्वेषेनाग्निना परोदयते । यया वा सीता लङ्कायां सत्येनाग्नौ प्रवेशिता परीक्षिताऽऽसीत् ॥ १ ॥

मन्त्रेण यथा नलो महाराजोऽग्निं स्तम्भयति स्म ।

तदुक्तं भारते —

“अन्यच्च तस्मिन् सुमहदस्वर्ग्यं लक्षितं मया ।

यद्वाग्निमपि संस्पृश्य नैवासौ दहते शुभे ॥” (वन० ७५)

अथ ग्रामदाहे वृणुहान् प्रदहन्नग्निर्मन्त्रेण स्तम्भितो गृहान्तरं न दाहयति इति मन्त्र-

शास्त्रे निरूप्यते ॥ २ ॥ अथ मणिश्चन्द्रकान्तमणिः । स द्विविधः औषधिः, प्रस्तरश्च ।
तत्रैते श्लोकाद्रष्टव्याः—

अमरलता वितता स्याद् यस्य तरोरुपरि तस्य चाधस्तात् । भूमावन्तर्निहितं तस्या
मूलं तु कन्दमन्वेष्यम् ॥ १ ॥ वृक्षाधस्तात् परिस्तृणान्युपस्तीर्य दाहयेच्छिखिना । यत्र
तु न दह्यते तत् तत्रैवाधः स्थितं कन्दम् ॥ २ ॥ अति शीतं तत्कन्दं स उच्यते चन्द्र-
कान्तमणिः । तत्सान्निध्यादग्निः शीतलतामेति नैव दाहयति ॥ ३ ॥ तद्रसलिप्ते हस्ते
धारयितुं शक्यते वह्निः । तद्रसलिप्तशरीरः शक्नोत्यग्नौ प्रवेष्टुमक्लेशात् ॥ ४ ॥

एवं प्र.तरोऽप्ययश्चन्द्रकान्तमणिः । सोऽतिशीतलः प्र.तरः संनिधानमात्रेणाग्निं
शीतलयति ॥ तत्संनिहतेऽग्निः स्पृष्टोऽपि न दाहयति । चन्द्रकान्तसंनिहितोऽप्यग्निः
सूर्यकान्तमणिसंनिधानात्पुनर्दाहयति । चन्द्रकान्तोपजनिताशीतलतायाः सूर्यकान्तेन
निरस्तत्वात् ॥

३— अक्षय्यकरणी=सा विद्या यया गृह्भाण्डमन्त्रं परसहस्रैर्भुज्यमानमपि न क्षीयते ।
पूर्वं तावत् सूर्यमारधयन्नेन युधिष्ठिरेण सूर्यदेवं पिठमुपलब्धं तत्प्रभावाद्भ्रम-
क्षय्यमासीदित्युक्तं भारते—

गृहीष्व पिठं ताम्रं मया दत्तं नराधिप ।

यावद् वत्स्यति पाण्डाली पात्रेणानेन सुव्रत ॥ १ ॥

फलमूलामिषं शाकं संस्कृतं यन्महानसे ।

चतुर्विधं तदन्नाद्यमक्षय्यं ते भविष्यति ॥ २ ॥

संस्कृतं प्रसन्नं याति स्वल्पमन्नं चतुर्विधम् ।

अक्षय्यं वद्धंते चान्नं तेन भोजयते द्विजान् ॥ ३ ॥

भुक्त्वत्सु च विप्रेषु भोजयित्वःऽनुजानपि ।

शेषं विघससंज्ञं तु पद्माद् भुङ्क्ते युधिष्ठिरः ॥ ४ ॥

युधिष्ठिरं भोजयित्वा शेषमश्नानि पर्वती ।

द्रौपद्यां भुज्यमानायां तदन्नं क्षयनेति च ॥ ५ ॥

अथ यत्किञ्चिन्नात्रेनैकस्मिन्नव्ययात्मनि तपिते ततोऽन्येषामात्मना तर्पणमप्यत्रैवं
संनिविष्टे । (वने ० ३)

ततः कदाचिद्दुर्वासाः सुखासीनास्तु पाण्डवान् ।
 भुक्त्वा चावस्थितां कृष्णं ज्ञात्वा तस्मिन् वने मुनिः ॥ १ ॥
 अभ्यागच्छत् परिवृतः शिष्यैरयुतसंमितैः ।
 दृष्ट्वायान्तं तमतिथिं स च राजा युधिष्ठिरः ॥ २ ॥
 विधिवत् पूजयित्वा तमातिथ्येन न्यमन्त्रयत् ।
 जगाम च मुनिः सोऽपि स्नातुं शिष्यैः सहानघः ॥ ३ ॥
 एतस्मिन्नन्तरे राजन् द्रौपदी योपितां वरा ।
 चिन्तामवाप परमामन्नहेतोः पतिव्रता ॥ ४ ॥
 सा चिन्तयन्ती च तदा नान्नहेतुमविन्दत ।
 मनसा चिन्तयामास कृष्णं कसनिपूदनम् ॥ ५ ॥
 द्रौपद्याः संकटं ज्ञात्वा द्वारकास्थः स माधवः ।
 पार्श्वस्थां शयने त्यक्त्वा रुक्मिणीं केशवः प्रभुः ॥ ६ ॥
 तत्राजगाम त्वरितो ह्यचिन्त्यगतिरीश्वरः ।
 ततस्तामब्रवीत् कृष्णः जुधितोऽस्मि भृशतुरः ॥ ७ ॥
 शीघ्रं भोजय मां कृष्णे पश्चात् सर्वं करिष्यसि ।
 निशम्य तद्वचः कृष्णा लज्जिता वाक्यमब्रवीत् ॥ ८ ॥
 स्थाल्यां भास्करदत्तायामन्नं मद्भोजनावधि ।
 भुक्तवत्यस्यहं देव तस्मादन्नं न विद्यते ॥ ९ ॥
 कृष्णे न नर्मकालोऽयं नुच्छ्रमेणातुरे मयि ।
 शीघ्रं गच्छ मम स्थालीमानयित्वा प्रदर्शय ॥ १० ॥
 स्थाल्याः कण्ठेऽथ संलग्नं शाकान्न वीक्ष्य केशवः ।
 उपयुज्यान्नवीदेनामनेन हरिरीश्वरः ॥ ११ ॥
 विश्वात्मा प्रीयतां देवस्तुष्ट्यात्स्विति यज्ञमुक्त् ।
 आकारय मुनीन् शीघ्रं भोजनायेति चाब्रवीन् ॥ १२ ॥
 ते चावतीर्णाः सलिले कृतवन्तोऽघमर्षणम् ।
 दृष्ट्वोद्गारान् सान्नरसान् वृष्ट्या परमया युता ॥ १३ ॥

(चन० २६२)

(४) निग्रहणी—यथायमगत्य सृष्टिर्विध्यपर्वतं निजग्राह । अन्तः श्रीकृष्णो जगद्वनने-मायसने

सूर्य्यं निजग्राह । यथा कपिलमहर्षिः सगरपुत्रान् पट्टिसहस्रमितान् सागरकूले निगृह्य भस्मसाञ्चके । यथा नहुषो देवेन्द्रपदं प्राप्तोऽपि गौतमादिभिर्निगृहीतः सर्पोऽभूत् । नृगश्च राजा महर्षिशप्तः कृकलासोऽभूत् । राजा परीक्षितश्च शमीकपुत्रेण शृङ्गिणा शप्तस्त-
क्षकसर्पं दंशात् प्राणोत्तत्याज । च्यवनक्रोधाद्वाङ्मनः शय्यातिर्नगरे सर्वेषां मलमूत्रनि-
रोधोऽभूत् । विश्वामित्रक्रोधाद्हरिश्चन्द्रो राजा पीडितोऽभूत् ॥

अनुग्रहणी=यथा गौतमशापात् प्रसूतभूताया अहल्यायाः शापोद्धारानुग्रह स्वप्नरक्षणस्पर्शेन चकार भगवान् रामचन्द्रः । यमलार्जुनवृक्षः कृष्णस्पर्शादनुगृहीतः । समुद्रे निमज्जतो भुव्युराज-
स्याश्विभ्यामुद्धरणमुक्तं वेदे ॥

(५) पुत्रजननीयम्=या एता लोके बन्ध्याः स्त्रियः तासां पुत्रजननप्रतिबन्धका दोषाः शुक्र-
शोणितपितृनागप्रहादिभेदादष्टौ वैद्यैः स्मूर्यन्ते । तेषामष्टानामपि दोषाणामेकेन यज्ञेनैव
शक्यते निवृत्तिः कर्तुम् । यथा विभाण्डकसुत ऋष्यशृङ्गोऽयोध्यायां पुत्रेष्टियज्ञं संपाद्य
चरुप्राशनेन दशरथपत्नीपु रामलक्ष्मणादीश्चतुरः पुत्रान् संभावयामास । ऋचीकमहर्षि
कृतचरुभक्षणत् परशुरामविश्वामित्रयोरुत्पत्तिः । द्रुपदस्य राज्ञो यज्ञाद् द्रौपदी जज्ञे
धृष्टद्युम्नश्च । श्रद्धादेवस्य मनोर्यज्ञादित्थाकन्या जज्ञे ।

(६) प्रावृषेया=वृष्टिकरणीयं विद्या । अवग्रहकाले कारोरीष्ट्यादिभिर्वृष्टिः शक्यते कर्तुम् ।
यथा विभाण्डकपुत्र ऋष्यशृङ्गः समागत्यायोध्यायां जलं वर्षयामास ।

(७) आपोनपत्रीयम्=अपां नानारूपाणि यत्र तत्र भिद्यन्ते—अम्भो मरीचिर्मरः श्रद्धारस
इत्यादीनि । सूर्यादूर्ध्वप्रदेशे प्रत्युत्पन्नं सर्वजगद्व्यापकमुदकमदृश्यरूपमम्भः ।
सूर्य्यरश्मौ मरीचिः । मृत्तिकात्वेमरः । चन्द्ररश्मौ श्रद्धा । एवं वायौ रसः । तत्र या इमा
रसात्मिका आपो वायौ नित्यं तारतम्येनाहिता भवन्ति । त इमे रसा अहरहः पृथिव्यां
प्रत्यर्थं सुपसीदन्ति । तेषां संग्रहणविज्ञानाद् यथेच्छं यत्र तत्र निजलेऽपि देशे
वायुतः प्रतिमूर्च्छनया जलान्युपाजयितुं शक्यन्ते । तत् प्रकारश्च वेदे आपोनपत्रीमसूक्ते
सुविशदं प्रदर्शितं । पुरात्वे खलु क्वप एल्लयः प्राचीसुरस्वतीकूले सत्रमातिष्ठ-
मानैर्ब्राह्मणैर्निराकृतो मरुधन्वप्रदेशः प्रापितः सन्नेतया विद्यया वायोभूयांसि जलान्या-
विष्कुर्वन् परिसारकनदी जनयामास ।

(८) मधुविद्या=मधुमक्षिकायाः मधुकोशमिवैतत् सूर्य्यमण्डलं भावयित्वा तद्विश्वसूत्रैरधः
परिस्रुतानां मधुविन्दूनां परिग्रहणं मधुविद्या । मधुशब्दोऽयमुपलक्षणं दधिघृतामृतानाम् ।
येन पृथिव्या शरीरं संगठितं कठिनं वाऽन्यत् । किञ्चिद् भवति । स सूर्य्यरसो दधि

कथ्यते येनान्तरिक्षस्वरूपं संपद्यते तद् घृतम् । येन दिवस्तन्मधु । येन दिव ऊर्ध्वं तद्-
भृतम् । चत्वारोऽयेते भावा अहरहः सूर्यात् पृथिव्यामस्यां परिवर्षन्ति तेषां परिवर्षण-
क्रमविज्ञानाद्ब्रह्मोऽर्था यथेच्छं साधयितुं शक्यन्ते । दधन्पुपादाने घृतमधुनोः संश्लेषण-
योर्योगादनेकभावोत्पत्तिसंभवात् । तामिमां मधुविद्यां दध्यङ्ग्राथवेणो जानातिस्म ।
ततोऽश्विनौ च ।

आगामीयमन्त्रवल्सिद्धयोऽष्टौ ।

अथ मारणमोहनोच्चाटनवशीकरणविद्वेषणस्तम्भनाकर्षणादयो मन्त्रशास्त्रोक्ताः सिद्धयः
पुरश्चरणानुष्ठानपूर्वकप्रयोगसाधिताः शारदातिलकमन्त्रमहोदधितन्त्रसारादिग्रन्थेभ्यो
विज्ञेयाः ।

महौषधि वल्सिद्धयोऽष्टौ ।

(१) मृतसंजीवनी=इयं महौषधिरभिमिश्रिता सती स्वप्रभावेण मृतानामपि प्राणिनां शरीरं
पुनः प्राणैः सयोज्य पुनरुज्जीवितं तदुत्थापयति । यथा शुकः पुरात्वे देवासुरसंग्रामेऽहर-
हृमृतानामप्यसुराणां मृतसंजीवन्योषधिप्रभावेणाहरहर्जीवयति स्म । यथा वा वृहस्प-
तिपुत्रः कचः शुक्रशिष्यैरसुरैर्भूयो भूयो व्यापादितोऽपि संजीवन्या विद्यायां शुक्रेण
पुनरुज्जीवितोऽभूत् ॥ १ ॥ वेनाङ्गुष्ठमथनेन पृथु पुत्रो जनित इति सेयं विद्यापि मृत-
संजीवन्यां विद्यायां संनिविशते ।

(२) संजीवकरणी=इयमोषधिर्मृद्वया नष्ट संज्ञानां तत्त्वणानां पुनश्चैतन्योत्पादनायोपयुज्यते ।

श्रुत्वा तद्वानरेन्द्रस्य सुपेणो वाक्यमब्रवीत् ।

देवासुर महायुद्धमनुभूतं पुरातनम् ॥ १ ॥

तदा स्म दानवा देवान् शरैर्जन्मुर्मुहूर्मुहुः ।

तानाङ्गान्नष्टसंज्ञांश्च गतासूँश्च बृहस्पतिः ॥ २ ॥

विद्याभिर्मन्त्रयुक्तामिरोपधीभिश्चिकित्सति ।

तान्यौषधान्यानयितुं क्षीरोदं यान्तु सागरम् ॥ ३ ॥

हरयस्तुं विजानन्ति पार्वती ते महौषधी ।

संजीवकरणीं दिव्यां विशल्यां देवनिर्मिताम् ॥ ४ ॥

चन्द्रश्च नाम द्रोणश्च क्षीरोदे सागरोत्तमे ।

अमृतं यत्र मथितं तत्र ते परमौषधी ॥ ५ ॥ (यु० ५०)

समीपस्थमुवाचेदं हनुमन्तं महाकपिम् ।
 सौम्य शीघ्रमितो गत्वा पर्वतं हि महोदयम् ॥ ६ ॥
 दक्षिणे शिखरे जातां महोपधिमिहामय ।
 विशल्यकरणीं नाम्ना सावर्ण्यकरणीं तथा ॥ ७ ॥
 संजीवकरणीं वीरसंधानी च महौपधिम् ।
 संजीवनार्थं वीरस्य लक्ष्मणस्थ स्वमानय ॥ ८ ॥
 ततः संक्षोदयित्वा तामोषधीं वानरोत्तमः ।
 लक्ष्मणाय ददौ नस्तः सुपेणः परमौपधिम् ॥ ९ ॥
 स तस्य गंधमाघ्राय संशल्यो लक्ष्मणस्तदा ।
 विशल्यो विरुजः शीघ्रमुदतिष्ठन्महीतलात् ॥ १० ॥

(वा० रामायणे यु० १०२)

(३-४) विशल्यकरणी=इयं महोपधिः सावर्ण्यकरणी च नियुद्धे शस्त्रास्त्रविहतानां तत्क्षणादेक-
 रात्रेण वा नैरुज्योत्पादनेन पुनर्युद्धयोग्यतासंपादनार्थमुपयुज्यते । भीष्मपरशुरामयुद्धे
 त्रिसप्ताहकालिकेऽहरहर्विद्वत्तयोर्मूर्च्छांमागतयोरपि तयोः पुनर्द्वितीयेऽहनि पूर्ववद् बलौ-
 त्साहौ सज्जता च स्मर्यन्ते ॥ १ ॥ छिन्नांगोद्भावनमप्यत्रैव संनिविशते । तच्च विच्छि-
 न्नानाममसतामङ्गानां सूर्य्यरश्मिप्रभावेण पुनरुत्पादनम् । यथा मुद्युम्नेन राज्ञा स्तैयद-
 ण्डरूपेण लिखितस्य ऋपेर्हस्ते छिन्ने पुनः शंख ऋपिः सैतयाहिन्यां नद्यां संस्नाप्य
 पूर्ववत् तद्वाहुमुत्पादयामास ।

(५) संधानकरणी=विच्छिन्नाङ्गसंश्रानाणोपयुज्यते । यथा ग्रीगातिरिक्तानामङ्गानां शस्त्रच्छिन्नानां
 संश्लेषणद्रव्यसंयोगं विनैव देवराज इन्द्रः संधत्ते स्मेति ऋग्वेदसंहितायामाख्यातम् ।
 “य ऋते चिदमिष्टियः पुरा जन्नुभ्य आतृदः । सन्धाता सन्धिं मघवा पुरुषसुरिष्कतां
 विहुतं पुनः” — (८ । १ । १२)

मधुविद्यां ब्रुवतः शिश्छेत्स्यामीति देवराजेनोक्ते तां शिञ्जिनुमादावेवाश्विनौ दधीचः शिर-
 श्छेदं कृत्वा शिरः संवोच्य हयशिरसो दधीचो मधुविद्यामुपलेभाते । अथ देवेन्द्रेणाश्वशिरसि
 विच्छेदिते पुनरश्विभ्यां तदीयं पौर्विकं शिरो यथावन् संयोजितमिति प्रसिद्धमितिहासेषु ।

(६) अरिष्ट-भैषज्या नाम योगविद्यानुगृहीता महौपधिः । यथा सौभरिणा राजकन्यानां शत-
 मितानां कुब्जानां रवहस्तास्फालनेन कुब्जत्वं निरस्तम् ॥ २ ॥ लङ्कायां मेघनादेन युद्धे

शरवन्धविक्षतयो रामलक्ष्मणयोर्गरुडोऽकरमादाकाशादुपेत्य स्वाङ्गम्पर्शेन सर्वाङ्गत्रय-
शोधनं कृत्वा निर्वाणत्वं नैरुज्यं च संपादयामास ।

“ततः सुपर्णः काकुत्स्थौ स्पृष्ट्वा प्रत्यभिनन्द्य च ।

विममर्श च पाणिभ्यां मुखे चन्द्रसमप्रभे ॥ १ ॥

चैनतेयेन संस्पृष्टास्तयोः संरुरुर्त्रणाः ।

सुवर्णं च तनू स्निग्धे तयोराशु बभूवतुः ॥ २ ॥

तेजो वीर्यं बलं चौज उत्साहश्च महागुणाः ।

प्रदर्शनं च द्युद्विश्च स्मृतिश्च द्विगुणा तयो ” ॥ ३ ॥

इति रामायणे (यु० ५०)

- (७) डिम्भप्रसविनी—यथा सगर महारानस्य पट्टिसहस्राणि पुत्राणां, धृतराष्ट्रस्य च अतं पुत्रा-
णामौपधिप्रभावादुदपद्यन्त । डिम्भमेक खरदश* कृत्वातान् खरदान धृतञ्जलो महोप-
धिधृतादये निक्षिप्य कञ्चिन्मासैः परिपक्वांस्तान् गर्भांस्ततः प्रादुर्गावयानामुर्महर्षय ।

“कनिष्ठा सुपुत्रे तुन्वीं वीजपूर्णमिति श्रुतिः ।

तत्र पट्टिसहस्राणि गर्भाभ्ते तिलमंमिता ॥ १ ॥

धृतपूर्णेपु कुम्भेषु तान् गर्भान्निदधे ततः ।

ततो दशसु मासेषु समुत्तर्युयथाक्रमम् ॥ २ ॥

कुमारास्ते यथाकालं सगरप्रीतिवर्द्धना ।

संवभूवुर्यथाकालं वष्टुधुश्च यथासुखम् ” ॥ ३ ॥ (ब्रह्म पु० प्र० ६)

- (८) वलातिवले—मन्त्रयुक्ते महौपधी एते । यथोक्तं रामायणे वाल्मीकीये—(बाल० २२)

“गृहाण वत्स सलिलं माभूत् कालन्य पर्ययः ।

मन्त्रप्रामं गृहाणत्वं वलामतिवलां तथा ॥ १ ॥

वला चातिवला चैव सर्वज्ञानस्य मातरौ ।

एतद्विद्याद्वये लब्धे न भवेन् सदृशस्तव ॥ २ ॥

न श्रमो न त्वरो वा ते न रूपस्य विपर्ययः ।

न च सुप्तं प्रमत्तं वा धर्षयिष्यन्ति नैर्ऋता ॥ ३ ॥

न बाह्वोः सदृशो वीर्यं पृथिव्यामस्ति वरचन ।

त्रिषु लोकेषु वा राम न भवेत् सदृशस्तव ॥ ४ ॥

न सौभाग्ये न दक्षिण्ये न ज्ञाने बुद्धिनिश्चये ।
 नोत्तरे प्रतिवक्तव्ये समो लोके तवानघ ॥ ५ ॥
 वलामतिवलां चैव पठतस्तात राघव ।
 क्षुत्पिपासे न ते राम भविष्येते नरोत्तम ॥ ६ ॥
 विद्याद्वयमधीयाने यशश्चाथ भवेद् भुवि ।
 पितामहसुते ह्येते विद्ये तेजःसमन्विते ॥ ७ ॥
 ततो रामो जलं स्पृष्ट्वा प्रहृष्टवदनः शुचिः ।
 प्रतिजग्राह ते विद्ये महर्षभोवितात्मनः ॥ ८ ॥

यन्त्रबलसिद्धयोऽष्टौ ।

(१) दिव्यविमानं=ऋषिनिर्मित मुक्तमृगवेदे चतुर्थमेण्डले पट्त्रिंशसूक्तं भगविता वामदेवेन
 “अनश्नो जातो अनभीषुरुक्थ्यो रथस्त्रिचक्रः परिवर्तते रजः महत् तद्वो देवस्य प्रवाचनं
 द्यामृभवः पृथिवी यच्च पुष्यथ ॥ ” (४ । ३६ । १)

(२) पुष्कविमानं रामायणे निरूपितम्—(युद्धकां १२३—१२४)

एतत्पश्य यथा क्षिप्रं प्रतिगच्छाम तां पुरोम् ।
 अयोध्यां गच्छतो ह्येष पन्थाः परमदुर्गमः ॥ १ ॥
 एवमुक्तस्तु काकुत्स्थं प्रत्युवाच विभीषणः ।
 अह्ना त्वां प्रापयिष्यामि तां पुरीं पार्थिवात्मज ॥ २ ॥
 पुष्पकं नाम भद्रं ते विमानं सूर्य्यसंनिभम् ।
 मम भ्रातुः कुवेरस्य रावणेन वलीयसा ॥ ३ ॥
 हतं निर्जित्य संग्रामे कामगं दिव्यमुत्तमम् ।
 त्वदर्थं पालितं चेदं तिष्ठत्यतुलविक्रमम् ॥ ४ ॥
 तदिदं मेघसंकाशं विमानमिह तिष्ठति ।
 येन यास्यसि यानेन त्वमयोध्यां गतञ्जरः ॥ ५ ॥
 ततः काञ्चनचित्राङ्गं वैदूर्यमणिवेदिकम् ।
 कूटागारैः परिक्षिप्तं सर्वतो रजतप्रभम् ॥ ६ ॥
 पाण्डुराभिः पताकामिर्ध्वजैश्च समलंकृतम् ।
 काञ्चनं काञ्चनैर्हर्म्यैर्हमपद्मविभूषितैः ॥ ७ ॥

प्रकीर्णं किङ्किणीजालैर्मुक्तमणिवान्तकम् ।
 घण्टाजाले. परिक्षिप्तं सर्वतो मधुरस्वनम् ॥ ८ ॥
 तं मेरुशिखराकारं निर्मितं विश्वकर्मणा ।
 बृहत्किर्भूपितं हर्म्यैर्मुक्तारजतशोभितैः ॥ ९ ॥
 तलैः स्फटिकचित्राङ्गैर्वदूर्यैश्च वरासनैः ।
 महार्हास्तरणोपेतैरुपपन्नं महाधनैः ॥ १० ॥
 तद्विमानं कामगमं पुष्पकं पुष्पभूपितम् ।
 निवेदयित्वा रामाय तस्थौ तत्र विभीषणः ॥ ११ ॥
 ततः स पुष्पकं दिव्यं सुग्रीवः सह वानरैः ।
 आरुरोह मुदा युक्तः सामात्यश्च विभीषणः ॥ १२ ॥
 तेष्वारूढेषु सर्वेषु कौवेरं परमासनम् ।
 राघवेणाभ्यनुज्ञातमुत्पपात विहायसा ॥ १३ ॥
 खगतेन विमानेन हंसयुक्तेन भास्वता ।
 ब्रह्मप्रश्नं प्रतीतश्च वभौ राम कुवेरवत् ॥ १४ ॥
 ते सर्वे वानरर्क्षाश्च राक्षसाश्च महाबलाः ।
 यथासुखमसंवाधं दिव्ये तस्मिन्नुपाविशन् ॥ १५ ॥

- (३) सौमविमानं = मार्तिकावतराजस्य शाल्वस्यासीत् । युद्धविमानमेतद्वद्विन्वृतमसीत् ।
 उक्तं च भारते वनपर्वणि कृष्णेन ॥ (२२),
 खे, विपत्तं हि तत् सौभं क्रोशमात्र इवाभवत् ।
 शाल्वराजो युध्यमानो वियदभ्यगमत् पुन ॥ १ ॥
 ततो नादृश्यत तदा सौभं कुरुकुलोद्धह ।
 अन्तर्हितं माययाऽभूत् ततोऽहं विस्मितोऽभवम् ॥ २ ॥
 ततः प्राग्ज्यौतिषं गत्वा पुनरेव व्यदृश्यत ।
 सौभं कामगमं वीरो मोहयन्मम चक्षुषी ॥ ३ ॥
 आग्नेयमस्त्रमादाय युद्धे मतिमधारयम् ।
 वधाय शाल्वराजस्य सौभस्य च निपातने ॥ ४ ॥
 रूपं सुदर्शनस्यासीदाकाशे पततस्तदा ।
 द्वितीयस्येव सूर्यस्य युगान्ते प्रतपिष्यत ॥ ५ ॥

तत् समासाद्य नगरं सौभं व्यपगतत्विषम् ।

मध्येन पाटयामास क्रकचो दार्विवोच्छ्रितम् ॥ ६ ॥

द्विधाकृतं ततः सौभं सुदर्शनबलाद्धृतम् ।

तस्मिन्निपतिते सौभे चक्रमागात्कारं मम ॥ ७ ॥

तन्मेरुशिखराकारं विध्वस्ताद्राजगोपुरम् ।

दह्यमानमभिप्रेक्ष्य स्त्रियस्ताः संप्रदुर्दुवुः ॥ ८ ॥

(४) अथ सूतविमानं तु त्रिकक्षं पारदाभ्रकैः ।

आस्थानयन्त्रभागाभ्यां द्विविभक्तं मनोजवम् ॥ १ ॥

यन्त्रभागे निम्नकोष्ठे सुदीप्तेनाग्निनाचितम् ।

तदूर्ध्वपारदेनाढ्यं तदूर्ध्वं चाभ्रका चितम् ॥ २ ॥

तिर्य्यगूर्ध्वाधरान् देशान्नमित्तं तद्यथेच्छया ।

आयसीभिर्भूयसीभिर्नलिकाभिः समाचितम् ॥ ३ ॥

गन्धकैरपि तद्युक्तं निपूणैर्निर्मितं पुरा ।

गौरीशंकरवीर्याभ्यां विमानं कृतमद्भुतम् ॥ ४ ॥

(५) हर्य्यश्चविमानम् = इन्द्राय दारुविनिर्मितं संयुक्तं हयद्वयात्मकम् । यथोक्तवेदेशच्याकर्तं पितरा युवाना शच्याकर्तं चमसं देवयानम् ॥

शच्या हरी धनुतरावतष्टेन्द्रवाहावृभवो वाजरत्नाः ॥ ४ । ३५ । ५ ॥

ये हरी मेधयोक्था मदन्त इन्द्राय चक्रुः सुयुजा ये अश्वाः ।

ते रायस्योषं द्रविणान्यस्मेधन्त ऋभवः क्षमयन्तो न मित्रम् ॥ ४ । ३३ । १० ॥

(६) प्लवविमानं = समुद्रसंतरणसाधनदारुनिर्मितं पक्षिरूपमधिकृते सुधन्वराजपुत्रैर्ऋभुभिर्विनिर्मितम् । नैतत्समुद्रे निमज्जति स्म । एतदारूढा अनायासेन समुद्रमत्यूर्म्मिमालाकुलमपि संतरन्ति स्म ।

(७) अमृतगवी = रथं ये चक्रुः सुवृतं नरेष्ठां ये घेनुं विश्वजुवं विश्वरूपाम् । त आतक्षन्त्वृभवो रथि नः स्ववसः स्वपसः सुहस्ताः ॥ ४ । ३३ । ८ ॥

ऋभुभिर्गौरति भव्या कामगवी निर्मिता चित्रा ।

एषा यदेव किञ्चित् प्राप्नोत्यमृतं ततोदुग्धे ॥ १ ॥

(८) शिलासंतरणी = “नलेन कपिवीरेण वायुवेशाल्लघूकृतैः शिलाखण्डैः संतरद्भिः सेतुरव्यौ प्रवर्तितः ॥ १ ॥” अद्यत्वे गङ्गायां पञ्चभिरव्दैर्भवेन्न वा सेतुः । पञ्चभिरहोभिरव्यौ

रामः सेतुं शिलामयं व्यदधात् ॥ २ ॥ पूर्वयुगे यद्वीर्यं यच्चाद्भुतकर्म चक्रिरे वीरा ।
अनुकर्तुं तदशक्ता अनृतं मन्यन्त आत्मनस्तुष्ट्यै ॥३॥ अद्यातिहीनवीर्या अप्पारम्भा
म्वमानरक्षार्थम् । पूर्वेषामिह कीर्तिं न सहन्ते कूपमण्डूकाः ॥ ४ ॥

अथ स्वयंवहादयो यन्त्रविशेषाः ।

१—आभ्य सर्वाभ्यो विद्याभ्योऽयविकचमत्कारवती नितान्तमुपयोगिनी स्वयंवहयन्त्रविद्या
भवति । तथा दैनिक पट्टिघटिकापलविपलादिज्ञानमतिस्तुष्ममसंशयितं यथार्थरूपमु
पसंपद्यते । तन्निर्माणप्रयोगादिप्रकारा सूर्यसिद्धान्ते सिद्धान्तशिरोमणौ च विशिष्योद्दि-
ष्टिता दृष्टव्या । ॐ

ब्राह्मणानामष्टभ्यो वीर्येभ्यः सर्वासां विद्यानां प्रादुर्भावः ।

२—एवं केचिद् विद्या विभजन्ते भारतीयास्ता ।

एता एव स्वपरे ब्रुवते पुनरन्यथा दृष्ट्वा ॥ १ ॥

ब्राह्मणवीर्याण्यष्टौ दैवाद् योगेन यज्जतन्तपसा ।

मणिमन्त्रौपधियन्त्रैरेषां भेदाश्च बहवः स्युः ॥ २ ॥

एकैकविद्ययापि च लभतेऽपूर्वं जनस्तु सामर्थ्यम् ।

नात परं तु किञ्चिद्बलमधिकं संभवत्यत्र ॥ ३ ॥

ॐ अमृतस्वावयोगेन कालभ्रमणसाधनम् । तुङ्गवीजममायुक्तं गोलयन् प्रसाधयेत् ॥१॥ ॥ ॥ ॥ ॥
साधनार्थाय तथा यन्त्राणि संग्रहेत् एकाकीजयेद्वीजयन्त्रे विमये कागिणी ॥ २ ॥ (१० मि० उ० न०
दध्याये १७ १६) सिद्धान्तशिरोमणावपि लघुकाष्ठसमचक्रे समनुप्रिया समान्तरे नेत्रं निविष्ट्वा दे-
सुषिरस्याङ्गे पृथक्त्वासां ॥१॥ ॥ १७ पूर्णे तच्चक्रं द्वयाधारात् स्पर्शनं न्वद भवति । उ० न० न० न० न०
परितो मद्नेन संलग्नम् ॥२॥ तदुपरि तालदलार्धं कृत्वा सुषिरे रश्मिपेन् तादन् दायवर्गं रश्मिं दृष्ट्वा
चलं नान्यतो याति ॥३॥ पिहितशिलुद्रं तदतश्चक्रं भ्रमति स्वोक्तादृष्टम् । सा देवदत्तं दृष्ट्वा नान्य-
म्बुपूर्णस्य ॥४॥ एव कुण्डजलान्तर्द्वितीयमत्र त्वधोमुखं च बहि । एगमन्तं चेतनं नान्यं नान्यं
पतति ॥५॥ नेत्र्या बद्धा घटिकाचक्रं जलगन्धवत्तया धार्यम् । नन्दप्रमत्तुनमन्त्रिणं नान्यं नान्यं नान्यं
॥६॥ भ्रमति ततस्तत्तत पूर्णघटंभिः समाकृष्टम् । चक्रयुजं स्वमुष्टं कुण्डे दानि प्रसाधयेत् ॥७॥

दैववली योगवली यज्ञवली वा तपोवली निगमात् ।
 मणिमन्त्रतन्त्रयन्त्रैरागमतः स्याद्वली विप्रः ॥ ४ ॥
 नास्ति पृथिव्यां सोऽर्थो वीर्यात् पूर्णान्न यः सिध्येत् ।
 दैवाद् योगाद् यज्ञात्तपसो मन्त्रान् महौषधितः ॥ ५ ॥

सर्वविद्यानां सर्वार्थसिद्धौ हेतुत्वं तुल्यम् ।

३—इत्थं विद्याः कारणकार्यविभागेन दर्शिता एताः ।
 किन्त्वविशेषात् सर्वाः सिद्धय एभ्योऽष्टवीर्य्यभ्यः ॥ १ ॥
 दैवाद् योगाद् यज्ञात् तपसो मणिमन्त्रतन्त्रयन्त्रेभ्यः ।
 तुल्यवदेव समग्राः कामा निश्चित्य सिध्यन्ति ॥ २ ॥

नवनिधयः ।

एता हि सिद्धयोऽष्टौ बहुभिर्यत्नैः प्रसाधनात् सिद्धेः ।
 अथ नवनिधयस्त्वन्ये गृहे निधानं ह्यपेक्षते तेषाम् ॥ ३ ॥
 “महापद्मश्च पद्मश्च शङ्खो मकरकच्छपौ ।
 मुकुन्दकुन्दनीलाश्च खर्वश्च निधयो नव” ॥ ४ ॥
 एषामेकोऽपि गृहे निहितः परमां श्रियं तनुते ।
 सपरिच्छदान्नवस्त्रप्राचुर्य्य भोगसौभाग्यम् ॥ ५ ॥
 नापेक्ष्यतेऽत्र मन्त्रो न यन्त्रतन्त्रे न यज्ञयोगौ वा ।
 केवलनिधानमङ्गे गृहेऽपि लक्ष्मीं विवर्द्धयति ॥ ६ ॥

निधिविशेषा अष्टौ मणयः ।

४—अौषधयोऽपि च निधयो निधिप्रभावाः प्रसिद्धयन्ति ।
 कतिचित् तासामष्टौ मणिसंज्ञा अत्र कथ्यन्ते ॥ १ ॥

	१	२	३	४	५	६	७	८
अष्टमणय	इन्द्रमणिः	जङ्घिड- मणिः	प्रतिसर- मणिः	वरण- मणिः	दर्भमणिः	औदुम्बर- मणिः	शतवार- मणिः	अस्तुत- मणिः

शक्तिर्गुणश्च वीर्यं रसो विपाकः प्रभावश्च ।
 प्रत्योपधि भिद्यन्ते मणित्वमेपां प्रभाववैशेष्यात् ॥ २ ॥
 सन्त्योपधयः सर्वा प्रभाववत्योऽथ ताम्रघ्नौ ।
 मणयः स्युरिन्द्रजिह्वप्रतिसरवरणादयः ख्याता ॥ ३ ॥
 हस्ते धृतेन्द्रमणिरिह महौपधिः स्वप्रभावेण ।
 दिव्यां दृष्टिं दत्ते तथोक्तमाथर्वणे वेदे ॥ १ ॥ (४ । २० । १ । ६)
 आपश्यति प्रतिपश्यति परापश्यति पश्यति ।
 दिवमन्तरिक्षमाद् भूमिं सर्वं तद्देवि पश्यति ॥ २ ॥ (४ । २० । २)
 तिस्रो दिवस्तिस्त्रः पृथिवीः पट् चेनाः प्रदिशः पृथक् ।
 त्वयाऽहं सर्वा भूतानि पश्यानि देव्योपधे ॥ ३ ॥
 ता मे सहस्राक्षो देवो दक्षिणे हस्त आदधन ।
 तयाऽहं सर्वं पश्यामि यश्च शङ्क उतार्ह्य ॥ ४ ॥ (४ । २० । ४)
 दर्शय मा यातुधानान् दर्शय यातुधान्य ।
 पिशाचान् सर्वान्दर्शयेति त्वारम्भ ओपधे ॥ ५ ॥ (४ । २० । ६)
 यो अन्तरिक्षेण पतति दिवं यश्चातिमर्पति ।
 भूमिं यो मन्यते नाथं त पिशाचः प्रदर्शय ॥ ६ ॥ (४ । २० । ६)
 अथ जङ्घिडमणिरन्यो धृतः पारीरे प्रवर्द्धयभ्यायु ।
 कृत्यादोष हरति च तथोक्त माथर्वणे वेदे ॥ १ ॥
 दीर्घायुत्वाय बृहते रणायारिण्यन्तो दक्ष्यमाना मर्दय ।
 मणिं विष्कन्ध दूषण जङ्घिडं विभृमो वयम् ॥ २ ॥ (२ । ४ । १)
 जङ्घिडो जम्भाद् विशराद् विष्कन्धादभिः शोचनान् ।
 मणिं सहस्र वोढ्यं पणिरिण पातु विश्रुत ॥ ३ ॥ (२ । ४ । २)
 अयं विष्कन्धं सहतेऽयं वाधते अत्रिण ॥
 अयं नो विष्कन्धेपजो जङ्घिड पातवहम् ॥ ४ ॥ (२ । ४ । ३)
 देवैर्देहेन मणिना जङ्घिडेन मयो भुवा ।
 विष्कन्धं सर्वा रक्षामि व्यायामे सहानहं ॥ ५ ॥ (२ । ४ । ४)
 शरणश्च मा जङ्घिडश्च विष्कन्धादभिरजनाम् ।
 अरण्यादन्य आभृत कृप्या अन्यो रमेभ्यः ॥ ६ ॥ (२ । ४ । ५)

कृत्यादूपिरयं मणिरथो अरातिदूपिः ।
 अथो सहस्वान् जङ्घिडः प्रण आयूँअपि तारिपत् ॥ ७ ॥ (२ । ४ । ६)
 एकोनविंशकाण्डस्याथं सूक्तेचतुर्त्रिंशे । (१६ । ३४ । ३५)
 पञ्चत्रिंशे तद्वन्मणिरुक्तो जङ्घिडो भूयः ॥ १ ॥
 एवं प्रतिसरमणिरयमष्टमकाण्डस्य पञ्चमे सूक्ते (८ । ५)
 वरणो मणिरधिदशमं तृतीय सूक्ते विशिष्योक्तः ॥ २ ॥ (१० । ३)
 एकोनविंशकाण्डस्याष्टाविंशादिपट्सूक्तैः । (१६ । २८ । ३३)
 दर्भो मणिरौदुम्बरमणिर्विशेषादिहाख्यातौ ॥ ३ ॥
 एतत्काण्डे सूक्ते पट्त्रिंशे त्वस्ति शतवारः । (२६ । ३६)
 अस्तृत मणिरिह गदिनः पट् चत्वारिंशके सूक्ते ॥ ४ ॥ (१६ । ४६)
 इत्थमनेका ओपधिविद्या आर्य्यैः पुरातनैर्हृष्टाः ॥
 आथर्वणे तु वेदे प्रदर्शितास्तास्ततो ज्ञेयाः ॥ ५ ॥

विद्याप्रकरणोपसंहारः ।

देवानामिह समये देवैः प्रोत्साहनात् सुयुक्त्वाच्च ।
 भारतवर्षीयार्य्यैरेता उद्भाविता विद्याः ॥ १ ॥
 एतासां विद्यानां कारव आसन् पृथक् पृथक् कतिचित् ।
 तत्प्रतिपत्तिग्रन्थाः कालविलुप्ता न लभ्यन्ते ॥ २ ॥
 इतिहासेषु प्रायः प्रसङ्गतश्चर्चिता एताः ।
 तेनास्तित्वं ह्यासां पूर्वयुगे भारते विद्मः ॥ ३ ॥

इति ब्राह्मवीर्यप्रसङ्गः ॥ १ ॥

भारतवर्षे युद्धोपयोगिनी चतुःषष्टिदिव्यास्त्राणि । (६४)
 ब्रह्माग्निरो ब्रह्मास्त्रं पाशुपतं वैष्णवं च वरुणास्त्रम् ।
 नारायणास्त्रमैन्द्रं प्राजापत्यास्त्रमाग्नेयम् ॥ १ ॥
 वायव्यं कौवेरं पार्जन्य—त्वाष्ट्रकालयाम्बानि ।
 दानवमथ च स्कान्दं प्रमथं वैनायकं च कृष्णाण्डम् ॥ २ ॥
 गणगान्धर्वे राक्षस पैशाचे भौत वैताले ।
 शारभमाद्यैशावरफैरवमातङ्गनागमकरास्त्रम् ॥ ३ ॥

सौपर्ण भारुण्ड चौलूकं गालणं चेति ।
 पापाणकालकूटे चाक्रै पीके वलातिवले ॥ ४ ॥
 औदुंबर च राजस हैमन गुह्यानि शौरमुन्मादः ।
 स्तम्भनकम्पनजृम्भणजम्भकमूर्च्छानिमीलनोत्पाताः ॥ ५ ॥
 प्रस्वापनं च मोहनमचेतनं भ्रामकं ज्वरास्त्र च ।
 वैद्युततैमिरतामसभेदादासंश्चतुः पट्टि ॥ ६ ॥
 दिव्यास्त्राणि पुरात्वे देवयुगे भारते वर्षे ।
 मन्त्रैर्यन्त्रैस्तन्त्रैरद्भुतकर्माणि तान्यासन् ॥ ७ ॥
 शरनाराचकृपाणप्रभृतीन्यष्टादशास्त्राणि ।
 लौहानि सर्वदेशे दिव्यास्त्रविधान्तु भारतेऽत्रैव ॥ ८ ॥

दिव्यास्त्रतालिका ।

दैवास्त्राणि १६	यौनास्त्राणि १६	भौतास्त्राणि १६	वर्मास्त्राणि १६
१ ब्रह्मशिरोऽस्त्रम्	१७ स्कन्दास्त्राणि	३३ मकरास्त्रम्	४६ उन्मादास्त्रम्
२ ब्रह्मास्त्रम्	१८ प्रमथास्त्रम्	३४ सापणान्त्रम्	४७ स्तम्भनास्त्रम्
३ पाशुपतास्त्रम्	१९ वैनायकास्त्रम्	३५ भारुण्डास्त्रम्	४८ वज्रनास्त्रम्
४ वैष्णवास्त्रम्	२० कूष्माण्डास्त्रम्	३६ उरुकास्त्रम्	४९ जूम्भनास्त्रम्
५ वारुणास्त्रम्	२१ गणास्त्रम्	३७ गालणास्त्रम्	५० जम्भनास्त्रम्
६ नारायणास्त्रम्	२२ गान्धर्वास्त्रम्	३८ पाशणास्त्रम्	५१ मूर्धनास्त्रम्
७ ऐन्द्रास्त्रम्	२३ राक्षसास्त्रम्	३९ कालकूटास्त्रम्	५२ निर्मानास्त्रम्
८ प्राजापत्यास्त्रम्	२४ पेशाचास्त्रम्	४० चाक्रान्त्रम्	५३ उन्मादास्त्रम्
९ आग्नेयास्त्रम्	२५ भौतास्त्रम्	४१ तेषीमान्त्रम्	५४ प्रयापनास्त्रम्
१० वायव्यास्त्रम्	२६ वेतालास्त्रम्	४२ वलास्त्रम्	५५ ज्वरास्त्रम्
११ कौबेरास्त्रम्	२७ शरभास्त्रम्	४३ अनिवलास्त्रम्	५६ भ्रामनास्त्रम्
१२ पार्जन्यास्त्रम्	२८ ताक्ष्यास्त्रम्	४४ ओदुम्बरास्त्रम्	५७ महेनास्त्रम्
१३ त्वाष्ट्रास्त्रम्	२९ शावरास्त्रम्	४५ राजसाम्बम्	५८ शौरास्त्रम्
१४ कालास्त्रम्	३० फेरवास्त्रम्	४६ हैमनाम्बम्	५९ वैष्णवास्त्रम्
१५ याम्यास्त्रम्	३१ मातङ्गास्त्रम्	४७ गुणास्त्रम्	६० विनास्त्रम्
१६ दानवास्त्रम्	३२ नागास्त्रम्	४८ शौरास्त्रम्	६१ ताम्बास्त्रम्

रामायणोक्तानि पञ्चाशद् (५०) दिव्यास्त्राणि ।

रामायणे तु विश्वामित्रो रामाय पञ्चाशत् । (५०)

दिव्यास्त्राणि निरूप्य प्रददौ तान्यप्यतो विद्यात् ॥ १ ॥

चक्राणि पञ्च पाशत्रयमशनी द्वे गदे च द्वे ।

शक्ती द्वे च महाखण्डोदा पोदैव तीव्रास्त्रम् ॥ २ ॥

साधारणास्त्रभेदाः सन्ति चतुर्विंशतिस्तत्र ।

मन्त्राहितानि सर्गस्थमोघवीर्याणि सिध्यन्ति ॥ ३ ॥

पञ्चाशदिव्यास्त्रतालिका ।

१	१ दण्डचक्रम् २ धर्मचक्रम् ३ कालचक्रम् ४ विष्णुचक्रम् ५ ऐन्द्रचक्रम्	५	१ कंकाल मुसल- शक्तिः २ कायालङ्किकणी- शक्तिः १ वज्रास्त्रम् २ शैवास्त्रम् ३ शूलवतास्त्रम् ४ ब्रह्मशिरोस्त्रम् ५ ऐपीकास्त्रम् ६ ब्राह्मास्त्रम् १ पिनाकास्त्रम् २ नारायणास्त्रम् ३ आग्नेयास्त्र- शिखरमग्नि- दयितम् ४ वायव्यास्त्रम् ५ हयग्रीवास्त्रम् ६ क्रौञ्चास्त्रम्	८	१ विद्याधरास्त्रम् नन्मसिरत्नम् २ गान्धर्वास्त्रं मोहनम् ३ प्रस्वापनम् ४ प्रशमनम् ५ सौम्यम् ६ वर्षणम् ७ शोषणम् ८ संतापनम् ९ विलापनम् १० मादनम् ११ कन्दर्पास्त्रम् कन्दर्पदयितम् १२ गन्धर्वास्त्रम्, गन्धर्वदयितम् मानवम् १३ पिशाचास्त्रम् पिशाचदयितम् मोहनम्	१४ तामसम् १५ सौमनम् १६ संवर्तम् १७ मौसलम् १८ सत्यास्त्रम् १९ मायास्त्रम् २० सौरास्त्रं, तेजःप्रभं, परते- जोपकर्षणम् २१ सौपास्त्रम्, शिशिरम् २२ त्वाष्ट्रास्त्रम्- दारुणम् मगास्त्रम्, दारुणम् शीतेषु-मानदम्
---	---	---	--	---	---	--

पञ्चाशद् दिव्यास्त्रसंहाराः ॥ (५०)

अथ चैषामस्त्राणां संहारा रामभद्राय ।

पञ्चाशदेव कथिता विश्वामित्रेण तान ब्रूमः ॥ ४ ॥

१	सत्यवान	१८	स्वनाभः	३५	पिच्यः
२	सत्यकीर्तिः	१९	व्यीतिपम्	३६	सौमनसः
३	धृष्टः	२०	शकुन्तम्	३७	विधूत
४	रमसः प्रतीहार तरः	२१	नैरास्य	३८	मन्त्रः
५	अपराङ्मुखम्	२२	विमल	३९	परवीर
६	अवाङ्मुखम्	२३	योगधरः	४०	रति
७	लक्ष्यः	२४	विनिद्रः	४१	धनम्
८	अलक्ष्य	२५	दैत्यः	४२	धान्यम्
९	हृदनाभः	२६	प्रथमत	४३	कामरूप
१०	सुनाभः	२७	शुचिवाहु	४४	कामरूपोः
११	दशाक्षः	२८	महावाहु	४५	मोक्ष
१२	शतवक्त्रः	२९	निष्कलि	४६	आवरणम्
१३	दशशीर्षः	३०	विरुचि	४७	जृम्भक
१४	शतोदरः	३१	सार्चिमाली	४८	नर्पनायः
१५	पद्मनाभ	३२	धृतिमाली	४९	पन्नानः
१६	महानाभः	३३	वृत्तिमान्	५०	वश्यः
१७	दुन्दुनाभः	३४	रुचिरः		

साधारणानि शस्त्राणि अष्टादश यथा—

१ सहचर्मखड्गभेदा २ सधनुर्वाणाच परिधश्च ॥

४ २ ६ ७ ८ ९ १० ११ पट्टिश-तोमर-कुन्ताः खेट-गदा-परशु-चक्र-शूलानि ॥ १ ॥

१२ १३ १४ १५ १६ १७ शक्ति-मुद्गरपाशौ हलमुसलभिन्दिपालमणिपुत्रौ ॥

१८ सशतघ्ना च भुशुण्डीत्येते शस्त्रास्त्रभेदा न्यु ॥ २ ॥

एषामेकैकस्य च बहवो भेदा पुरातनः क्लृप्ताः ॥

प्राधान्यतस्त्वमन्वाप्येतान्यष्टादशान्वाणि ॥ ३ ॥

अष्टादशास्त्रभाषानामतालिका ।

सं०	संस्कृतम्	पर्याया.	हिन्दी	विशेष.
१	खड्गः सचर्मा	कृपाणः ऋष्टिः असिः, करवालः	तरवार-खांडा	
२	धनुःसशरम्	चापः, धन्वः	धनुष-कमान	
३	परिघः कालदण्डः	परिघातिनः	लाठी	लोह वद्धो हस्तप्रमाणो
४	पट्टिशम्	० ० ० ०	शेल	लगुडः
५	तोमरः	सर्वला	गुग्गुल	
६	कुन्तः	प्रासः	भाला, वल्लभ	
७	खेटः	ईलो	कटारी-गुप्ती	
८	गदा	करवाली १	गुर्ज	
९	परशुः	० ० ० ०	फरसा कुठार,	
१०	चक्रम्	परश्वधः, स्वधितिः, कुठारः	कुल्हाड़ी	
११	शूलम्	० ० ० ०	चक्र	
१२	शक्तिः	० ० ० ०	शूल	
१३	मुद्गरः कूटमुद्गरः	कास्	वर्छी	सैतीति-महाराष्ट्रभाषा
१४	पाशः	घनः, दूधणः	मुगदर	
१५	हलमुसलम्	० ० ० ०	फांस	
१६	भिन्दिपालः	० ० ० ०	हल मूसल	
१७	छुरिका	सृगः	गोपया-ढेलवांस	पत्थर फेंकने का रज्जु-
१८	शतघ्नी मुशुण्डी	शस्त्री, असिपुत्री	छुरी छुरा	मय यन्त्र
१९		० ० ० ०	तोपः-चन्दूक	

इति क्षात्रवीर्यारख्यानम् ॥२॥

भारतीयविद्वीर्यारख्यानम् ।

भारतीयानां भग्नावशिष्टानामपि शिल्पानामतुलनीयत्वम् ।

वाणिज्यं च पुरासीदत्युत्कृष्टं हि भारतीयानाम् ॥

इतरे सर्वे देशा आयान्ति स्मात्र-भूयसा क्रेतुम् ॥ १ ॥

यद्यपि भारतवर्षे शिल्पिकला शिथिलता क्रमादगमन् ॥
 किन्तु न तत्रार्थ्याणामलसत्वं मूढतापि वा हेतु ॥ २ ॥
 राजास्यभारतीयो न स धर्माणामिहलशिल्पानाम् ॥
 वृद्धि रक्षां वं गं कुरुने तस्मादियं दशाऽवनता ॥ ३ ॥
 अद्याप्यवनतिकाले हीनज्ञानामपि क्याचार्य्याणाम् ॥
 शिल्पं भारतवर्षे प्रदृश्यनेऽन्येऽतुलनीयम् ॥ ४ ॥
 कश्मीरे शालपटश्चोर्णावस्त्रं च दिव्यमप्रतिमम् ।
 मलमलवस्त्रं ढाकानगरे सूक्ष्मानिमूक्ष्मतरम् ॥ ५ ॥
 रूयकसहस्रसत्तकमूल्या शाला विनिर्मिता हस्तेः ।
 सौष्ठवमोण्यं मृदुतां हृद्यत्वं यादृशं धत्ते ॥ ६ ॥
 ढाकामलमलवस्त्रं सूक्ष्मतमत्वेऽपि यादृशं धत्ते ।
 मसृणत्वं च दृढत्वं सौक्ष्म्यं चोण्यं मनोहरताम् ॥ ७ ॥
 न च तत्तल्लनां कर्तुं शक्ता अद्यापि यत्रयन्तोऽपि ।
 सन्त्युत्तमयन्त्रकलायुक्ता अपि भिन्नदेशीया ॥ ८ ॥
 अंशुकपट्टविशेषा दारुमृदुमादिरभ्यपात्राणि ।
 अद्याप्यवनतिसमये भारतवर्षे प्रशंसनीयानि ॥ ९ ॥
 अद्याप्यत्र बहूनि शलाक्यानि भवन्ति वीनहस्तज्ञानाम् ।
 कारुणामिह शिल्पान्येभिर्भारतशिरोऽन्युषम् ॥ १० ॥
 इति भारतवर्षीयविद्याप्रसङ्गे विद्वर्षीय्यारचनं कृतीयम् ॥ ३ ॥

इति भाग्यपञ्चयः प्रथमः ।



1. 10/10/10

2. 10/10/10

3. 10/10/10

4. 10/10/10

5. 10/10/10

6. 10/10/10

अथार्यदासीयाख्यो द्वितीयः

प्रसङ्ग आरभ्यते

भारतीयार्याणां मौलिकभारतीयत्वसिद्धान्ताद् वैदेशिकत्वमतखण्डनम् ।

ओंकार एष येषामविशेषान्मन्त्र आराध्यः ।

येषां भिन्नमतानामप्यत्रात्येकचन्द्रत्वम् ॥ १ ॥

येषां शास्त्रं वेदश्चातुर्वर्ण्यं विभाजितो धर्मः ।

धेनुर्गङ्गाऽऽराध्या तेषां देशोऽस्ति भारतं वर्पम् ॥ २ ॥

आर्यास्तेऽमी उदिताश्चातुर्वर्ण्यं विभाजिता लोकाः ।

तेषां स्वोऽयं देशो न तु परदेशाद्विगतो एते ॥ ३ ॥

पूर्वसमुद्रारव्यो देशो यः पश्चिमाश्विपर्वतः ।

पूर्वाऽस्यार्यावर्तः पश्चिम आर्यावर्तः भागः ॥ ४ ॥

एशियामध्यदेशावगतानामार्यवीराणां भारतवर्षीय मूलनिवासप्रदेशोऽस्ति
भावकः यः पश्चमिर्हेतुभिरेके नश्यन्ते ।

प्राहुः केचिद् भारते पूर्वमासन् वन्या जान्मान्तं गन्तव्यं ॥ ५ ॥

जित्वा चैतान् भारतेऽस्मिन् न्यवात्सु पामीराद्विरागता आर्यवीराः ॥ ६ ॥

योऽद्विर्विलूरतागो मुन्तागो वा तयोश्च पश्चिमतः ।

जम्बूनदीसदेशेऽत्युच्चैः न्यूपुर्य आर्याः प्राग् ॥ ७ ॥

ते खलु भारतवर्षेऽभ्याक्रम्यैतत् प्रदेशं भूतान् ।

वासात्रिहृत्य जयित्वा भारतवर्षं निवासितोऽभूवन् ॥ ८ ॥

यद्वत् पूर्व्यान् स्कन्दिलेण्ड प्रभूतान् हत्वा तत्र न्युपगच्छे प्रजाः ।

एवं मन्वे भारते भारतीयान् वन्यान् जित्वा मन्वन्तः ॥ ९ ॥

ये हीनानो भारते भारतीयाः सभ्या एते सन्ति वैदेशिन्यन्ते ।

पठ्यैतस्मिन् हेतवः सन्ति वादे तात्पर्यस्य ग्रहणस्य ॥ १० ॥

(१) आर्याः सर्वे रोमका यावना वा पूर्व पूर्वोदक् प्रदेशादुपेताः ।
 देशे देशे तत्र तत्र न्यवात्सुः सेत्थं ख्यातिः श्रूयते पूर्वकालात् ॥ ६ ॥
 आदिस्थानं पारसीकोपदेष्ट्राऽवेस्ताग्रन्थे ह्यैर्यनम्बीज उक्तम् ।
 मन्ये स स्यादेव पामीरदेशस्तत्रैवार्याः पूर्वमासन् वसन्तः ॥ ७ ॥
 १ । ३० । ६ अनुग्रहस्यौकसो हुवे तुवि—
 प्रतिनरम् । यं ते पूर्व पिताहुवे ॥ ८ ॥

अत्र प्रहस्यौकसो वर्णनेन प्राप्ता एते भारतीया विदेशात् ।
 प्रत्नं होषां धाम पामीरमासीन्मन्ये नूत्नं भारतं वर्षमेतत् ॥ ९ ॥
 ओषोत्थाने पूर्वकाले कदाचिद् यस्मान्नावोदग् गिरेः पारमायन् ।
 तस्मान्मन्येऽत्रागता उत्तरात् ते वेदग्रन्थे तच्छ्रुतं पारयानम् ॥ १० ॥
 “मनवे हवै प्रातरवनेग्यमुदकमाजहुः ।
 तस्य मत्स्यः पाणि आपेदे ॥ स औघ
 उत्थिते नावमापेदे । तं स मत्स्य उपन्या पुष्पुवे ।
 तस्य शृङ्गे नावः पाशं प्रति मुमोच ।
 तेनैतमुत्तरं गिरिमतिदुद्राव तदप्येतदुत्तरस्य
 गिरेर्मनोरवसर्पणम् । ओषो हताः सर्वाः प्रजा
 निरुवाह । अथेह मनुरेवैक परिशिशिपे” ॥
 वेदग्रन्थे वर्णितं यन्नियुद्धं तच्चाग्रत्यैः प्रागसभ्यैः सहैषाम् ।
 सभ्यानां स्यादागानानां विदेशात् जित्वा चेजान् भारते ते न्यवात्सुः ॥
 एतन्मतप्रत्याक्षेपः । यदुपोद्वलकहेतूनामप्रामाण्यात् ।
 इत्थं केचिद् भारते भारतीयानेतान् सभ्यान् हन्त पामीरदेशात् ।
 प्राप्तानाहुः किन्तु मन्ये तद्देशं मिथ्या क्लृप्तं भ्रान्तमस्यप्रमाणम् ॥ १ ॥
 ख्यातिस्तावन्न प्रमाणं स्वतन्त्रा यावत्तस्मिन्नान्यदस्ति प्रमाणम् ।
 ये त्वत्रान्ये हेतवः केचिदुक्ता हेत्वाभासास्तेऽखिला न प्रमाणम् ॥ २ ॥
 पारस्यानामैर्यनम्बीज उक्तो योऽयं देशः सोन्य आर्याणकः स्यात् ।
 तत्राप्यासन् प्राक् तुषारप्रपाता येभ्यो-लोका भूयसास विपन्नाः ॥ ३ ॥
 तुषारवर्षैर्वहुलैस्तमकाण्डनिपातिभिः ।
 आर्याणांकाभिधे देशे-विपन्नं केचिदुचिरे ॥ ४ ॥

प्रत्नं त्वोकः स्वं शुनः शेष एतन् प्रीतिप्राप्त्यै स्मारयद्वागताय ।

इन्द्रायेन्द्रः प्रागजीगर्तयज्ञे हूतः प्रीतोऽनेकधाऽवाप हव्यम् ॥ ५ ॥

शोकः प्रत्नं स्वर्गरूपं यदत्र व्याचष्टेऽसौ सायणस्तावतापि ।

इन्द्रस्याजीगर्तयज्ञे गतस्य प्रलौक्यमदृ भाव्यते न त्वमीषाम् ॥ ६ ॥

शौनः शेषो मन्त्र एष ह्यमीषां सर्वार्याणां प्रत्नमोक्षोऽविशेषाद् ।

पामीरं तल्लक्ष्यत्येवमुक्तिः पाश्चात्यानां साहसाद् भ्रान्तिमूलान् ॥ ७ ॥

पुराणमोकः सख्यं शिवं वां युवोर्नरात्रयिणं जहाव्याम् ।

पुनः कृषवानां सख्या शिवानि मध्या मदेन सहन् सनानाः ॥ ८ ॥

(३ । ४६ । ६ ।)

विश्वामित्रो जाह्नवीप्रान्तकृत्नां राजस्थाने स्वे कृता यशस्तातम् ।

त्यक्त्वाऽरण्ये स्वाश्रमं कल्पयित्वा यज्ञ धत्ते पूर्वसन्त्येन तृप्तम् ॥ ९ ॥

त्यक्त्वा पूर्वं स्थानमन्यन् प्रगृह्णन् कश्चिद् विद्वान् प्रत्नमोक्षं स्मरेन् तम् ।

सर्वेऽव्याख्यास्तावता प्रत्नमोक्षस्त्यक्त्वाऽर्चनां इत्यन्वाधः प्रगदः ॥ १० ॥

यद्वै नाबोदगुगिरे पारयानान्मन्यन्ते ते पारयान निगात्रे ।

तच्च भ्रान्तं सा हि नावाभिपत्तिः पामीराद्युत्तरे पश्चिमेऽगुन ॥ ११ ॥

आमीन्याख्ये म्लेच्छदेशे गिरिव्योऽगरातां भात्यार्गन्तान्मन्य पात्रे ।

दुद्रावात्रौ तत्र नावा मनु प्राग् म्लेच्छे देशेऽस्ति प्रमितिरन्यत्र ॥ १२ ॥

नायं शैलो नापि देशोऽयमासीन् प्राचमेवं प्रगृह्णन्ति वामनानि ।

तस्मादेपौघश्रुतिः प्राक्तनानां पूर्वावासोऽस्ति नोदयता ॥ १३ ॥

वेदग्रंथे वर्णितं यत् सम्यक् तज्जानार्थं भगिने पृथजाते ।

वीरार्याणां भारतेऽभ्यागतानामानीन् पूर्व पश्यन्त इत्येव ॥ १४ ॥

इत्थं प्राहुः पण्डिता केऽपि तेषामुक्तं मन्ये नान्येन विद्वद्भिः ।

नार्या वीरा भारतस्थाननार्यानि निर्यान् प्रगृह्णन्ति इत्येव ॥ १५ ॥

सर्वार्येवैतानि युद्धानि वेदाद्यानान्यान् येष्वंशे वा यज्ञ वेदाः ।

स्वर्गस्थातावसि तेषां विशेषादुक्तिः मित्रिण्य यत्र वेदाः सन्ति ॥ १६ ॥

भारतीयानां विदेशादागतत्वे हेतुत्वेन परोपन्यासः देशोपन्यासः सः ॥ १७ ॥

“तत्रादौ पुरायुगीयानां नाराणां संक्षेपतस्त्रैविध्यम् ।”

आखिला नराः पुरात्वे त्रेधा भिन्नाः प्रधानतो ह्यभवन् ।

(१) (२) (३)

देवा अथ च मनुष्या देवविरोधात् त्वदेवाश्च ॥ १ ॥

(१)

अत्युन्नतविज्ञानाः प्रभाववन्तोऽभवन् देवाः ।

(२)

विज्ञानदुर्वला अपि बहुलप्रजा महाबला असुराः ॥ २ ॥

(३)

साधारणी तु जनता मनुष्यनाम्ना प्रतीताऽऽसीत् ।

१ २ ३ ४

तत्रादेवा आसन् दानव दैत्याश्च दस्यवः पण्यः ॥ ३ ॥

अफरीकाद्या देशा दैत्यानां दानवानां च ।

फीनीशिया पणीनां दस्यूनां हेमकूटाद्याः ॥ ४ ॥

अथ देवानां यावान् देशः सा द्यौः स हि स्वर्गः ।

यस्त्विह मनुष्यदेशः सा पृथ्वी भारतं वर्षम् ॥ ५ ॥

यद्यप्यासन् स्वर्गं स्वर्णरसंज्ञा अदेवदेवान्ये ।

किंतु न तेषां देशो भारतवर्षं मनोः प्रजा नैताः ॥ ६ ॥

वेदोक्तसंग्रामाणामारम्भकनिमित्तभेदात्—

पाञ्चविध्यम्

वेदग्रन्थे कथिताः समराः सर्वेऽपि पाञ्चभेदाः स्युः ।

१ २ ३ ४

देवानां तैः पाणिभिर्दानवदैत्यैश्च दस्युभिश्चाय्यः ॥ १ ॥

सूर्यश्चन्द्रः पृथिवी गावश्चेति हि चतुष्टयं तेषाम् ।

देवानामसुरैः सह निमित्तमन्योन्यसंमर्दं ॥ २ ॥

देवाः सूर्यं दासैः, पाणिभिर्गोवृद्धिसोमके दैत्यैः ।

क्षित्यर्थे दानवकैराय्यैर्युधुः प्रकीर्णविषयेषु ॥ ३ ॥

आर्याणां समान्यैः संघर्षं नातिवृत्तोऽभूत् ।

पण्यादिभिस्त्वनायैश्चिरहानिकरा हि संगरा घोराः ॥ ४ ॥

तेष्वपि विशेषतो द्वे युद्धे आस्तां महारम्भे ।

भूम्यर्थे संग्रामाः सूर्यार्थं दस्युयुद्धानि ॥ ५ ॥

इत्थं पञ्चविधा ये संग्रामा यत्र तत्रोत्तम् ।

सर्वेषु तेषु देवा एकत आसन्नयान्यतोऽदेवा ॥ ६ ॥

६—विप्रकीर्णाऽर्थे देवानामार्यैः संग्रामः ।

आर्याणां कचिदार्यैः संग्रामाः केचिदासन्न प्राक् ।

सोमहता गुरुपत्नी यथेन्द्रवन्णाभिर्मर्देतुरभूत् ॥ १ ॥

गुर्वद्विरो द्वेपवशाद् भृगुस्तथा सोमस्य पत्नं जगृहे घृनोऽसुरैः ।

भृगोः पितासी वरुणो भृगुं गतो चाज्यो गुरोरिन्द्र इमं सुहृन्तम् ॥ २ ॥

देवेश इन्द्रो वरुणोऽसुरेशस्ततश्च देवासुरयो प्रमर्दः ।

गन्धर्वराज्याश्रितमन्द्रिसभ्या समेत्य तन्निर्गन्धनत्र चक्रुः ॥ ३ ॥

“अकूपारः सलिलो मातरिश्वा गीदुर्दान्तप इन्द्रो मये भूः ।

तेऽवदन् प्रथमा ब्रह्म किल्बिषे ज्योतिर्देवी प्रजनना मृतेन ॥ ४ ॥ (१२१२)

“सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजायां पुनः प्रायच्छन्मणीयमानः ।

अन्वर्तिता वरुणोमित्र आसीदग्निर्होता इन्द्रगुण निनाम ॥ ५ ॥ (१२१३)

सोमान्तः पुरतोऽग्निर्मनुष्यपोन्नम्रजायां ताम् ।

तारां करे गृहीत्वा गुरवे प्रत्यर्पयामास ॥ ६ ॥

“इत्तेनैव प्राह्य आधिरस्या ब्रह्मजायेयमिति वेद्योचनः ।

न दूताय प्रह्ये तस्य एषा तथा राष्ट्रं गुपितं जग्विषम् ॥ १ ॥

देवा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्त ऋषयन्पमे ये निष्टुः ।

भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्वा दशति परमे मोक्ष ॥ २ ॥

ब्रह्मचारी चरति वेविषद् विषः स देवानां भग्न्येवम् ॥ ३ ॥

तेन जायामन्वचिन्दद् घृह्मपति मोक्षेन नृतां सुतं न देव ॥ ४ ॥

पुनर्वै देवा अददुः पुनर्ननुष्या ज्ञः ।

राजानः सत्यं कुरुवाना ब्रह्मजायां पुनर्ददुः ॥ ५ ॥

पुनर्दाय ब्रह्मजायां कृत्वा देवैर्निकिल्बिषम् ।

ऊर्जं पृथिव्या भक्त्वा योरुगायमुपासते ॥ ११ ॥

आथर्वणे च पञ्चमकाण्डे सूक्ते तु सप्तदशे ।

ताराहरणाख्याने मन्त्रा एकादशान्ततोऽधीताः ॥ १२ ॥

तत्राकूपाराद्यैस्तदा व्यवस्थापकैः सभ्यैः ।

ब्रह्मस्त्रीसंवन्धे ध्रुवा व्यवस्थापिता नीतिः ॥ १३ ॥

ब्राह्मणजायापद्धता राष्ट्रे जनयतितरां बहून् दोषान् ।

ब्राह्मणजाया तस्मादत ऊर्ध्वं नापहरणीया ॥ १४ ॥

“यामाहुस्तारकैषा विकेशीति दुच्छुनां ग्राममवपद्यमानाम् ।

सा ब्रह्मजाया विवुनोति राष्ट्रं यत्र प्रापादिशश उल्कुपीमान् ॥ १५ ॥

ये गर्भा अवपद्यन्ते जगद् यच्चापलुप्यते ।

वीरा ये वृहन्ते मिथो ब्रह्मजाया हिनस्ति तान् ॥ १६ ॥

उत यत् पतयो दश स्त्रियाः पूर्वे अब्राह्मणाः ।

ब्रह्मा चेद्वस्तमग्रहीत् स एव पतिरेकधा ॥ १७ ॥

ब्राह्मण एव पतिर्न राजन्यो न वैश्यः ।

तत् सूर्यः प्रव्रजन्नेति पञ्चभ्यो मानवेभ्यः ॥ १८ ॥

नास्य जाया शतवाही कल्याणीनल्पमाशये ।

यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजाया चित्या ॥ १९ ॥

न विकर्णः पृथुशिरास्तस्मिन् वेश्मनि जायते ।

नास्य क्षता निष्कग्रीवः मूनानामेत्यग्रतः ॥ २० ॥

नास्य श्वेतः कृष्णकणाधुरियुक्तो महीयते ।

नास्य क्षेत्रे पुष्करिणो नाण्डीकं जायते विसम् ॥ २१ ॥

नास्मै पृश्निं विदुहन्ति येऽस्या दोहमुपासते ।

यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजाया चित्या ॥ २२ ॥

नास्य घेनुः कल्याणी नानङ्वान् सहते धुरम् ।

विजानिर्धत्र ब्राह्मणो रात्रि वसति पापया ॥ २३ ॥

७—गवार्थे देवानां पणिभिः संग्रामः ॥ २ ॥

गावो बृहस्पते. प्राग् बलेन पञ्चादिमाञ्च देवानाम् ।
 पणिभिर्मुपितास्ता. पुनरादातुं घोरत्रिहः सनभूत् ॥ १ ॥
 “यदा पणिं ररावसो निवाधत्स महौ त्रसि ।
 नहिन्त्वा कश्चन प्रति ॥ (८ । ६४ । २) ॥ २ ॥
 अयं ते मालुपे जने सोमः पुत्सु सूयते ।
 तस्ये हि प्रद्रवा पिव ॥ (८ । ६४ । १०) ॥ ३ ॥
 अयं ते शर्य्यणावति सुपो मातामधिप्रिय ।
 आर्जीकीये भदिन्त मः ॥” (८ । ६४ । ११) ॥ ४ ॥
 इत्थं पणिनिग्रहणे विपाड् विनिर्गन्गिरी कृतं सवेगम् ।
 पणिसरमासंवादो दशमेऽष्टशते ॥ (१० । १०८) प्रदर्शितः सूते ॥ ५ ॥
 ३—भूम्यर्थे देवानां दैत्यदानवैः संग्रामः ॥ ३ ॥

“तत्र प्राक् प्रक्रान्तयज्ञोपयुक्तभूमिर्देवदायत्यम् ।”
 देवा असुराः सर्वे प्राक् सयुजः सह वसन्त एवासन् ।
 देवाः शान्ता विबुधा असुरास्त्यासन् महोद्धता चलिनः ॥ १ ॥
 सर्वा पृथ्वीं प्रवला आक्राम्यन्तानुरा र्याह ।
 देवास्तत्र विरोधं चक्रुस्तद्भागलाभाय ॥ २ ॥
 असुरा ऊचुर्यावद् भूमियज्ञाय विष्णुविधृतास्ति ।
 देवेभ्यो दास्यामो वेदिमिता तावदेव भूमिमिन्मन् ॥ ३ ॥
 नाकविभागे कश्चिद् यज्ञविधानाय त्रिपुणुना निवृत्त ।
 खर्वः प्रदेश आसीत्तावन् प्रतिजतिरेऽनुरात्तेभ्य ॥ ४ ॥
 देवास्तदौषधीनां मूलान्युच्छिद्य पूर्वपश्चिमतः ।
 महतीं वेदीं कृत्वाऽऽह्वनीयं पूर्वतोऽन्यग्यु- ॥ ५ ॥
 यज्ञोपकरणभगैराच्छन्धतां महावेदीम् ।
 देवयजनमयभूमिं श्लब्ध्वा लोकेऽस्मिन्निर्व्वजन् ॥ ६ ॥
 एतद्वाजसनेयनाहणके श्रूयते चरितम् ।
 काण्डस्य प्रथमत्य प्रपाठके तु द्वितीये हि ॥ ७ ॥ (१०८ । १२)

६—देवत्रैलोक्यादसुराणां बहिष्कारः ।

अररुदेवो मानुषभूमोऽन्युषितो निराकृतः संततः ।
 ऐच्छद्विषमुपगन्तं किन्त्वग्नि स्तं न्यपेधयत् तस्मात् ॥ १ ॥
 तदपारुमिति मन्त्रव्याख्याने शतपथे कथितम् ।
 काण्डस्य प्रथमस्य प्रपाठके तु द्वितीये च ॥ २ ॥ (शत० १ । २)

१०—देवयजनभूमैस्त्रैलोक्यविभक्ताया ऐश्या संज्ञा । (ऐशिया)

भारतवर्षं पृथिवी हैमवर्तं वर्षमन्तरिक्षं स्यात् ।
 उत्तरमर्द्धं यावत् कुरुवर्षान्तं त्रिविष्टपं तु द्यौः ॥ १ ॥
 ब्रह्मणं एकं विष्टपमपरं विष्णोस्तृतीयमिन्द्रस्य ।
 एभिस्त्रिभिरधिपतिभिः स्वर्गो लोकस्त्रिविष्टपं भवति ॥ २ ॥
 अपि मैत्रिसंहितायां विष्णुमुखानामयं स्वर्गः ।
 असुरान् प्रणुद्यलब्धः प्रथमचतुर्थे निरुक्तोऽस्ति ॥ ३ ॥ (मैत्रा० सं० १ । ४)
 देवेभ्यस्त्रैलोक्यं यावद् व्यभजत् स्वयंभूः सः ।
 तदभूत् प्रसिद्धमासुरभाषायामैशिया नाम ॥ ४ ॥
 ईशो मनुः स्वयंभूस्त्रैलोक्येऽस्मिन् स्वयं न्यवसत् ।
 तस्मादियं त्रिलोकी प्रथिताभूदैशिया नाम्ना ॥ ५ ॥

११—“दहरैश्या स्वार्थंभुवी ।” (ऐशियामाइनर)

त्रैलोक्यमैशियाख्यं देवेभ्यो वसतयेऽभवन्नियतम् ।
 तस्यान्तरतः जुष्टेऽशियाख्यदेशः स्वयंभुवोस्य मनोः ॥ १ ॥
 सोयं प्रथमो देशस्तत्र प्रथमे नरा अभवन् ।
 अथ जलप्लावनं नौ स्तव्याऽद्भौ चाक्षुषेऽन्तरं हि मनोः ॥ २ ॥
 तारसशैलात् प्राच्यां योऽयं शैलोत्तरारातः ।
 मत्स्यस्तत्र हि चाक्षुषमनुनौकां शृङ्गतो दधे ॥ ३ ॥

निपथकुलाद्रेः शाखाशैलः पश्चादरारातः ।

तत्पश्चादिह तारसः शैलोऽस्ति च रोमके देशे ॥ ४ ॥

सप्तत्रिंशोऽंशोऽथोज्जयनान् तारसः स पश्चिमतः ।

एकत्रिंशांशान् पट्चत्वारिंशदंशान् ॥ ५ ॥

पश्चिमसमुद्रकूलप्रान्ते स हि तारसः शैलः ।

निपथकुलाद्रेः पश्चिमसीमा सेयं त्रिलोक्याश्च ॥ ६ ॥

आसीत् तारकनामा पुरोऽसुरस्त्रिपुरनिर्माता ।

तारकनिवासहेतोस्तारसशैलोयमाख्यातः ॥ ७ ॥

वज्राङ्गापरनामा तारो नामाऽसुरः पूर्वम् ।

आसीत् तस्य च तारकनाम्ना पुत्रोऽभवत् प्रवत् ॥ ८ ॥

ब्रह्मकृपावशतः स हि शार्विकतीर्थे महीसमुद्रतटे ।

स्वमुपनिवेश चक्रे तारभ्याख्ये महीधरप्रवरं ॥ ९ ॥

तारस्तस्य पितासीत् तन्मान् स्वावासपर्वतस्यास्य ।

तारस्येत्यभिधानं चक्रेऽसौ तारको मन्ये ॥ १० ॥

तारस्य पर्वतोऽयं यस्मिन् प्रान्तेऽस्ति तं पुरा प्राहुः ।

शार्विकतीर्थं नाम्ना स्कान्दुमारं भृतं खरा (२२) गते ॥ ११ ॥

तं च प्रान्तं व्यदधान्मेरुसमं मेरुसममूत्रम् ।

दैवं स्वर्गमिवासुरमेतं स्वर्गं स नामतश्चक्रे ॥ १२ ॥

पृथ्व्यन्तरिक्षकं द्यौरित्थं देवान्भितोरमानेन ।

तत् प्रतिष्ठत्या त्वसुरास्त्रिपुरं व्यदधुर्मतीन्मुद्रतटे ॥ १३ ॥

त्रिंशे तूरगिरौ भुवि लौही त्रिपुरी तु राजनी त्रियनि ।

पञ्चत्रिंशे सप्तत्रिंशे द्विपि तारसे निर्गं ईमी ॥ १४ ॥

देवस्वर्गं त्र्यंशशब्देनोत्तुः पुरोऽग्रा गतम् ।

३०

ऐश्याशब्देनैव प्रोक्तुः स्वर्गं तन्मानुषं गतम् ॥ १५ ॥

१६—ब्राह्मणदेशान्त्रितोदय गिर्याः ।

दायविभागे ब्राह्मणं देवेभ्यस्त्रीति दर्शं राज्ञो गतम् ।

तद्वत् त्रीनमुरेभ्योऽध्यन्त्यान् देवान् राज्ञो गतम् ।

विपुलास्त्रयः प्रदेशा असुरेभ्यो येऽपितास्ते तु ।
अमरौकोऽप्यपरौको यवरूपश्चोदिता असुरैः ॥ २ ॥

१३—“देवत्रिलोक्यामसुराक्रमणम् ।”

असुरास्तत्र बैलिष्ठाः स्वान् लोकान् सम्यगासाद्य ।
दैव्यामपि त्रिलोक्यामाचक्रमिरे हठादनीतिस्थाः ॥ १ ॥
स्वायंभुवं तु देशं प्रकल्प्य तीर्थं मनुग्रणामभिषात् ।
असुरास्ते मनुसविधे यातायातं प्रचक्रिरे प्रायः ॥ २ ॥
क्रमशो विरोधमाप्ता अफरीकातोऽप्युपागता असुराः ।
स्वायंभुवमनुदेशानैश्यामायिनरसंज्ञकानजयन् ॥ ३ ॥
तस्मिन् देशे योऽभूद्देवासुरविग्रहस्तत्र ।
असुरा व्यजयन्तामी तेन ततः प्रान्त आसुरः सोऽभूत् ॥ ४ ॥
पूर्वं काले केचिदासन्न देवा देवेभ्यो यैस्ते जिताः सर्वदेशाः ।
तेषां वंशे रोमकाद्या अभूवन्तेऽर्वाक्कालेऽन्यान्यरूपैर्विभेजुः ॥ ५ ॥
असुरो रोमक आसीत् तन्नाम्ना रोमकोऽभवद्देशः ।
तद्वश्यैरिह पश्चात् प्रान्तविभागोऽसुरैः क्लृप्तः ॥ ६ ॥
आर्मीनिया च कुर्दिस्थानं वा शामदेशश्च ।
अर्वः फीलिस्थानं मेशोपोटेमिया चेति ॥ ७ ॥
आर्मीनियाप्रदेशे योय शैलोऽस्त्यरारातः ।
जूदीपर्वत उक्तो म्लेच्छैः पूर्वं स युद्धहेतुत्वात् ॥ ८ ॥
जूदीशैलप्रभृतिर्देशो भूमध्यसागरान्तो यः ।
देवासुरसंग्रामास्तत्रैवासन् सुविस्तृते प्रान्ते ॥ ९ ॥
देवासुरसंग्रामाः कुर्दिस्थाने वभूवुरधिकाः प्राक् ।
कतिधा देवाः कतिधा त्वसुरा देशानिमान् जिग्युः ॥ १० ॥
असुराणां बलमधिकं मेशोपोटेमिया देशे ।
तस्मादसीरियेति प्रख्यातोऽभूदयं देशः ॥ ११ ॥
ये कालकञ्जकालकदौर्द्धमौर्याश्च कालकेयास्ते ।
कालदियाख्ये देशे (केलडिया) न्यूपुर्यमिराक इत्याहुः ॥ १२ ॥

असुरागमनद्वारं यत् आसीच्छामदेशोऽयम् ।

तेनारुध्यत स सुरैस्तस्मादुक्तः स सीरिया नान्ना ॥ १३ ॥

१४—इन्द्रविष्णुभ्यां वराहामुरप्रनीक्षणः ।

सर्वत्र देवानसुराः पुरस्तान्न्यपीडयन् तत्प्रतिकारहेतो ।

देवा अपीमानसुरान्निजघ्नुः स एष देवासुरसंग्रहार् ॥ १ ॥

स्वर्गे सुराणामधिप स इन्द्रः सर्वाः प्रजाः प्रत्यहभोजनेन ।

तद्रक्षणोनापि सभाजयंस्ता न्ययोजयत् कर्मसु नित्यमासाम् ॥ २ ॥

संवत्सरान्येऽहि सत्रालवृद्धाः प्रजा अगण्यन्त तदर्थमजम् ।

संवत्सरोपक्रमदेयमासीत् तद्वाममारुहति वामदेव ॥ ३ ॥

धनं गृहं मार्गसरो वनादि वा सर्वं पृथक् रुद्रगणैररक्ष्य ।

रुद्रा अनन्ता अभवन प्रभुस्त्वभूदीशान एको दिवि देवमंसदि ॥ ४ ॥

वामान्नरक्षाऽधिकृतो बभूव य स वामदेव रज्जु नामनोऽनन ।

वामं तदन्नं परिरक्षितं वसोर्धारानगर्या ध्रियते न्न नक्षितम् ॥ ५ ॥

ज्येष्ठः सुतो ब्रह्मण औरसो वसोर्धारानगर्या-पिनिशुक्तः प्रावर्भा ।

ओंकारं नामं पदाज्ञया प्रजास्वन्नं वितीर्णं भवति न्न तन्मृ ॥ ६ ॥

तदन्नमाहर्तुमनेकधा व्यधादुपद्रवं दानवस्यै प्रादुलम् ।

ओंकार एषः प्रतिचक्र अन्नम् स वामदेव प्रहर्म्मन्मानुसम् ॥ ७ ॥

एमूपसंज्ञस्त्वसुरो वराहोपायस्तदासीद् गिरिनिजगम् ।

स्थितः परस्तात् स हि वाममन्नं क्रमात्तदाग्रस्य जहार मृ ॥ ८ ॥

यासीद् वराहस्य पुरी तथा वनोर्धारानुरी या पवि चन्द्रे ॥ ९ ॥

पुर्योऽश्ममण्यो बभूरेकविंशतिर्यामं स तामा पत्नी रुद्रोप ॥ १० ॥

यो लोकपालोन्नतुलस्य विष्णुत्पत्तौ मुधन्मां नगनि पम् ॥ ११ ॥

श्रुत्वाऽसुराक्रान्तिमयं जगामाऽविलान एमूपप्रान्ते ॥ १२ ॥

अन्वेपयन्विष्णुमियाय चेन्द्रस्तत्रैव ज्ञानेन वगम् ॥ १३ ॥

इन्द्रश्च विष्णुश्च विधाय मन्त्रं स्वं स्वं पूजयन् ॥ १४ ॥

उरुक्रमो विष्णुरयं पुरस्तादावर्त्तमे चानुगते ॥ १५ ॥

वराहमातु सधनत्रयार्थं प्रवृत्तजनेन तार ॥ १६ ॥

महानसे यत् पचतं गृहे वा चावन्नवर्गो निहितोऽस्य मात्रा ।

तत्सर्वमेपोऽपजहार विष्णुः क्षीरौदनं वा महिषान् शतं च ॥ १३ ॥

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।

इति विष्णोः क्रियानीतिः सोन्नमन्नमुपोऽहरत् ॥ १४ ॥

इन्द्रः पुरीस्ता व्यधमद् गिरीस्तान्दुर्गान् परास्थन्नजघान-योद्धुम् ।

अविध्यदेमूषवराहवज्रस्थलं गतप्राणममुं स चक्रे ॥ १५ ॥

स वाममोषे निहते वराहे पुरीषु तस्यादममयीषु गुप्तम् ।

वामं यदन्नं मुषितं तदासीत् तत् सर्वमप्याहरदेष विष्णुः ॥ १६ ॥

ऋक्संहितायां प्रथमे तु मण्डले तदेकषष्टिप्रमितेस्ति सूक्तके ।

सूक्तेऽष्टमस्यास्ति च सप्तसप्ततिप्राये तदाख्यानमिदं प्रदर्शितम् ॥ १७ ॥

“अस्येदु मातुः सवनेषु सद्यो महः पितुं पपिवाञ्चार्चन्ना ।

मुषा यद् विष्णुः पचतं स ह्रीमान् विध्यद्वराहं तिरो अद्रिमस्ता ॥ १८ ॥

विश्वेत् ता विष्णुराभरदुरुक्रमस्त्वेपितः ।

शतं महिपन्क्षीरपाकमोदनं वराहमिन्द्र एमुपम्” ॥ १९ ॥ [८ । ७७ । १०]

व्याख्यातमेतद्धयपि तेत्तिरीयके षष्ठद्वितीयस्य तुरीयभागके । [तै० ६ । २ । ४]

निदर्शनं तावदिदं प्रदर्शितं तथा न्ययुद्धान्यपि कानिचिद् विदुः ॥ २० ॥

“विष्णुर्यज्ञो देवेभ्य आत्मानमन्तरधात् तमन्यदेवता नाविदन् ।

इन्द्रस्त्ववेत् । विष्णुरिन्द्रमन्नवीन्—को भवानिति । इन्द्रोऽन्नवीत्—

दुर्गाणामसुराणां हन्ताऽहम् । भवान् कः । विष्णुरन्नवीन् ।

अहं दुर्गादाहर्ताऽस्मि । त्वं तु दुर्गहन्ताऽसीत्यतो वराहमसुरं जहि ।

स हि वराहो वाममुष एकविंशत्या पुरां पारेऽश्ममयीनां वसति ।

तस्मिन्नसुराणां वसुवाममस्ति । तत् इन्द्रस्ताः पुरो भित्वा वराहस्य हृदयमविव्यत् ।

ततस्तत्र यदासीत्—तद्विष्णुराहरत्” ॥ २१ ॥

यज्ञोन्नमन्नस्य पतिः स विष्णुर्देवनिनुकृष्वेव वराहमागात् ।

किं कर्तुं कामोऽत्र भवानुपागादित्याह यत् ग्राह भवान् क एवम् ॥ २२ ॥

भूयोऽप्येवंदेवतानां त्रिलोक्यामाक्रम्यन्त्युग्रचेष्टा अदेवाः ।

इन्द्रो विष्णुस्तत् प्रतीकारहेतोरास्तां नित्यप्रोद्यतौ धर्मधीरौ ॥ २३ ॥

इन्द्रस्य कर्तव्यं कर्माख्यातं स्कान्दे कौमास्तुडे एवोन्निशाध्याये ।

“इन्द्रो दिशति भूतानां बलं तेजः प्रजा. नुव्वम् ।

प्रजां प्रयच्छति तथा सर्वान् दायान् सुरेश्वर. ॥ १ ॥

दुष्टं तानां स हरति वृत्तरथानां प्रयच्छति ।

अनुशास्ति च भूतानि कार्थ्येण बलवत्तर ॥ २ ॥

अमूर्त्यं च भवेत् मूर्त्यस्तथाऽचन्द्रे च चन्द्रमा ।

भवत्यग्निश्च वायुश्च पृथिव्यां जीवन्मृतम् ॥ ३ ॥

एतदिन्द्रेण कर्तव्यमिन्द्रो हि विपुल बलम् ॥ इति ॥

१५—देवासुराणां द्वादश महामंश्राः ।

प्रत्यक् कृष्णादन्धुवे काश्यपीयादार्मन्यारये मौरियाऽग्नेतिर्याः ।

स्वर्गे भूत्यां चात्र देवासुराणां मन्त्राः प्राज्ञान्मन्त्रान् दत्तम् ॥ १ ॥

(१) (२) (३) (४)

आडीवक. कोलाहल, हलाहल. जलमिन्मन्त्रान्मन्त्रम् ।

(५) (६) (७) (८) (९) (१०)

त्रैपुर, मान्धक, तारक चात्र. पञ्चमुद्र दन्तिदत्तम् ॥ २ ॥

(११) (१२)

हैरण्याक्ष, नृसिंहावेते द्वयम् पुगायुने जना ।

देवासुरसंग्रामे इतरेऽयमवन्नि लुप्रा ॥ ३ ॥

यद्यपि वेदत्रये स्पष्टं त इमे न हन्त्यन्ते ।

किन्त्वनुमिनुमो लुप्तान् नन्नि पुगान्तिर्याः ॥ ४ ॥

आग्नेयस्याध्याये षट्सप्तजनिपुङ्गवः सन्ति ।

मात्स्यस्य सप्तचत्वारिंशः चात्र सन्ति ॥ ५ ॥

निजघनान्धकमसुरं भगवान् नृ. सन्ति ।

त्रैपुरयुद्धेऽप्येष न्ययधीन् त्रिपुगान्तिर्याः ॥ ६ ॥

उत्तरशामप्रान्ते निरपूली नाम सन्ति ।

तन्मन्ये त्रिपुरं स्थानं तत्र त्रिपुराणे नि. ॥ ७ ॥

इन्द्रेण हतो वृत्रस्त्वष्टुसुतो वृत्रवधसमरे ।
 निहतश्च विप्रचित्तिर्मायाछत्रः सहानुजो ध्वजके ॥ ८ ॥
 हालाहले तु घोरा निहता इन्द्रेण दानवा दैत्याः ।
 रजिना नहुषभ्रात्रा कोलाहलपर्वते हता दैत्याः ॥ ९ ॥
 इन्द्रार्थे तु वराहो जघान विष्णुर्हिरण्यक्षम् ।
 नरसिंहोऽपि च विष्णुर्हिरण्यकशिपुं जघान दैत्येशम् ॥ १० ॥
 द्वासप्ततिलक्षैरयमशीतिसाहस्रसंयुक्तैः । (७२८००००)
 सैन्यैर्हिरण्यकशिपुर्भारतवर्षे पुराक्रामीत् ॥ ११ ॥
 इन्द्रस्य सैनिकानां संख्यानं न स्मरन्त्यत्र ।
 सैनिकयुद्धे देवा दैत्यादस्मात् पराजिता अभवन् ॥ १२ ॥
 भारतवर्षे दैत्यो हिरण्यकशिपुर्वलात्प्रविष्टोऽभूत् ।
 मूलस्थानं नगरं निर्मायैषोऽकरोद् राज्यम् ॥ १३ ॥
 आसुरभाषाशब्दो मूरः सूर्यार्थकस्ततो मूराः ।
 सूर्योपासकदैत्यास्तत् स्थानं सूर्यधामाह्वयम् ॥ १४ ॥
 मूलस्थानं नगरं हिरण्यकशिपोस्तदद्य मूलतानम् ।
 ब्रूते तत्र हि चतुरः पुरुषान् व्याप्यास्थितं राज्यम् ॥ १५ ॥
 आदौ हिरण्यकशिपुः प्रह्लादोऽन्यो विरोचनोऽथ बलिः ।
 चक्रे राज्यं तदिदं बलिसमये ध्वंसितं तु सुरैः ॥ १६ ॥
 प्रह्लादस्तु तदानीमनीतिमालक्ष्य तत्र दैत्यानाम् ।
 पितृद्वेषी विष्णोः पत्नं जग्राह शान्तिकामाय ॥ १७ ॥
 शान्त्यै युद्धनिवृत्त्यै प्रह्लादाऽनुमतिमाप्य विष्णुरयम् ।
 अन्तः प्रविश्य योगात् सिंहाकृतिरिह जघान दैत्येशम् ॥ १८ ॥
 पणवतिस्तु कलानामसुरैर्यद्वत् प्रकाशिता पूर्वम् ।
 तद्वद्देवैराविष्कृतास्तु विद्याश्चतुः पट्टिः ॥ १९ ॥
 तत्रैका विद्यासीदाकृति परिवर्तिनी देहे ।
 विष्णुर्गुण्या वराहोऽभवद्विचित्रश्च नरसिंहः ॥ २० ॥
 अदधाद् रूपं विष्णुर्मोहिन्याश्चारुकामिन्याः ।
 सेयमपूर्वा विद्या देवयुगे योगमायोक्ता ॥ २१ ॥

अत्यद्भुतं स्वरूपं स नारसिंहं विधाय चट्टितु ।
 स्कन्धादाविरभूत् तद्विज्ञेयं योगमायात ॥ २२ ॥
 नारदसुपाञ्चरात्रे पञ्चविधं ज्ञानमात्मानम् ।
 निविषय यज्ज्ञानं परतत्त्वं ब्रह्म तच्छुद्धम् ॥ २३ ॥
 कर्मजमगुणब्रह्मज्ञानं परमुक्तिदं तद्वन् ।
 सगुणब्रह्मोपास्तिजमवरचिमुक्तिप्रदं ज्ञानम् ॥ २४ ॥
 दिव्यं ज्ञानं योगजमिदमयं तच्च षोडशधा ।
 अणिमा महिमा गरिमा लघिमेशित्वं यशित्वं च ॥ २५ ॥
 व्याप्तिश्च प्राकान्यं भूतभविष्यत्परोक्षदूरेषा ।
 दूरश्रवणं कायज्यूहः परकायवेशश्च ॥ २६ ॥
 परजीवहरणजीवप्रदानके सर्गकर्तृवाशिन्पम् ।
 संहारकरणमिति तत् षोडशधा योगजं ज्ञानम् ॥ २७ ॥
 अथ पञ्चमं तु विषयज्ञानं न्यूनाधिकं लोके ।
 इन्द्रियसेवाविषयानुराग आत्मोन्नतिश्चेति ॥ २८ ॥
 ज्ञाने पञ्चविधेऽस्मिन् विषयज्ञानं तु चेतने सहजम् ।
 दिव्यज्ञानमृषीणां देवानां योगिनां चासीत् ॥ २९ ॥
 नानाविधार्थनिर्मितिरिव निजरूपान्यता शिष्यम् ।
 स्यात् सर्गकर्तृतायां तेनाभून्नारमित्यपु ॥ ३० ॥
 वाग्वद्ध एष विष्णुः सौहार्द्येनानुगृह्य तं तु तदा ।
 प्रह्लादं तद् राज्यासने प्रतिष्ठापयाम्नात ॥ ३१ ॥
 इन्द्रेण प्रह्लादो विजितोऽमृतमन्यते पश्यन् ।
 इन्द्रेण प्राह्लादिविरोचनस्तारामये निहत ॥ ३२ ॥
 वैरोचनिर्वलिश्च प्रतरां निगृहीत इन्द्रविष्णुभ्यम् ।
 एते बहुभिर्वर्षे पञ्चैकस्मिन् एतेऽभयम् रमन्त ॥ ३३ ॥
 पट्टिसहस्रोपेतं द्वे लजे प्रस्तुते ज्ञान्ताम् । [२९:०००]
 बलिदैत्यसैनिकानां रणाक्षये तत्र दग्निज्ये ॥ ३४ ॥
 यावच्छण्डामर्कं द्वावलुरापां पुण्येऽन्तर्गताम् ।
 असुरान्तावद्विजिता अभवन् ज्येष्ठास्तुतः ॥ ३५ ॥

यदवधि भृगुर्वृहस्पतिसहस्रप्रतिभः पुरोहिन्तस्तेषाम् ।

अभवत्तत आरभ्य व्यजयन्तेहासुराः प्रायः ॥ ३६ ॥

१६—मध्यतो बहुधा विजयलामेऽप्यन्ततो देवानां पराजयः ।

स्वार्थेकसिद्धिपरता धर्मान्तरवाधने स्वधर्मत्वम् ।

एतद्द्वयमसुराणां विद्रोहोत्थापने हेतुः ॥ १ ॥

शान्तिप्रियताऽत्यर्थं धर्मे प्रवर्णत्वेमानृशंस्याख्ये ।

एतद्द्वयमार्याणां प्रत्यभिमर्दं पराभवे हेतुः ॥ २ ॥

बुद्धिश्चाक्रमणं च द्वे अप्येते वले भवतः ।

उभयोर्मिथोऽभियोगे विजयः कुत्रेति दुरभिगमम् ॥ ३ ॥

यच्चिरकारि विवेकापेक्षं तज्जीयते बुद्ध्या ।

आक्रमणं सा बुद्धिर्जयति सदा सावधाना या ॥ ४ ॥

यत् क्षिप्रकारि पूर्णोत्साहं तज्जयति नूनमाक्रमणम् ।

समयापेक्षा बुद्धिस्तत्राक्रमणेन जीयते प्रायः ॥ ५ ॥

कर्तुयोग्यमयोग्यं वेति धिया यावदेव विविनक्ति ।

धृष्टस्तावत् सपसैवाक्रम्यार्थं निजं प्रसाधयति ॥ ६ ॥

सूर्यो लुप्तश्चन्द्रो लुप्तः संप्रति न दृश्यते प्रायः ।

दैवतसंस्थालोपोत्तरमसुरैस्तद् द्वयोच्छेदात् ॥ ७ ॥

यज्ञजसिद्ध्या येषामात्मा दैवोऽपरो मनुष्याणाम् ।

कृत्रिम उत्पन्नः स्यात् तेषु मनुष्येष्वभूत्तु दैवत्वम् ॥ ८ ॥

यज्ञक्रियाविलोपादप्रत्युत्पन्नदैवतात्मानः ।

केवलमनुष्यभावा न पुनर्देवा अकथ्यन्त ॥ ९ ॥

स्वर्गः कृत्स्नो मानुषलोकः समभूदशेषदेवाश्च ।

अभवन् मानुषरूपा आसुरधर्मे प्रविष्टाश्च ॥ १० ॥

आसुरधर्मे गमनादेवैरपि भूरभूदियं हीना ।

लोकत्रयव्यवस्थालोपाद् भूर्नाद्य दैवतोधीना ॥ ११ ॥

देवासुरसंग्रामा यत्र यथा यै रभूवन् प्राक् ।

विशदं तद्रष्टव्यं मत्कृतदेवासुरख्यातौ ॥ १२ ॥

४—सोमार्थे देवानां दैत्यैः संग्रामः ॥ ४ ॥

१७—सोमोच्छेदकानुप्रतियोधायं गन्धर्वविनियोगः ।

चन्द्रस्तु सोमवल्लीरूपो यो हेमकूटाद्रौ ।
यज्ञैकसाधनं तद्देवानामुदग्मन्त्रगुरा ॥ १ ॥
यज्ञात् सिद्धौर्द्धवानामनेका दृष्ट्वा यज्ञं यन्मन्त्रं दद्यात् ।
किन्त्वस्मिन्नेतद् यज्ञविज्ञानशिवाग्न्या निद्रि नान्मुपत निदग्मेश ॥ २ ॥
यज्ञज्ञानायोग्यतां स्वस्य दृष्ट्वा जानामर्षां विद्विषन्त्य देवान् ।
तेषां सिद्धौ हेतुभूतस्य यज्ञस्यैव कर्तुं हन्त निर्मूलनानम् ॥ ३ ॥
सूर्यं श्रुत्वा यज्ञविज्ञानहेतुं चन्द्रं भूया तद्विज्ञाने च हेतुम् ।
आक्रम्येते मृत्युचक्रे विहन्तु वामानादौ प्रेत्यामानुष्मान् ॥ ४ ॥
एवं कर्तुं हन्त निर्मूलनानां दैत्यव्रातं सोमयन्त्राण्ययन्त्रम् ।
भूयो भूयो हेमकूटाद्रिदेशान्योद्यन्तुन्ते यथागमि गन्तम् ॥ ५ ॥
इन्द्रः श्रुत्वा सोमवल्लीविनाशं तद्विज्ञानं दैत्यमार्गं च रोदुम् ।
गन्धर्वाख्यानं वासयामास वीरान् सिन्धोः पञ्चाङ्गया च गन्धर्वैः ॥ ६ ॥
गन्धर्वाभ्यं पूषसासनं हिमाद्रेश्चैवावामा नृपयामानुगा ।
तेषां वृत्तिं तां निवर्त्याथ योद्धुं वृत्तिं तेषां गन्धर्वानाम् ॥ ७ ॥
गन्धर्वास्ते तत्र काले त्रिधाऽऽमनं विन्ता यन्ने जेमिन्ने च मन्त्रं ।
दिव्यास्त्रेधोत्कृष्टकर्माणं प्राप्ता मर्त्यान्देहे रुद्राणां यन्मन्त्रं ॥ ८ ॥
१८—सोमसंरक्षणाय दैत्यान् प्रति योद्धे निवृत्ता गन्धर्वाः सन्तुम् ।

स्वर्गं क्रीत्वाः सोमसंरक्षणं वै वृत्तिर्ह्येषामाहरन्ति स्म तेभ्यः ।
 सोमं देवाः दिव्यगन्धर्वभेदानेतानूचे तित्तिरिः पष्टकाण्डे ॥ ३ ॥
 एभ्यो भिन्ना वीरगन्धर्ववर्गा आसन् द्वेधा तत्र मौनेयसंज्ञाः ।
 पातालस्थाः कोटिषट्कप्रमाणा नागैर्द्वेषाद् युद्धमासीत् तेषाम् ॥ ४ ॥
 कलिभीमसेनभीमोग्रसेनपर्जन्यगोपतिप्रयुताः ।
 धृतराष्ट्रसूर्य्यवर्चो वरुणसुपर्णार्कपर्णचित्रस्थाः ॥ ५ ॥
 शालिशिरा अथ नारद्वशिनाविति षोडशैतानि ।
 गन्धर्वाणामासन् मौनेयानां कुलानीह ॥ ६ ॥
 प्राधेयाः पुनरन्ये गान्धर्वाः कोटयः पुरा तिस्रः ।
 सिन्धोः पश्चाद्देशे गान्धारारण्ये वसन्ति स्म ॥ ७ ॥
 १ २ ३ ४ ५
 सिद्धः पूर्णो वर्ही पूर्णायुर्वृद्धाचारी च ।
 ६ ७ ८ ९ १०
 रतिगुणसुपर्णविश्वावसवो भानुश्च चन्द्रश्च ॥ ८ ॥
 एते दश कुलभेदाः प्राधेयानां प्रसिध्यन्ति ।
 एषां च राजधानीपुरमासीद् चर्द्धमानपुरम् ॥ ९ ॥
 वल्मीकीये सन्ति रामायणे ते प्रोक्ताः, भ्राता रामचन्द्रस्य येभ्यः ।
 युद्धं वा जित्वा स्वस्य पुत्रद्वये तद् राज्यं सर्वं संविभक्तं व्यधत् ॥ १० ॥
 ते च ते प्राधेया मूजवदाद्यद्रिजातसोमानाम् ।
 सिन्धु सुवास्तु वितस्ता सरस्वती प्रभृति सरिदप्सु ॥ ११ ॥
 बह्मानानां विचितिं रक्षां कर्तुं न्ययुज्यन्त ।
 इत्थं वदन्ति कौषीतकिनः स्वत्राहणे मुनयः ॥ १२ ॥

सुद्रगन्धर्वाः ८	प्रावेयगन्धर्वाः १०	मौनेयगन्धर्वाः १६	दिक्गन्धर्वाः ११
१ हाहाः	१ सिद्धः	१ भीमः	१ मन्त्राग्निः
२ हूहूः	२ पूर्णः	२ भीमसेन	२ प्रमत्तारि
३ हंसः	३ वही	३ उपसेनः	३ मन्त्राज
४ गोमायुः	४ पूर्णायुः	४ कति	४ मूर्धन्यान्
५ नन्दी	५ ब्रह्मचारी	५ पर्जन्यः	५ दधुः
६ तुम्बुरुः	६ रतिगुणाः	६ गोपति	६ मूर्धन्यर्चा
७ चित्रसेनः	७ सुपर्णः	७ प्रयुत	७ दधुः
८ विश्वावसुः	८ भानुः	८ धृतराष्ट्र	८ मन्त्र
	९ चन्द्रः	९ मूर्धन्यर्चाः	९ सुमन्त्र
	१० विश्वावसुः	१० वरुण	१० मन्त्राग्नि
		११ सुपर्ण	११ मित्राणु
		१२ प्रज्जर्ण	
		१३ वगी	
		१४ शार्ङ्गारि	
		१५ नारद	
		१६ चित्रगन्ध	

“गन्धर्वा ह वा इन्द्रस्य सोममज्जु प्रत्ययिता मोक्षयन्ति ।
त उह स्त्रीजामा । ते हा—सुमन्त्राग्निं मूर्धने” ॥ ११ ॥ (१० ॥)

१६—विश्वावसुप्रधानानां गन्धर्वाणामपिपन्थे चन्द्राग्निः ॥

एषां राजाऽभूत् विश्वावसुः प्रातः वैतेजानां मार्गते र न च ॥
भूयो भूयो मार्गरोवे कृतेऽपि प्रातः वैतेजो नो निरन्त ॥ १॥
दैत्यक्रान्तेः सोमरक्षां विधात धातेऽनेत्यागन्धर्वाणां ॥
गन्धर्वाणां शासकं कश्चिदन्धं त्वेवम् सोमं मेऽपि स्तेवति ॥ २ ॥

ब्रह्मा दृष्ट्वा कञ्चिदत्रेस्तु पुत्रं योग्यं युक्तं ब्राह्मवीर्येण तावत् ।

क्षेत्रं वीर्यं धातुमत्राभिपिच्य प्रागास्येनाभ्रामयत् कृत्स्नपृथ्व्याम् ॥ ३ ॥

गन्धर्वाणामौपधीनां च सोमादीनां चक्रे तत्र राजानमेतम् ।

❀ गन्धर्वेऽस्मिस्तं प्रतिष्ठाप्य देशे सोमस्थानं रक्षितुं तं न्ययुङ्क्त ॥ ४ ॥

चन्द्रांशुभ्यो जातमूलं तु सोमं ज्योतिष्मन्तं रक्षितुं यन्नियुक्तः ।

तस्मात् स्वर्गे लोकपालः स भूत्वा चन्द्रः सोमो नामतः ख्यातिमागात् ॥ ५ ॥

पुत्रस्तस्यासीद् बुधो राजपुत्रो नाम्ना ख्यातो हस्तिविद्याप्रवीणः ।

यस्तत्पुत्रोऽभूदिलागर्भजन्मा तस्मादासीच्चन्द्रवंशप्रवृत्तिः ॥ ६ ॥

चन्द्रस्येत्यं चान्तरिक्षावकाशे गन्धर्वाणामाधिपत्ये नियोगम् ।

पूर्णाद्योगं देवतानां च दृष्ट्वा कञ्चित्कालं स्तम्भितास्ते बभूवुः ॥ ७ ॥

२०—दैत्यैः कृतः सोमवल्लीविध्वंसः ।

एवं सोमध्वंसने चान्तरायं दृष्ट्वा दूरोदागमे चान्तरायम् ।

योद्धुं दैत्या यत्नमातस्थिरे ते प्रान्तेऽत्रैव स्वं निवासं विधाय ॥ १ ॥

सैन्यग्रामं ते महान्तं सम्भारञ्च प्राप्य सोत्साहयत्नम् ।

आक्रम्यास्मिन् भारते सिन्धुदेशान् मूलस्थाने स्थापयन्ति स्म राज्यम् ॥ २ ॥

ब्रह्मादोऽस्मिस्तत्पिता तस्य पुत्रस्तत्पौत्रो वा दैत्यराजः प्रसह्य ।

दैतेयान् स्वान् सैन्यचारादिभृत्यान् सोमस्थाने चारणायादिदेश ॥ ३ ॥

तस्मिन्काले दैवयोगेन रुष्टां याज्यं मत्वा चन्द्रसद्माभ्युपेताम् ।

तारां देवाचार्यपत्नीं स चन्द्रो हत्वा देवैर्भस्तिताश्चिन्तितोऽभूत् ॥ ४ ॥

गन्धर्वाणामेव राजा तदासीत् तेषां नीतो स्त्रीषु वैवाहिकोऽयम् ।

नासीद्बन्धः प्रीतिर्दायेन पुंसां स्वीया स्त्रो स्यादेव जह्वे ततस्ताम् ॥ ५ ॥

आक्रुष्टोऽभूद्दैवतैस्तत्र चन्तस्मिन्काले लब्धवेला अदेवाः ।

चन्द्रस्यार्थं साधयन्तः स्वसैन्यैः स्वीये पक्षे चन्द्रमेतं व्यनैपुः ॥ ६ ॥

❀ “सोमो वै राजा अनुष्मिन् लोके आसीद्”—इत्येतरेयब्राह्मणस्य त्रयोदशाध्याये सोमस्य द्यु-
लोकस्थताख्याता । “द्यावापृथिव्योर्वा एष गर्भो यत् सोमो राजा”—इत्येतरेयब्राह्मणस्य चतुर्थाध्याये
सोमस्यान्तरिक्षस्थताख्याता । “सोमो वै राजा गन्धर्वेष्वसीद्”—इत्येतरेयब्राह्मणस्य पञ्चमाध्याये सोमस्य
गन्धर्वलोकस्थताख्याता ॥

पक्षप्राहक्रीत एष श्लथोऽभूत् न्वे कर्णये सेनसत्तरोऽयं ।
 इत्थं दैत्याः सोमवल्लीवितानध्वसे जाताश्चन्द्रवोक्तान् सन्त्या ॥ ७ ॥
 काले काले सोमवल्लीधिनःशे कुर्वन्तिर्त्यन्नमन्वत्र युदान् ।
 दुर्दैर्नीचैर्ब्राह्मवीर्याः प्रशस्ता सौम्या वत्स्यो नाशिता वृन्तान्ता ॥ ८ ॥
 अद्यत्वे यच्चक्षते सिन्धुपारे बोलन्धाटी (Bolan pass) पर्वत प्रान्तभागे ।
 माजन्दारान् नामतः स्यात्तर्शले सोऽय सोमो लब्धयेऽगापि भुञ्जान् ॥ ९ ॥
 किन्तु ब्रूमो नैव सोमोऽस्ति मुख्यो यो ब्रह्मण्य सोम प्रासीत् न नष्ट ।
 यद्वद् ब्राह्मी नाम मण्डूकपर्णीमाहुः केचिन् तद्वदन्य स सोम ॥ १० ॥

२१—सोमप्राधिनिधयेन सुगोन्पादन्तम् ।

अप्राप्य सोमसुराः सोमविधं मातृक विधापयितुम् ।
 असुराधीशं वरुणं राजानं प्रार्थयामासु ॥ १ ॥
 वरुणस्ततः प्रयत्नाद् विनिर्ममे वारुणी मरिराम ।
 पात्यामस्त्वसुरानीति सुरामिमां नामतश्चक्रुः ॥ २ ॥
 एकादशप्रकारा सुरास्ततस्त्वासवाः पृथग् नृपत्यः ।
 भिन्नास्ततश्च शीघ्रं इत्यवरे मादवा मोक्षान् ॥ ३ ॥
 सोमो धृतिविज्ञाने वर्द्धयते संस्क्रोति नन्विभ्यम् ।
 मात्यः सुरा तु हरते तद् विज्ञानं शिरोऽपि दृषयन्ति ॥ ४ ॥

२२—सोमसुगुणप्रकाशका येदमन्त्राः ।

बुद्धिः शौन्यसमृद्धी बलमारोग्यं महत्स्यमभयव्यम् ।
 रिपुदमनक्षमता सुखदीर्घायुष्ट्वे जयः प्रमोदः ॥ १ ॥
 अद्वी हूमे त्वोपधोनामधीशो योऽयं मेनः प्रविशति एतन्ते ।
 यो यस्तस्यासीद् गुणलं प्रगाथं कात्यः सग्यः प्रमोदः प्रमोदः ॥ २ ॥
 स्वाहोरभन्ति वयसः सुमेधा ग्नायो वरिजेविभ्यम् ।
 विश्वे यं देवा इत मर्त्यास्तो नृपुः प्रमोदो नित्यमस्ति ॥ ३ ॥
 अन्तश्च प्रागाः प्रदितिर्नवान्प्रमोदः प्रमोदः ॥ ४ ॥
 इन्द्रविन्द्रस्य सत्यं जुषातः प्रमोदः प्रमोदः ॥ ५ ॥

अपाम सोमममृता अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान् ।
 किं नूनमस्मान्कृणवदरातिः किमु धूर्तिरमृतमर्त्यस्य ॥ ३ ॥
 शं नो भव हृद आपीत इन्दो पितेव सोम सूनवे सुशेवः ।
 सखेव सख्य उरुशंस धीरः प्रण आयुर्जीवसे सोम तारीः ॥ ४ ॥
 इमे मा पीता यशस उरुष्यवो रथं न गावः समनाह पर्वसु ।
 ते मा रक्षन्तु विस्त्रसश्चरित्रादुत मा स्नामाद्यवयन्त्विन्दवः ॥ ५ ॥
 अग्निं न मा मथितं संदिदीपः प्रचक्ष्य कृणु हि वस्यसो नः ।
 अथा हिते मद आसोममन्ये रेवां इव प्रचरा पुष्टिमच्छ ॥ ६ ॥
 इपिरेण ते मनसा सुतस्य भर्त्तामहि पित्र्यस्येव रायः ।
 सोमराजन्मृण आयूँपि तारीरहानीव सूर्यो वासराणि ॥ ७ ॥
 सोमराजन्मृडयानः स्वस्ति तव स्मसि व्रत्या ३ स्तस्य विद्धि ।
 अलतिं दक्ष उत मन्युरिन्दो मानो अर्यो अनुकामं परा दाः ॥ ८ ॥
 त्वं हि नस्तन्वः सोमगोपा गात्रे गात्रे निपसस्था नृचक्षाः ।
 यत्ते वयं प्रमिनाम व्रतानि सनो मृढ सुपस्वा देववस्यः ॥ ९ ॥
 ऋदूदरेण सख्या सचेय यो मा नरिष्येद्वर्य्यस्व पीतः ।
 अयं यः सोमो न्यधाय्यस्मे तस्मा इन्द्रं प्रतिरमेम्यापुः ॥ १० ॥
 अपत्या अस्थुरनिरा अमी वा निरत्रसन्तमिपीचीरमैपुः ।
 आ सोम अस्माँ अरुह द्विहाया अगन्म यत्र प्रतिरन्त्र आयुः ॥ ११ ॥
 यो न इन्द्रः पितरो ह्रत्सुपीतोऽमर्त्या मर्त्या आविवेश ।
 तस्मे सोमाय हविषा विधेम मृलीके अस्य सुमती स्याम ॥ १२ ॥
 त्वं सोम पितृभिः संविदानोऽनुद्यावा पृथिवी आ ततन्थ ।
 तस्मै त इन्द्रो हविषा विधेम वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ १३ ॥
 व्रातारो देवा अधि वोचता नो मा नो निद्रा ईशत मोतजल्पिः ।
 वयं सोमस्य विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथगा वदेम ॥ १४ ॥
 स्वं नः सोम विश्वतो वयोधास्त्वं रवर्दिदा विशा नृचक्षाः ।
 त्वं नः इन्द्र ऊतिभिः सजोपाः पाहि पश्चात्तादुत वा पुरस्तात् ॥ १५ ॥ (८१४८१-१५)
 एवं कृत्नुर्भागवः सोममस्तौदूनाशीत्या वाष्टपष्ट्यामिते वा ॥ (७६) (६८) ॥
 सूक्ते सम्यङ् मण्डलस्याष्टमस्य प्रायः प्रोचुर्मण्डले वोत्तरेऽन्ये ॥ १६ ॥

२३—इन्द्रभवने प्रत्यहं त्रिंशतः सोमसरसामुपयोगः ।

सोमलतारसपूर्णान्यासन् प्रातिस्विकानि शक्रस्य ।
गन्धर्वरक्षितानि त्रिंशत् स्वर्गे सरांसि क्लृप्तानि ॥ १ ॥
ऐन्द्रे भुक्तिप्रमहे सहभुग् जनता बहुत्वतस्त्रिंशत् ।
सोमसरांसि निपीतान्येकोपक्रमतया भवन्ति स्म ॥ २ ॥
“एकया प्रतिधाऽपिवत् साकं सरांसि त्रिंशतम् ।
इन्द्रः सोमस्य काणुका” ॥१६॥ [८१७७४]
सोमवल्लीस्वरूपम् ।

सुश्रुतचिकित्सितेऽपि च स चतुर्विंशतिविधो विनिर्दिष्टः । (चिकित्सास्थाने २६ अ०)
❀ वल्ली—प्रतानरूपा लुपरूपा वा भवेच्च सोमविधा ॥ १ ॥
पाङ्क्तत्रैष्टुभजागतगायत्राः सांकराश्च काश्मीरे ।
बुद्रकसरसि प्राप्या गिरिषु यितस्तोत्तरेषु चन्द्राख्यः ॥ २ ॥
अपि मुञ्जवान् स शैले मुञ्जवतीहांशुमानयं गिरिषु ।
अपि शर्यणावदादिषु गरुडः श्वेताक्ष इत्याद्याः ॥ ३ ॥
अलवर्जं नामतो यं पर्वतमाचक्षते ग्लेच्छाः ।
सोमस्तत्र च लभ्यत इत्येवं प्रायशः ख्यातिः ॥ ४ ॥
सोमे श्वेत-कीरं प्रवर्तते मूलगः कन्दः ।
रस एतस्यावादुः श्वेतः पीतोऽथ चित्रपृश्निश्च ॥ ५ ॥
सोमलताया दण्डे पञ्चदशैवच्छदा भवन्ति स्म ।
पञ्चदशाहं स्थित्वा ध्रुवं व्यशीर्यन्त षोडशेऽहनि ते ॥ ६ ॥
दर्शे पर्णाभावः प्रतिपदि पर्णोद्गमोऽन्वधः पर्वः ।
प्रतितिथिं पर्णाद्गमनात् पूर्णायां पञ्चदश तानि ॥ ७ ॥
प्रतिपद्यधरे पर्वणि पर्णनिपातः क्रमादुपर्य्येवम् ।
दर्शे पर्णाभावो जोतिष्मन्त्यस्य पर्णानि ॥ ८ ॥

❀ १ गुह्याद्याकारावल्ली । २ उर्वाकाद्याकारः प्रतानः । ३ कण्टकारिकाद्याकार-क्षुपः ।

सोमरसोऽयं पीतो दिव्यां दृष्टिं मनोगतां कुरुते ।
 भूतं भव्यं चार्थं दूरपरोक्षं च दर्शयति ॥ ६ ॥
 सर्वे नूनं मादकाः शीर्षिणो दोषानुत्पाद्यालं घ्नन्ति बुद्धेः प्रभावम् ।
 सोकस्त्वेको मादकः पीयमानः शीर्षणः सर्वान्नाशयत्याशु दोषान् ॥ १० ॥
 मस्तिष्काङ्गं पोषयन्नेष सोमो ब्राह्मं वीर्यं क्षात्रवीर्योपपन्नम् ।
 सृष्ट्वा सूते शिल्पविज्ञानविद्याः सोमस्तत्मादोषधीनामधीशः ॥ ११ ॥

२४—ब्रह्मवीर्यम् ।

ब्राह्मे वीर्यं योगजाः सिद्धयः स्युः सूक्ष्मेऽप्यर्थे भाति विज्ञानमग्र्यम् ।
 धृत्युत्कर्षः स्यात् स्थितप्रज्ञता वा शान्तिर्देवी संपदत्राऽनृशंस्यम् ॥ १ ॥

२५—सौमध्वंसाद् ब्रह्मवीर्यापध्वंसः ।

ब्राह्मं वीर्यं भाति विज्ञानहेतोः सूर्योपास्तेः सोमपेयाच्च यज्ञात् ।
 ब्राह्माद् वीर्यात् त्वेषु सक्तिः प्रवृत्तिः ब्राह्मं वीर्यं सर्वसिद्धेरुपायः ॥ १ ॥
 यद्वह्नासैर्नाशितं सूर्यचक्रं तद्वह्नैर्नाशिता सोमवल्ली ॥
 भूमिः कृत्स्ना दानवैस्तैर्जितेयं हन्तेदानो ब्रह्मवीर्यं निरस्यम् ॥ २ ॥
 विड्वीर्यात्तु क्षात्रवीर्यं वरेण्यं क्षात्राद्वीर्याद् ब्राह्मवीर्यं वरेण्यम् ।
 ब्राह्मं शास्त्व क्षात्रविड्वीर्ययोः स्याद् विड्वीर्यस्य क्षात्रवीर्यं प्रशास्त्व ॥ ३ ॥
 विड्वीर्यं तु प्रायशोऽस्त्यत्र लभ्यं भूयांसो वै सन्ति लोके विशस्ताः ।
 तासां शास्त्व क्षत्रमत्यल्पमाप्यं राजा ह्येको भूयसीनां प्रशास्ता ॥ ४ ॥
 यावत्क्षत्रं किञ्चिदस्तीह लोके तस्मादेतद् ब्राह्मवीर्यं कनीयः ।
 नाना क्षत्रं शास्ति हि ब्राह्मणोऽसावेकः कश्चिद् यो गुरुः क्षत्रियाणाम् ॥ ५ ॥
 किन्तु ब्रूमो भूयसाऽल्पं विनष्टं कर्तुं शक्यं वस्तुधर्मस्तथाऽस्ति ।
 साध्यं श्रेयो दूरमस्तीति मन्दं सिद्धात् पापद्वन्द्यते वा सदेशात् ॥ ६ ॥
 क्षुद्रश्चन्द्रः सूर्यमेतं महान्तं खग्रासे हि च्छादयन् संतनोति ।
 ध्वान्तं सूर्यज्योतिषः स्यान्निरोधस्तद्वद् ब्राह्मं क्षात्रतोऽभूद्विनष्टम् ॥ ७ ॥
 अग्नेर्जातो वद्वितो रक्षितोऽस्माद् अग्नी रक्षत्येष वंशप्रकाण्डः ।
 तत्रैवान्यो वर्षजन्माऽग्निरुग्रं शान्तं चाग्निं वंशमप्याशु हन्ति ॥ ८ ॥

(४)—सूर्यार्थिर्देवानां दस्युभिः संग्रामः ।

२६—तत्र विज्ञानौपयिके सूर्येऽसुरप्रेरितानां दासानामाक्रमणम् ।

देवानामिह सूर्यादुदगाद् वैज्ञानिक प्रभाव म ।
 सौमिकयज्ञवशात् ते प्रापुर्लोकानि भूतिम् ॥ १ ॥
 वलिनोऽसुरास्त एते क्हाविभूति महाप्रभावं च ।
 देवानामिह दृष्ट्वा यज्ञं कर्तुं यतन्ते स्म ॥ २ ॥
 विज्ञानदुर्वलत्वादप्रारयन्तस्तु ते यज्ञे ।
 विज्ञानोदयनार्थं सूर्येऽस्मिन्नाक्रमन्ते स्म ॥ ३ ॥
 सूर्यः पृथ्व्यां चक्रद्वयरूपः कश्चिदासीत् प्राक् ।
 देवैर्विनिमित्ततं हतुं दासान् न्ययोजयन्नसुरा ॥ ४ ॥
 यद्देवदासीयनियोधनं तद् यैर्यत्र येषामभवद् यदर्थम् ।
 तज्ज्ञायते वेदवचोऽवधानात् तत्किञ्चित्त्रापि निदर्शयामः ॥ ५ ॥
 प्राक् स्वर्णरं सप्तगुमभ्यवोचद् वैकुण्ठ इन्द्रः प्रमहेऽमराणाम् ।
 एवं कात्स्न्यतो जीवनकर्म तस्मिन् अवर्णयहासकुलैः स्वयुद्धम् ॥ ६ ॥

२७—मनुष्यामनुष्यभेदात् दासानां त्रैविध्यम् ।

स एष दासस्तु न देव आसीन्न दानवो नापि मनुष्य आसीत् ।
 आर्यैर्द्विपन् कश्चिदनार्यवर्ग्यं पृथग्वदेवैष विभाग आसीत् ॥ १ ॥
 वर्वरभिन्नाः सभ्या आर्या दासा इति द्विविधाः ।
 आर्या बहुधा भिन्ना देवपितृप्रभृतयः कथिताः ॥ २ ॥
 सभ्येष्वेकेऽनार्या जाता दासा हि दस्यवो वृत्त्या ।
 चौर्याद्भ्याच्च दैन्यात् पलाय्य दासा उपत्तयिणः ॥ ३ ॥
 अमनुष्याश्च मनुष्या इत्थं दासा असी द्विविधाः ।
 भारतवर्षाभिजना वन्यनिपादा मनुष्यदासाः स्युः ॥ ४ ॥
 तेषामार्यैः साकं कापि कदापि श्रुतं न युद्धमिदम् ।
 नैते जिता न चैते भारतवर्षान्निराकृता न हता ॥ ५ ॥
 दस्युनियुद्धादस्मात् प्रागेवैषां बहोःकालात् ।
 सहवासोऽनार्याणामार्याणां भारतीयानाम् ॥ ६ ॥

मनुना स्मृतौ त एते स्मर्यन्तेऽद्यापि दृश्यन्ते ।
 भारतवर्षवहिःस्थास्त्वमनुष्या गिरिचरा दासाः ॥ ७ ॥
 तेषां प्रभवं प्रकृतिं भेदान् वसतीश्च युद्धसंस्थानम् ।
 तदभिज्ञानविशेषानत ऊर्ध्वं दर्शयिष्यामः ॥ ८ ॥

२८—अमनुष्यदासानां प्रभवः ।

ये देवयोनयस्ते दशधा भिन्ना अमीषु भूतगणाः ।
 आसन्नो के तेऽपि द्विविधाः सभ्या असभ्याश्च ॥ १ ॥
 सभ्यनिकाये भुक्ता आर्यनिदेशानुकारिणः सभ्याः ।
 ये विपरीता एभ्योऽसभ्यास्ते दस्यवोऽपगणाः ॥ २ ॥
 ॐ प्रमथप्रमुखा बहवो गणाः सुराणां तु सैनिका आसन् ।
 उत्सवसंकेताद्याः केऽपि गणाः भारते कथिताः ॥ ३ ॥ सभा—२७

ॐ सभापर्वः अ० २७ पौरवं युधं निर्जित्य दस्यून् पर्वतवासिनः ।
 गणानुत्सवसंकेतानजयत् सप्त पांडवः ॥ १ ॥
 ततः काश्मारकान्वीरान् क्षत्रियान् क्षत्रियर्षभः ।
 व्यजयल्लोहितं चैव मंडलैर्दशभिः सह ॥ २ ॥
 ततः परमविक्रान्तो बाह्लीकान् पाकशासिनः ।
 महता परिमर्देन वशे चक्र दुरासदान् ॥ ३ ॥
 दण्डान् सह काम्बोजैरजयत् पाकशासिनः ॥ ४ ॥
 प्रागुत्तरा दिशं ये च वसन्त्याश्रित्य दस्यवः ॥
 निवसन्ति वने ये च तान् सर्वानजयत् प्रभुः ॥ ५ ॥
 लोहान् परमकाग्धोजानृपिकानुत्तरानपि ।
 ऋषिकेध्वपि सग्रामो बभूवातिमयकरः ॥ ६ ॥
 स श्वेतपर्वतं वीरः समनिक्रम्य वीर्यवान् ।
 त जित्वा हाटकं नाम देशं मुह्यकरक्षितम् ॥ ७ ॥
 सरो मानसमासाद्य हाटकानभितः प्रभुः ।
 गन्धर्वरक्षितं देशमजयत् पांडवस्ततः ॥ ८ ॥

एभ्यो ये विपरीता लुठञ्चरास्तेऽपरीतयः प्रोक्ता ।

मन्ये त एव सांप्रतमफरीदीत्याख्यारयाता ॥ ४ ॥

हरोदोतस एवान्-अपरीतईत्येवमाचष्ट । (Aparytai)

तस्मात् पूर्वयुगेऽमी अपरीतय एव चाख्याताः ॥ ५ ॥

युद्धस्थलान्न येषां परिच्युनिस्तेऽपरीतयः सुदृढा ।

परिगलितं यन्न स्यादपरीतत्व श्रुतं तस्य ॥ ६ ॥

विश्वमना वैयश्वोऽप्रतिरुद्धं वक्तुमिन्द्रवलम् ।

अपि गौतम क्रतून् प्रतिरुद्धान् वक्तुमाह शब्दं तम् ॥ ७ ॥

इन्द्र यथा ह्यस्तितेऽपरीत नृतो शव ।

अमृतारातिः पुरुहूत दाशुपे । (८ । २४ । ६) । ८ ।

आनो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽद्वधासो अपरीता—

स उद्भिदः ॥ देवानो यथा सदमिदं वृधे—

असन्न प्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे ॥ ९ ॥ (ऋ० सं० १ । ६ । १)

(शु०यजु०सं० २५ । १४)

अथवा ये प्रतिरुद्धा परिच्युता आपरीतयस्ते स्यु ।

एषां वेश्म समन्तात् प्रतिरुद्धं चापरीतिनस्ते वा ॥ १० ॥

दैवतरीत्यपकर्षदिपामपरीतिता गणानां स्यात् ।

अपकृष्टत्वादेपामपगणशब्देन विश्रुतिश्चासीत् ॥ ११ ॥

त इमेऽफगाननाम्ना अफगन् नाम्ना च सांप्रतं प्रथिताः ।

एपामेव तु वैदिकसमये दासत्वमुपमन्म ॥ १२ ॥

२६—अमनुष्यदासप्रकृतिः ।

उग्रप्रकृतय आसन् एते हत्यापरायणाः क्रूरा ।

घौरा द्रहश्च योद्धं संनद्धा स्वैरचर्याश्च ॥ १ ॥

३०—अमनुष्यदासप्रभेदाः ।

एषां बहवो भेदा अद्यत्वे चाभवन्नन्ये ।

आसन् पुरापि बहवः सांकर्येण गण-नाग-दैत्यानाम् ॥ १ ॥

३१-अमनुष्यदासानां प्रमुखाः कतिपये वेदे नामतो निर्दिश्यन्ते ।

बहवः श्रेण्य एषामेकैकश्रेणिनायको भिन्नः ।

प्रमुखा अराजकानां दासानां मन्त्रविश्रुताः केचिन् ॥ १ ॥

शंवरः कुयव-शुपण-पिप्रवाः पङ्गुभिः स्मदिभ-रोहिणाऽहय ।

व्यंस-वेश-मृगया-इलीलिविशः-शूश्रूवांश्चमुरि-तुग्रकौ धुनिः ॥ २ ॥

पर्वतनिवासिशंवर एवा मर्मोच्यते तुजिवर्ची ।

दस्यव एते दासा असुरा पृत्राश्च सर्व उच्यन्ते ॥ ३ ॥

३२-अमनुष्यदासानां हिमवत्प्रदेशे सिन्धुनदप्रान्ते निवासः ।

हिमवति च हेमकूटे यावन्तः पादपवतास्तेषु ।

सिन्धुनदोत्तरभागे द्रोण्यां निवसन्ति दासगणाः ॥ १ ॥

गान्धारोत्तरसीम्नि च निपधात् प्राच्यां य उज्जिहानदेशोक्ति ।

अद्यत्वे तं देशं म्लेच्छा आहुस्तु काफिरस्थानम् ॥ २ ॥

जाह्नवहाटकदेशौ संप्रति चित्राललहाखौ ।

कथितौ तत्र प्रान्ते दस्यव एते वसन्तिस्म ॥ ३ ॥

दुर्गमगिरिगहनेऽस्मिन् श्वेतगिरेः प्रगुपत्यकाप्रान्ते ।

विषमेऽङ्गणे निगूढे निवसन्ति स्मापरीतिनोऽपगणाः ॥ ४ ॥

गान्धाराद्या देशा आर्य्याणामथ च हेमकूटाद्याः ।

दासानामुभये ते विभिन्नसप्तनदवास्तव्याः ॥ ५ ॥

३३-“सिन्धुनदप्रान्ते सप्तनदत्रयम्” ।

सिन्धौ तावत् सप्त सप्त स्रवन्त्यः संगच्छन्ते वामतो दक्षतश्च ।

सिन्धोः प्रच्यामन्यदन्यत् प्रतीच्यां तस्योदीच्यां सङ्गमस्थानमन्यत् ॥ १ ॥

प्रसप्त सप्त त्रेधा हि चक्रमुः प्रसृत्वरीणामतिसिन्धुरोजसा ।

त्रिः सप्त सप्ता नद्यः ॥ २ ॥

त्रिः सप्त सप्ता नद्यो महीरपो वनस्पतीन् पर्वता अग्निसूतये ।

कृशानुमस्तृन् तिष्यं सधस्य आ रुद्रं रुद्रेषु रुद्रियं हवामहे ॥ ३ ॥

(१० । ६४ । ८)

अभित्वा सिन्धो शिशुमिन्न मातरो वाश्रा अपेन्ति पयसेव घेनवः ।

राजेव युध्वा नमसिन्वमिन् सिचौ यदासामत्रं प्रवता मिन्वसि ॥ ४ ॥

(१० । ७५ । ४)

३४—१—पूर्वसप्तनदः ।

डम मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रिस्तोमं सचता परुष्या ।

असिक्न्या मरुद्वृषे वितस्ताऽऽर्जीकीचे शृणुह्या सुपोमया ॥ १ ॥ (१० । ७५ । ५)

इत्थं शतद्रश्च इरावती च या चन्द्रभागा च विपाद् वितस्ता ।

त्राभिः कृत पञ्चनदप्रदेशः प्रच्यां स्थितः सप्तनदः स एव ॥ २ ॥

३५—२—पश्चिमसप्तनदः ।

यद्वत्सिन्धोः प्राच्यां सप्तनदान्तर्गतोभिः पञ्चनदः ।

तद्वत् ततः प्रतीच्या सप्तनदे पञ्चगौरदेशोऽस्ति ॥ १ ॥

तृष्टा मया प्रथमं यातवे सजूः सु सत्वा रसया श्वेत्या त्या ॥

त्वं सिन्धो कुमया गोमती क्रुमुं मेहत्वा सरथं याभिरीयसे ॥ २ ॥

(१० । ७५ । ६)

कुरम क्रमुर्गोमल गोमतीसिदुम् श्वेती कुमा कावुल उच्यतेऽधुना ।

रसा वुरिद्ध च सुवान् सुसत्तृष्ट्रां मिकोर्ध्वं गिलघिट सरिन्मता ॥ ३ ॥

मेहलूः स्याद् वनत्रे वर्णं मन्योयत्संवन्धाद् वरुणदेशः प्रसिद्धः ।

वरुणदेशो दक्षिणे स्यात् कुमायास्तस्यास्तूङ्क् पञ्चगौरप्रदेशः ॥ ४ ॥

संगच्छते सुवान्तर्यस्यां सा वास्तुरेकया भूत्वा ।

संगच्छते कुमायां कुमा तु सिन्धौ समन्वेत ॥ ५ ॥

वास्तोः पश्चात् कुमया चित्राख्याऽन्वेति सा गौरी ।

जह्वावी सा गङ्गा चित्रालो जाह्नवी देशः ॥ ६ ॥

गात्रोरीति म्लेच्छा गौरी तामाहुरितरत्र ।

देशं च पञ्चगौरं वदन्ति ते पञ्चकोरिति ॥ ७ ॥

सिन्धोरस्ति स पश्चात् हिर्मण्डाख्यां (हेल्मण्ड) हिरण्यतीं यावन् ।

या अस्य पञ्चनदस्ता उक्ता भारते मैत्रे ॥ ८ ॥

वास्तुं सुवारतं गौरी च कम्पनां च हिरण्यावतीम् ।

वरां वीरंकरां चापि पञ्चमीं च महानदीम् ॥ ६ ॥ भा. भौ. ६ । २५ । ४)

सन्धा सिन्धुः सुरथा सुवासा हिरण्यमयी सुकृता वाजिनीवती ।

ऊर्णवती युवतिः सीलनावत्यु ताधिवस्ते सुभगामधु वृधम् ॥ १० ॥ (१८।१५।८)

३६—३—उत्तर सप्तनदः ।

तत्पञ्चगौरदेशादुत्तरतोऽन्योऽस्ति सप्त नददेशः ।

कुलिशी च वीर पत्नी शिफाञ्जसीत्यादिभिः क्लृप्तः ॥ १ ॥

३७—परस्परतो युध्यमानानामार्य्यदासानां पश्चिमोत्तरविभिन्नसप्तनदवासित्वम् ।

इत्थं सप्तनदेषु त्रिषु सिन्धोरुत्तरं तु सप्तनदम् ।

तद्दासानां स्थानं भारतवर्षाद्विहिचैतत् ॥ १ ॥

सप्तनदे पुनरन्ये सिन्धोः पौरस्त्यपाश्चात्ये ।

ते द्वे भारतवर्षान्तर्भुक्ते वसतिरार्य्याणम् ॥ २ ॥

३८—पूर्वसप्तनदे दासकुलाभिजनासत्यात् तत्र युद्धाभावः ।

तेषु च सप्तनदेषु त्रिषु पूर्वस्मिन्नभूदिवं युद्धम् ।

इति पाश्चात्या आहुः प्रत्यगुदकप्रान्तयोस्तु तद्व्रूमः ॥ १ ॥

चित्रालदेशतो यः पूर्वोत्तरदेशगोऽस्ति सप्तनदः ।

तत्रत्यदस्युभिः सह पश्चिमसप्तनदवासिनां युद्धम् ॥ २ ॥

द्विविधं युद्धमितिहासीत् प्रथमं युद्धं तु दासकृतम् ।

उत्तरमिन्द्रकृतं तत् तदुभयमन्यान्यदेशेऽभूत् ॥ ३ ॥

यत् प्राथमिक युद्धं तदभूद्गान्धारदेशेऽभिन् ।

स्वस्थानस्थानार्य्यान् दस्यव पत्याभ्यमर्हयंस्तत्र ॥ ४ ॥

यत्तु श्वेतगिरेः प्राग् मूजवतः पर्वतादपि प्रत्यक् ।

अभवद् द्वितीययुद्धं तत्राक्रम्यावधीद्वरिर्दस्यून् ॥ ५ ॥

पश्चिमसप्तनदस्था आर्य्यास्ते स्थायिनो युद्धे ।

उत्तर सप्तनदस्था दस्यव इह यायिनः प्रथमे ॥ ६ ॥

पश्चात्त दस्यवस्ते प्राप्तजया स्थायिनोऽभूवन् ।
इन्द्रो दीनसहायो यायी जयमाप्य कुत्समातत्रे ॥ ७ ॥
पूर्वस्मिस्तु न कश्चित् सभ्योऽनार्योपि वात्र सप्तनदे ।
स्थायी यायी वाऽसीत् तस्माद् युद्धं न तत्राभूत् ॥ ८ ॥

३६—उत्तरसप्तनदवासिनां दासानां भारतवर्षीयत्वाभावः ।

उत्तरसप्तनदं यदासानां स्थानमेतच्च ।
भारतवर्गद्वहिरिति दासा न हि भारतीया म्यु. ॥ १ ॥

४०—भारतवर्षमीमाचतुष्टयी ।

एतद्भारतवर्षं रक्तसमुद्रान्तमस्ति पश्चिमत ।
पीतसमुद्राश्लिष्ट प्रशान्तसागरपरं प्राच्याम् ॥ १ ॥
याम्ये समुद्रमध्यगविपुवान्तं तत् तथोदीच्याम् ।
हिमवत्पर्वतपरमं प्रवदन्तीत्थं चतुःसीमम् ॥ २ ॥
त्रैलोक्यस्य विभागे त्वेदद्वर्षं हि मानुषो लोकः ।
स इरावतीविनिर्गमदेशाद्वर्गं निरूपितः पूर्वं ॥ ३ ॥
पश्चादष्टमतोऽशात् पूर्वं यावत्तु सप्तदशमंशम् ।
भारतवर्षं त्रुवते सा सीमा राजशासनस्याद्य ॥ ४ ॥
“पूर्वं किराता यवनाश्च पश्चिमे याम्ये समुद्रो हिमशैल उत्तरे” ।
पौराणिका इत्थमनेकधाऽत्रुवन् तद्भारतं सीमाचतुष्टयं कृतम् ॥ ५ ॥
पूर्वसमुद्रारब्धो रक्तसमुद्रान्तचित्तुतो देशः ।
भारतवर्षं ज्ञेयं पूर्वापरतो नवत्यशैः ॥ ६ ॥
प्राग् मेरुकर्णिकस्य हि भूपद्मस्यास्य सन्ति पत्राणि ।
चत्वारि दिक्षु चतसृषु क्लृप्नानि समं नवत्यशैः ॥ ७ ॥
नववर्षाणि यदानीं कल्प्यन्ते भूतलस्यान्य ।
तर्ह्यपि भारतवर्षं दक्षिणतः स्यान्नवत्यंशम् ॥ ८ ॥
क्लृप्ता तु मध्यरेखा मेरुस्थं भारतवर्षं ।
तस्याः प्रागपि पश्चाच्चत्वारिंशच्च पञ्च चाशाः म्यु. ॥ ९ ॥

४१—भारतवर्षस्यैन्द्रवारुणाभ्यां पूर्वपश्चिमाभ्यां विभागः ।

तत्सिन्धुना द्विभक्तं तत्रैन्द्रं भारतं पूर्वम् ।
 तत्पश्चिमं तु भारतमस्तीदं वारुणं विद्यात् ॥ १ ॥
 भूमध्यसागरात् प्राक् सिन्धोः प्रत्यक् समुद्रतटूक् ।
 आरालकाश्यपीयनजलधिभ्यां दक्षिणो यावान् ॥ ८ ॥
 एतं देशं ब्रूवते ग्लेच्छजना ओरियंस शब्देन ।
 तदिदं भारतवर्षं वारुणमासीत् पुरायुगे मन्ये ॥ ३ ॥
 वारुणभारतभागे न्यवसन् प्राघेयगन्धर्वाः ।
 गन्धर्वदेश एव प्रथते गान्धारनाम्ना सः ॥ ४ ॥
 वर्णुश्च पञ्चगौरो जाह्नव एवोज्जिहानश्च ।
 हाटक एवं बहवो गान्धारे पूर्वतो देशाः ॥ ५ ॥
 मद्रा उत्तरमद्रो गान्धारेभ्यः स्युरुत्तरे पश्चात् ।
 उत्तरमद्रादेशा मिदिया मादेति बोदिता ग्लेच्छैः ॥ ६ ॥
 अप्येत आरियाना दक्षिणमद्रास्तु पारसेत्युक्ताः ।
 उभयविधा अपि मद्रा भारतवर्षस्य पश्चिमा देशाः ॥ ७ ॥
 गान्धार मद्रदेशे सिन्धुनदात् पश्चिमे भागे ।
 यधन-ग्लेच्छाक्रमणादार्यास्तत्राल्पशोऽद्य निवसन्ति ॥ ८ ॥

४२—पश्चिमभारते गान्धारदेशे दासकृतं प्रथमं युद्धम् ।

दस्युनियुद्धात् प्राक् त्विह सिन्धोः प्राच्यां प्रतोच्यां च ।
 भारतवर्षीयार्या न्यूपुयुद्धप्रतीच्येषु ॥ १ ॥
 गान्धारे तु वसन्तोऽनार्या वार्याः पुरा वृचीवन्तः ।
 आर्यस्य चायमानस्यासन् विद्वेपिणस्तत्र ॥ २ ॥
 हरियूपीया नद्याः कूले यव्यावती नगरी ॥ (ऋ० ६।२७।भरद्वाजः)
 तस्यां वरशिख आसीद् वृचीवतः कस्यचित् कुलजः ॥ ३ ॥
 त्रिंशं शतं त आसन् वीराः प्रथिता वृचीवन्तः ।
 अभ्यावर्त्य भिवस्याभिघातिनश्चायमानस्य ॥ ४ ॥

अन्ये तु हेमकूटद्रोण्यावासा लुठचरा दासाः ।
 गन्धारमद्रदेशे न्यपीडयन्निवसतो हि गन्धर्वान् ॥ ५ ॥
 भारतवर्षवहिःस्था दासा आक्रम्य पीडयन्तिस्म ।
 चिरकालादिह भारतवर्षे वसतो नृपानार्यान् ॥ ६ ॥
 गन्धारेऽस्मिन्देशे सिन्धुप्रान्तस्थकुत्सचतुपराद्रे ।
 अपगणदस्युभिरासीदार्याणां मन्त्रविश्रुतं युद्धम् ॥ ७ ॥
 सिन्धोः पश्चिमदेशे पुरायुगादद्यपर्यन्तम् ।
 या गान्धारपुरीयं तदुपहृतोऽर्जुनी तु नदी ॥ ८ ॥
 अर्जुन्याः सरितोऽस्या अर्गन्दारेति नाम च ब्रवते ।
 अद्यत्वे स्लेच्छाद्याः सैव स्यादर्जुनीधारा ॥ ९ ॥
 कूलेऽर्जुन्या नद्या या नगरी चेतसूतया क्लृप्तः ।
 कश्चिज्जनपद आसीत् तत्र नृपोऽभूत् कथरुरुर्नाम ॥ १० ॥
 पुत्रोऽस्य कुत्स आसीद् गन्धर्वः शिक्षितः स विद्यायाम् ।
 सिन्धुप्रान्तनिवासिभिरभूद् वसिष्ठश्रुतर्य्यायै ॥ ११ ॥
 दभीतितुर्वीतिमुखाः परेऽपि स्युस्तस्य सामन्तनृपा अधीनाः ।
 यतोऽर्जुनी संनिहितोऽस्य वासस्ततः स कुत्सो मत आर्जुनेयः ॥ १२ ॥
 “याभिः कुत्समार्जुनेयं शतक्रतू प्र तुर्वीति प्र च दभीतिमावतम् ।
 याभिर्ध्वंसन्ति पुरुषन्तिमावतं तामिदं पु उत्तिमिरश्विनगतम् ॥ १३ ॥ (११११२३)
 यत्त्वार्जुनेयस्य पदस्य सायणो ब्रूतेऽर्थमिन्द्रस्य हि पुत्रमित्यापि ।
 न साधु मन्ये तदमुष्य सख्यता त्विन्द्रेण कुत्सस्य न पुत्रता श्रुता ॥ १४ ॥
 “मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे” इत्येवन्त कुत्स ऊचे सखायम् ।
 सखायं कृत्वा कुत्समिन्द्रः प्रतस्थे हन्तं कुत्सद्वेषिणो दम्पुसंवाण् ॥ १५ ॥
 यद्वाऽर्जुन्या स्याज्जनन्याऽऽर्जुनेयो यद्वाऽर्जुन्या स्याद्वसत्यार्जुनेयः ।
 अश्विस्तुत्यामिन्द्रसंन्धिताया आख्यानां स्यादिन्द्रदत्तावमत्ये ॥ १६ ॥
 ध्वंसन्ति तुर्वीतिदभीति भूपतीन् कुत्सानुगान् प्राक् पुरुषनिनाऽन्वितान् ।
 न्यपीडयन्दस्युगणाः पुरायुगे ररक्षतुः शक्रनिबोगतोऽधिनौ ॥ १७ ॥

४३—परमतनिरासेन सिद्धान्तस्थापनम् ।

अद्याप्येते दस्यवः सिन्धुपारे चित्राप्रान्ते गूह्यतान्तर्निकेताः ।
 दृश्यन्ते ये पश्चिमोदक्प्रदेशे सभ्यान् लोकान् पोडयन्ति प्रसह्य ॥ १ ॥
 एतानेव प्रोद्धतान् वृद्धिमाप्तान् भीष्मान् दस्यून् दण्डयामास धृष्टान् ।
 एत्य स्वर्गात् सोऽमरावत्यधीशः प्रत्यावृत्तः स्वर्गमेवाभ्यगात् सः ॥ २ ॥
 कुत्सादीनां सिन्धुपारे स्थितानां रक्षार्थं तदस्युभिर्लुण्ठितानाम् ।
 इन्द्रः कुत्साभ्यर्थितस्तद्विमाद्विद्रोण्यावासान्नाशयामास दस्यून् ॥ ३ ॥
 वध्यान् दासान् भारतत्यादिवासान् भ्रान्त्या कश्चित्साहसं कल्पते तत् ।
 वध्या दासा भारताद् बाह्यसीमाप्रान्तेष्ववासन् भारतं नाध्यवात्सुः ॥ ४ ॥
 तस्माद् ब्रूमो भारतवर्षे वसतो नृपानार्यान् ।
 भारतवहिः प्रदेशादेत्याकामन्निमे दासाः ॥ ५ ॥
 भारतवर्षे वसतो दासानाद्यानिहाक्रम्य ।
 देशान्तरादुपेता आर्या युयुधिर इति भ्रान्तम् ॥ ६ ॥
 मेरुभ्रष्टा आर्या विदेशिनः पौर्विकान् दासान् ।
 हत्वा भारतवर्षे न्यवसन्निति हन्त निःसारम् ॥ ७ ॥

६-(४४)—दस्युयुद्धाद् बहुपूर्वमार्याणां भारतवर्षनिवासित्वे पूर्वमनुष्याणाम्
 ऋभूणां भारतीयत्वं हेतुः ।

अप्यस्ति हेतुरन्यो यत एवोऽर्थोऽवधार्यते नितराम् ।
 दस्युपराजयमूलो नार्याणां भारते वासः ॥ १ ॥
 पूर्वं हि दस्युयुद्धादार्याणां भारतीयत्वम् ।
 विज्ञायते यतः प्राक् पूर्वमनुष्या इहर्भवो न्यूपुः ॥ २ ॥

४५—ऋभुपरिचयः ।

दस्युनियुद्धादस्माद् बहुपूर्वं भारते वर्षे ।
 आसीन्नृपः सुधन्वा पुत्रास्तस्य त्रयस्त्वासन् ॥ २ ॥
 ऋभुरथ विभ्वावाजस्वष्टुः शिष्यास्त्रयाप्यभूवन्ते ।
 त्वष्टा त्वाष्ट्रे कर्मणि तान् सम्यक् शिक्षयामास ॥ ३ ॥

त इमे कलाविभागे निजनैपुण्याभिमानतो जातु ।
 देवचमसनिर्माणात् प्रथितं त्वष्टुर्यशः पराक्षिप्यन् ॥ १ ॥
 त्वष्टृविनिर्मितचमसे निर्मातुः कौशलं न पश्यामः ।
 यत्रोत्पन्नश्चमसो माहात्म्य तस्य दारुणो भवति ॥ २ ॥
 त्वष्टृविनिर्मितचमसाद् देवानां सोमपानार्थात् ।
 अच्युत्कृष्टं चमसं निर्मातुं नः प्रतिज्ञाऽस्ति ॥ ३ ॥
 एकं चमसं सद्यश्चतुर्विधं शक्नुमः कर्तुम् ।
 इत्थंभूमां वचनं त्वष्ट्रेऽचकथत् दिवं गतस्त्वग्निः ॥ ४ ॥
 निन्दिष्यन्ति तु चमसं देवानां सोमपानं ये ।
 तान् ध्रुवमत्र हनिष्याम्येवं कथ्यन्नबोधत त्वष्टा ॥ ५ ॥
 प्रत्यावृत्य स्वर्गाच्छावयितं त्वष्टृ रोषवचः ।
 एष ऋभूणां सदनं मनुष्यलोकेऽत्र आजगामाग्निः ॥ ६ ॥
 आगच्छन्त दृष्ट्वा तमग्निमृभवो व्यतकथन् भवगतम् ।
 किमयकमस्मादग्निर्देवो नः सदनमभ्येति ॥ ७ ॥
 किमय श्रेष्ठोऽस्त्यस्माननुग्रहीतुं समायाति ।
 अस्ति यविष्ठो वाऽयं किञ्चिन्नोर्ययितुमभ्येति ॥ ८ ॥
 अथवा त्वष्टर्विषये पूर्वं यत् कुत्सितं न्यवोचाम ।
 तत्रैति दूत्यमेतत् किञ्चिद् धृतं निवेदयिष्यति नः ॥ ९ ॥
 इत्थं चितव्यं पक्षे त्रयस्तृतीयो प्रतीतिमास्थाय ।
 देवी गर्हाऽनुचिता मर्त्येरिति दोषमक्षिपन् स्वीयम् ॥ १० ॥
 ऋभवः प्राहुर्न वयं निन्दामस्त्वष्टृ निर्मितं चमसम् ।
 ब्रूमस्तु दारुणस्तं प्रभावमत्रास्ति यश्चयमत्कार ॥ ११ ॥

४६--ऋभुभ्यः स्वकौशलं दर्शयितुं देवानामादेशः ॥

ऊचे भगवानग्निर्निभृतं प्रोत्साहायन्नृभूनेतान् ।
 आदिदिशुर्बो देवादचमसं चैकं चतुर्विधं कर्तुम् ॥ १ ॥
 खेचरमश्वमनश्वं रथमथ गां चर्मणोनिर्हताम् ।
 वृद्धस्य च तारुण्यं वक्तु मिमासागतोऽस्मि देवाज्ञाम् ॥ २ ॥

देवादिष्टानर्थान् प्रणीय गच्छत दिवं स्वयं यूयम् ।
 यद्येव प्रकरिष्यथ तर्हि भविष्यथ नु यज्ञियां देवा ॥ ३ ॥
 चमसचतुष्टयमेतद् दृष्ट्वा त्वष्टा भविष्यति ह्रीणः ।
 इत्याकार्यं वचोऽग्नेर्ऋभवः पुनरब्रुवन् प्रतिज्ञाय ॥ ४ ॥
 अग्निकथितमादेशं देवानां दृढमिमं प्रतिश्रुत्य ।
 निर्न्माय वाहनानी च देवेभ्यः स्वर्गमागमिष्यामः ॥ ५ ॥
 अग्निर्ऋभून् पुनरुचे स्वर्गं चामन्त्र्य मां तु युष्माभिः ।
 देयानि मत्समक्षं देवेभ्यः शिल्पजातानि ॥ ६ ॥
 एवं कृते वयं व. सख्यं देवेषु भावयिष्यामः ।
 देवेन्द्रेण च सग्धि सवने क्वापि प्रवर्तयिष्यामः ॥ ७ ॥
 प्रातरपां यदि पानं मध्यदिने मुञ्चने जनं वा चेत् ।
 अनुरुचितं वो न न्यात् सायं सग्धिस्तदा ध्रुवं वः स्यात् ॥ ८ ॥
 इत्यादिष्टाऋभवश्चमसविधाने त्रयोऽपि सहयुक्ताः ।
 अभवन् विप्रवदन्तः स्वस्वाकृत्याऽनु संवदन्तश्च ॥ ९ ॥
 आपो भूयिष्ठास्तत् प्रातरपां सग्धिरुत्कृष्टा ।
 भूयिष्ठोऽग्निरतोऽहो मध्ये सग्धिः प्रकर्षाय ॥ १० ॥
 सायं वहवः साकं बहुविधभोल्यानि चात्र मुञ्चन्ति ।
 तस्मात् सायं सग्धिः श्रेष्ठेति च ते मिथो मता न्यूचुः ॥ ११ ॥
 शक्नोमि चमसमेकं कर्तुं द्वेधेत्यवोचत ज्येष्ठः ।
 त्रैवेति मध्यमोऽसौ किन्तु चतुर्धा व्यधुः कनिष्ठगिरा ॥ १२ ॥
 ४७—पञ्चदशादिष्टान्यनादिष्टानि च बहूनि शिल्पानि ।

प्रदर्शयितुमृभूणां स्वर्गं गमनम् ॥

अथ कुशला ऋभवन्ते त्रेवा शिल्पानी कल्पयामासुः ।
 पञ्च परोक्षार्थेऽपि च दश सख्यार्थे बहूनि कीर्त्यर्थे ॥ १ ॥
 आदिष्ट कुशलानि तु पञ्चादिष्टोपि योजनानि दश ।
 उपवृंहणानि चानादिष्टानि तु विदधिरे कतिचित् ॥ २ ॥

एकं चमसं चतुरश्चमसान् श्लिष्टान् विवहयति ।

पुनरेकं च चतुर्णां संपादयतीति कौशले परमम् ॥ ३ ॥

आश्वाद्दश्वमतच्छद् द्वौ चाश्वावेक एवाश्वः ।

अपि बहवोऽश्वाः सहिता दिवि ते प्रचरन्ति भूमौ च ॥ ४ ॥

उक्थ्यो रथऽप्यनश्वोऽनभीपुरेतैर्विनिर्मितो विपुलः ।

परिवर्तते स चक्रैस्त्रिभिः समं दिवि भुवि प्रचरन् ॥ ५ ॥

“अनश्वो जातो अनभीषु रुक्थ्यो रथस्त्रिचक्रः परिवर्तते रजः ।

महत्तद्वो देवस्य प्रवाचन द्यामृभव पृथिवी यच्च पुष्यथ” ॥ ६ ॥ वामदेव-

(४ । ३६ । १)

द्विविधा तु निर्मिता गौरगनेर्वचनाद् बृहस्पतेर्वचनात् ।

आदिष्टकौशलेऽन्या आदिष्टे तूपयोजने साऽन्या ॥ ७ ॥

गौःश्वेतरी तु पूर्वा बृहस्पतेर्विश्वरूपाख्या ।

गौः श्वैतरीयमेकाऽनेकतनुः स्यान्निष्कृत्तचर्मवशात् ॥ ८ ॥ (१ । १६१ । ७)

अन्या गौरतिभव्या कामगवी निर्मिता चित्रा ।

एषा यदेवा किञ्चित् प्राभ्रात्यमृतं ततो दुग्धे ॥ ९ ॥

मातापितरौ यौ यौ जरसा भूमौ शयानौ स्तः ।

यन्त्रप्रभाव तस्तौ पुनर्युवानौ प्रचक्रिरे सद्य ॥ १० ॥

इत्थं चमसानदवं रथमथ धेनु युवानौ च ।

निर्माय सुष्ठु पश्चाद् व्यधुरादिष्टोयोजनानि दश ॥ ११ ॥

इन्द्रस्य हरी हरित सूर्यस्याग्नेस्तु रोहितो नाम ।

श्यावाः सांवतुः पूष्णस्त्वजाश्च मरुतां पृषन्नाम ॥ १२ ॥

नियुतो वायोरुषसोऽरूण्यो गावोथ विश्वरूपा गौ ।

विहिता बृहस्पतेरथ रासभयुग्मं तद्याश्विनोऽवलुप्तम् ॥ १३ ॥

दश चैतान्यादिष्टोपयोजनानि प्रसिद्धयन्ति ।

एतान्यारुह्यैते यान्ति त्माकाशमार्गेण ॥ १४ ॥

इन्द्राय चक्रुर्हंसिंज्ञकी ह्यौ श्लिष्टौ पृथिव्या दिवि च प्रचारिणौ ।

यथेच्छमाभ्यां भुवि खे च संचरन् हर्यश्व उक्तो हरिवाहनोऽपि सः ॥ १५ ॥

हरिप्रभावाद्हरिवान् पराक्रमं स मानुषः सन्नतिमानुषं व्यधात् ।

ताभ्यां स सानोः परसानुमारुहन्नस्पृष्टकृत् बहुदम्युहत्यके ॥ १६ ॥

प्राथमिकपष्ठतुयं तित्तिरयः संहितायां तु ।

सूर्यस्यैतशमाहुः सोपि स्याद्वरित एवाश्वः ॥ १७ ॥

“त्वं सूरौ हरितौ रामयो नृन् । भरचक्रमेतशो वायमिन्द्रः ।” (१ । १२३ । ३)

अग्निन्मन्त्रे ह्येतशो नानियुक्तो नृणां हरितां स्थान इन्द्रेण पूर्वम् ॥ १८ ॥

अर्थाहरणे कर्मणि ये नियता व्यापृता नरा मृतकाः ।

हरितो नरास्तुक्ताः शिरसा रश्मिभिरिमे हरन्ति रथम् ॥ १९ ॥

हरितो हरन्ति शिरसा पृष्ठेन च किमपि संभारम् ।

हरितां तु नायको यो वहनेऽधिकृतः स वहिराख्यातः ॥ २० ॥

अपि यो मनुष्यलोकेश्वरोऽग्निरस्थान्तु भारते वर्षे ।

वह्निः स उक्त एष हि देवैर्देयं दिवे वहति ॥ २१ ॥

इत्यधिभूतं विद्याद्विधैव तूदिता दिशो हरितः ।

ता इह विद्याच्छ्रन्दांस्येवाहोरात्रवृत्तानि ॥ २२ ॥

नरदेवानामेषां यानि तु यानाभिधानानि ।

प्रायेण तानि क्लृप्तान्यधिदैवतयानसामान्यात् ॥ २३ ॥

ऋक्सामे हरिसंज्ञे अधिदैवतमिन्द्रयाने भतः ।

यजुरिन्द्रं हरतस्ते अधिभूताश्चो हरिस्तदिन्द्रस्य ॥ २४ ॥

इत्थं पञ्चदशार्थानादिष्टानग्नये निवेद्यैतान् ।

दर्शयितुं स्व कौशलमृभवः स्वर्गे विमानतो जग्मुः ॥ २५ ॥

४८—ऋभुकौशलविमुग्धैर्देवैर्ऋभुभ्यो देवत्वेन्द्रसगधित्वादिपारितोषिकप्रदानम् ।

अग्निसमक्षं भगवानिन्द्रः शिल्पानि तानि चालोच्य ।

देवसभायां प्रमहे देवेभ्यो वाहनानि ददौ ॥ १ ॥

अस्थिभिरस्य दृधीचो तो वज्रं प्रागजीजनत ।

सोमग्रहणं चमसं योऽपूर्वं दारुणोऽकुरुत ॥ २ ॥

तस्मादप्याचार्यात् त्वष्टुर्दवान्मनुष्याणाम् ।

ऋभ्वादीनामेवामप्रथत यशोऽधिकं स्वर्गे ॥ ३ ॥

यशांसि भूयांसि सुपर्वणां कुले प्रगीयमानानि निशम्य वासव ।
 तुतोष मेने मनुजेषु सत्क्रियामग्नेर्मनुष्याधिपतेर्विचारतः ॥ ४ ॥
 स्वाराट् स दृष्ट्वा हरिसन्तिनिर्मितौ लोकातिगं कौशलमस्य शिल्पिनः ।
 सम्मानहेनो सह पारितोषिकैः सग्धिं तृतीये सवनेऽन्वकल्पयत् ॥ ५ ॥
 महती हि सा प्रतिष्ठा स्वर्गं लोके यदिन्द्रतः सग्धिः ।
 तेनोत्साहितचित्ता शिल्पान्यन्यानि भूरिशदचक्रुः ॥ ६ ॥
 परनिष्ठितकर्माणो विश्वेदेवैत आहूताः ।
 यानानि ते च तेषां व्यदधुर्विविधानि शस्त्राणि ॥ ७ ॥
 अत्यद्भुतं स पक्षिणमेकं व्यषात्स्रव नाम ।
 इन्द्राजया जगृहतुस्तमश्चिनौ देवनकर्म्मार्थम् ॥ ८ ॥
 यावन्मितमिह वेगं निवेश्य नोदेन गमयेत् तम् ।
 तावन्मिते प्रदेशे गत्वा परिवर्त्य चायाति ॥ ९ ॥
 पृष्ठांरूढं स वहन्नारूढ वा विनैव नोदनया ।
 विचरन् विहायसाऽयं याति मनोनीतमास्पदं तरसा ॥ १० ॥
 एष समुद्रे सवते बलाज्जलाधो निधीयमानोऽपि ।
 तत्पृष्ठस्था वहवो मनुजाः प्रतरन्ति सागरेऽप्यभयम् ॥ ११ ॥
 अथ यांस्ते देवेभ्यो रथाननश्चान् विहङ्गमान् व्यदधुः ।
 तानि विमानान्याहुस्तानि च नानाविधान्यासन् ॥ १२ ॥
 प्रथमं बृहस्पतिकृते प्रणयन्ति स्म त्रिवन्धुरं सुरथम् ।
 अश्विभ्यामपि रासभरथं प्रचक्रुस्त्रिवन्धुरं सुदृढम् ॥ १३ ॥ (८ । ८४ । ७)
 क्रमतोऽत्र सिद्धहस्ता ऋभव इमे शिल्पिमूर्धन्याः ।
 आविशचक्रुर्नानाविधानि तेभ्यो विमानानि ॥ १४ ॥
 एतद्विमानं कौशलदर्शनतो हृष्ट एष देवेन्द्रः ।
 बहुभिः सुपुरस्कारैः सत्कृत्य ऋभून् सभाजयामास ॥ १५ ॥
 इन्द्रतैर्ऋभुभिः सममारुह्यैत विमानरथम् ।
 व्यचरद्वि वि देवानिव तान् यज्ञो सोमपायिनो व्यदधात् ॥ १६ ॥
 एषां च मानुषाणां सम्मानायाददात् स देवत्वम् ।
 महती कीर्तिरमीषामभूत् ततो यज्ञभागभुजाम् ॥ १७ ॥

इन्द्रस्यासन् बहवो मनोनपात् संज्ञयाऽमात्याः ।

एषामपि स ऋभूणां मनोनपात्त्वं ददाविन्द्रः ॥ १८ ॥

अग्निर्भूम्या, वातोऽन्तरिक्षतो, दिव इमे मरुतः ।

❀ शवसोनपात् इच्छन्त्यृभून् समुद्रस्य वरुणश्च ॥ १९ ॥ (१ । १६१ । १४)

अपि बाददेव ऊचे रत्नानां दुर्लभाद्भूतानां ते ।

शवसोनपात् ऋभवोऽभवश्च देवेन्द्रसाम्राज्ये ॥ २० ॥ (४ । ३५ । १ । ८)

७—ऋभूणां यशः स्थैर्याय देवेन्द्रनिदेशाद्देवसमाविद्विद्धिः कीर्तिसूक्तनिर्माणम् ।

४६—दीर्घतमसा कृतमृभूणां कीर्तिसूक्तम् ।

दीर्घतमा औचथ्यो ममतापुत्रोन्यदर्शयत्प्रायः ।

चरितमृभूणामेषामप्रथत यथा तु शिल्पिनां सुयशः ॥ १ ॥ (१ । १६१)

“किमु श्रेष्ठ. किं यविष्ठो न आजगन्किमीयते दूत्यङ् कद्यदूचिम ।

न निन्दिम चमसं यो महाकुलोऽग्ने भ्रातर्द्रुण इद्भूतमूदिम ॥ १ ॥

एकं चमसं चतुरस्कृणोतन तद्वो देवा कव्रवन्तद्व आगमम् ।

सौधन्वना यद्यवाकरिष्यथ साक वैवैर्यज्ञियासो भविष्यथ ॥ २ ॥

अग्निं दूतं प्रति यदब्रवीतनाश्व. कर्त्वो रथ उतेह कर्त्तव्यः ।

घेनुः कर्त्वा युवशा कर्त्वाद्वा तानि भ्रातरनुवः कृत्वयेमसि ॥ ३ ॥

चक्रवांस ऋभवस्तदपृच्छत कवेदभूयः स्य दूतो न आजगन् ।

यदावात्यब्रमसाश्चतुरः कृतानादिच्चप्राग्नास्वन्तर्न्यानजे ॥ ४ ॥

हनामैनां इति त्वष्टा यदब्रवीच्चमसं ये देवपानमनिन्दिपुः ।

अन्या नामानि कृण्वते सुते सचां अन्यैरेनाङ्कन्या ३ नामभिः स्परत् ॥ ५ ॥

इन्द्रोहरी युयुजे अश्वीना रथं बृहस्पतिर्विश्वरूपासुपाजतं ।

ऋभुर्विध्वा वाजो देवा अगच्छत स्वपसो यज्ञियं भागमैतन ॥ ६ ॥

निश्चर्मणो गामरिणीता धीतिभिर्या जरन्ता युवशा ता कृणोतन ॥ ७ ॥

इदमुदकं पिवतेत्यब्रवीतनेदं वा घा पिवता मुञ्जनेजनम् ।

सौधन्वना यदि तन्नेव हर्यथ तृतोये घा सवने मादयाचै ॥ ८ ॥

आपो भूयिष्ठा इत्येको अब्रवोदग्निर्भूयिष्ठ इत्यन्यो अब्रवीत् ।

❀ विक्रतः, नायव ।

वर्धयन्ती बहुभ्यः प्रैको अन्नवीहता वदत्तश्चमसो अपिशत ॥ ६ ॥
 श्रोणामेक उदकं गामवाजति मांसमेकः पिंशति सूनयामृतम् ।
 आ निम्नुचः शकृदेको अपाभरत्किस्वित्पुत्रेभ्यः पितरा उपावतुः ॥ १० ॥
 उद्वत्त्वस्मा अकृणोतना वृणं निवत्त्वपः स्वपस्यया नरः ।
 अगोह्यस्य यदसस्तना गृहे तद्येदमृभवो नानुगच्छथ ॥ ११ ॥
 सम्मील्य यद्रभुवना पर्यसर्पत क्व स्वित्तात्या पितरा व आसतुः
 अशपत यः करस्त्वं व आददे यः प्रात्रवीत्प्रो तस्मा अन्नवीतन ॥ १२ ॥
 सुषुप्वांसं श्रभवस्तदपृच्छतागोह्यक इदं नो अवूधुधत् ।
 धानं घस्तो बोधयिथतारमन्नवीत्संवत्सर इदमद्या व्यख्यत ॥ १३ ॥
 दिवा यान्ति मरुतो भूम्याग्निरयं वातो अन्तरिक्षेण याति ।
 अद्विर्याति वरुणः समुद्रैर्युष्मो इच्छन्तः शवसोनपात ॥ १४ ॥

५०—वामदेवः ।

अपि वामदेव ऊचे विस्तरतस्तन्महर्षिराङ्गरसः ।
 चरितमृभूणामेषामप्रथत यथा तु शिल्पिनां सुयशः ॥ १ ॥
 ४।३३ “अ मृभूभ्यो दूतमिव वाचमिष्य उपरितरे श्वेतरीषेनुमीले ।
 ये वातजूतास्तरणिभिरेवैः परिधां सद्यो अपसो वभूवुः ॥ १ ॥
 यदारमकन्नृ भवः पितृभ्यां परिविष्टी वेपणा दंसनाभिः ।
 आदिहैवानामुपसख्यमायन्धीरासः पुष्टिमवहन्मनायै ॥ २ ॥
 पुनर्ये चक्रुः पितरा युवाना सना यूपेव जरणा शयाना ।
 ते बाजो विश्वां श्रभुरिन्द्रवन्तो मधुप्सरसो नोऽवन्तु यज्ञम् ॥ ३ ॥
 यत्संवत्समृभवो गामरक्षन्त्यत्संवत्समृभवो सा अपिशन् ।
 यत्संवत्समभरन्भासो अस्यास्ताभिः शमीभिरमृतत्वमाशु ॥ ४ ॥
 ज्येष्ठ आह चमसा द्वा करेति कनीयान् त्रीन्कृणवामेत्याह ।
 कनिष्ठ आह चतुरस्करेति त्वष्ट श्रभवस्तत्पुनयद्वचो वः ॥ ५ ॥
 सत्यमूचुर्नर एवा हि चक्रु रनुस्वधामृभवो जग्मुरेताम् ।
 विआजयानाश्चमसां अहेवावेनत्त्वष्टा चतुरो नदृश्वान् ॥ ६ ॥

द्वादश द्यू न्यदगोह्यस्यातिथ्ये रणान्भूभवः संसन्तः ।
 सुक्षेत्राकृण्वन्नयन्त सिन्धून्धन्वातिष्ठन्तोपधीर्निम्नमापः ॥ ७ ॥
 रथं ये चक्रुः सुवृतं नरेष्ठां ये घेनु विश्वजुवं विश्वरूपाम् ।
 त आतक्षन्तृभवो रयिं नः स्वयसः स्वपसः सुहस्ताः ॥ ८ ॥
 अपो ह्येषामजुसन्त देवा अभि कृत्वा मनसा दीध्यानाः ।
 वाजो देवानामभवत्सुकर्मन्द्रस्यऋभुक्षा वरुणस्य विभ्वा ॥ ९ ॥
 ये हरी मेघयोक्था मदन्त इन्द्राय चक्रुः सुयुजा ये अश्वा ।
 ते रायस्पोषं द्रविणान्यस्मे घत्त ऋभवः क्षेमयन्तो न मित्रम् ॥ १० ॥
 इन्द्राहः पीतिमुत वो मदं धुर्न ऋते आन्तस्य सख्याय देवाः ।
 ने नूनमस्मे ऋभवो वसूनि तृतीये अस्मिन्सवने दधात् ॥ ११ ॥
 ४।३४ “ऋभुर्विभ्वा वाज इन्द्रो नो अच्छेदं यज्ञं रत्नवेयो पयात् ।
 इदा हि वो धिपणा देव्यहामधात्पीति संमदा अगमतावः ॥ १ ॥
 विदानासो जन्मनो वाजरत्ना एत ऋभुभिर्ऋभवो मादयध्वम् ।
 सं वो मदा अगमत सं पुरन्धिः सुवीरामस्मे रयिमेरयध्वम् ॥ २ ॥
 अयं वो यज्ञ ऋभवोऽकारि यमा मनुष्वत्प्रदिव दधिध्वे ।
 प्रवोऽच्छा जुजुषाणासो अस्थुरभूत विश्वे अग्नियोत वाजाः ॥ ३ ॥
 अभूदुवो विधते रत्नवेयमिदा नरो दाशुपे मर्त्याय ।
 पिबत वाजा ऋभवो ददे वो महि तृतीयं सवनं मदाय ॥ ४ ॥
 आ वाजा यातोप न ऋभुक्षा महो नरो द्रविणसो गृणानाः ।
 आ वः पीयतोऽभिपित्वे अहमिमा अस्तं नवस्व इवग्मन् ॥ ५ ॥
 आ नपातः शवसो यातनोपेम यज्ञं नमसा हूयमानाः ।
 सज्जोषसः सूरयो यस्य च स्थ मध्वः पात रत्नधा इन्द्रवन्तः ॥ ६ ॥
 सजोषा इन्द्रवरुणेन सोमं सजोषाः पाहि गिर्वणो मरुद्भिः ।
 अग्रेषाभिर्ऋतुपाभिः सजोषा ग्नास्पत्नीभी रत्नधाभिः सजोषाः ॥ ७ ॥
 सजोष स आदित्यैर्मादयध्वं सजोषसः ऋभवः पर्वतेभिः ।
 सजोषसो दैव्येना सवित्रा सजोषसः सिन्धुभी रत्नवेभिः ॥ ८ ॥
 ये अश्विना ये पितरा य ऊती घेनुं ततल्लुर्ऋभवो ये अश्वा ।
 ये असत्रा य ऋधगरोदसी ये विभ्वो नरः स्वपत्यानि चक्रुः ॥ ९ ॥

ये गोमन्तं वाजवन्तं सुवीरं रयिंघत्थ वसुमन्तं पुरुक्षम् ।
ते अग्रेषा ऋभवो मंदसाना अस्मे घत्त ये च राति गृणन्ति ॥ १० ॥
नोपाभूत नवोऽतीवृषामानिः शस्ता ऋभवो यज्ञे अस्मिन् ।
समिन्द्रेण मदथ सं मरुद्भिः सं राजभी रत्नषेयाय देवाः ॥ ११ ॥

४।३५ इहोपयात शवसोनपातः सौधन्वना ऋभवो मापभूत ।
अस्मिन्हि वेः सवने रत्नषेयं गमन्त्विन्द्रमनु वो मदासः ॥ १ ॥
आगन्तृभूणामिह रत्नषेयमभूत्सोमस्य सुपुतस्य पीतिः ।
सुकृत्यया यत्त्वपस्यया चैकविचक्र चमसं चतुर्धा ॥ २ ॥
व्यकृणोत चमसं चतुर्धा सखे विशिन्नेत्यब्रवीत् ।
अथैत वाजा अमृतस्य पन्थां गणं देवानामृभवः सुहस्ताः ॥ ३ ॥
किं मयः त्विच्चमस एष आस यं काव्येन चतुरो विचक्र ।
अथासुतुध्वं सवनं मदाय पात ऋभवो मधुनः सोम्यस्य ॥ ४ ॥
शच्याकर्त पितरा युवाना शच्याकर्त चमसं देवपानम् ।
शच्या हरी धनुतरावतण्डेन्द्रवाहावृभवो वाजरत्नाः ॥ ५ ॥
यो वः सुनोत्यभिपिच्वे अह्नां तीव्रं वाजासः सवनं मदाय ।
तस्मै रयिमृभवः सर्ववीरमातन्त वृषणो मन्दसाना ॥ ६ ॥
प्रातः सुतमपिवो हर्यश्च माव्यन्दिनं सवनं केवलं ते ।
समभुभिः पिवस्व रत्नषेभिः सखीं यो इन्द्र चक्रे सुकृत्या ॥ ७ ॥
ये देवासो अभवता सुकृत्या श्येना इवेदधि दिवि निपेद ।
ते रत्नं धात शवसोनपातः सौधन्वना अभवतामृतासः ॥ ८ ॥
यत्तृतीयं सवनं रत्नषेयमकृणुध्वं स्वपस्या सुहस्ताः ।
तहृभवः परिविक्तं व एतत्संमदेभिरिन्द्रियेभिः पिबध्वम् ॥ ९ ॥

४।३६ “अनश्नो जातो अनभीपुरुक्थ्यो रथस्त्रिचक्र परिवर्तते रजः ।
महत्तद्वो देव्यस्य प्रवाचनं द्योमृभवः पृथिवीं यच्च पुण्यथ ॥ १ ॥
रथं ये चक्रुः सुवृत्तं सुचेतसोऽविहरन्तं मनसस्परि ध्याय ।
तां ऊन्वस्य सवनस्य पीतय आ वो वाजा ऋभवो वेद्यामसि ॥ २ ॥
तद्वो वाजा ऋभवः सुप्रवाचनं देवेषु विभ्वो अभगन्नाहित्वनम् ।
जिज्ञी यत्सन्ता पितरा सनाजुरा पुनर्युवाना च रथाय तन्तु ॥ ३ ॥

एकं विचक्र चमसं चतुर्वयं निश्चर्भणो गामरिणीत धीतिभिः ।
 अथा देवेष्वमृतत्वमानश श्रुष्टी वाजा ऋभवत्तद्व उक्थ्यम् ॥ ४ ॥
 ऋभुतो रयिः प्रथमश्रवस्तमो वाजश्रुतासो यमजीजनन्नरः ।
 विभ्वतष्टो विदथेषु प्रवाच्यो यं देवासोऽवथा स विचर्षणिः ॥ ५ ॥
 स वाज्यर्वा स ऋषिर्वचस्यया स शूरो अस्ता पृतनासु दुष्टरः ।
 स रायत्पोषं स सुवीर्यं दधे यं वाजो विभ्वाँ ऋभवो यमाविशुः ॥ ६ ॥
 श्रेष्ठं वः पेशो अधिधायि दर्शतं स्तोमो वाजा ऋभवस्तं जुजुष्टन ।
 धीरासो हिष्टा कवयो विपरिचितस्तान्व एना ब्रह्मणा वेदयामसि ॥ ७ ॥
 यूयमस्मभ्यं धिषणाभ्यस्परि विद्धांसो विश्वानर्याणि भोजना ।
 द्युमन्तं वाजं वृषशुष्ममुत्तममा नोरयिमृभवस्तक्षता वयः ॥ ८ ॥
 इह प्रजामिह रयिं रराणा इह श्रवो वीरवत्तक्षता नः ।
 येन वयं चितयेमात्यन्यान्तं वाजं चित्रमृभवो ददा नः ॥ ९ ॥

४।३७

“उप नो वाजा अध्वरमृमुक्षा देवा यात पथिभिर्देवयानैः ।
 यथा यज्ञं मनुषो विद्धा ३ सु दधिध्वे रएवाः सुदिनेष्वहाम् ॥ १ ॥
 ते वो हृदे मनसे सन्तु यज्ञा जुष्टासो अद्य धृतनिर्णिजोगुः ।
 प्रप्रः सुतासो हरयन्त पूर्णाः क्रत्वे दक्षाय हर्षयन्त पीताः ॥ २ ॥
 त्र्युदायं देवहितं यथा वः स्तोमो वाजा ऋमुक्षणो ददे वः ।
 जुह्वे मनुष्वदुपरासु विक्षु युष्मे सचा वृहदिवेषु सोमम् ॥ ३ ॥
 पीवी अश्वाः शुचद्रथा द्वि भूतायः शिप्रा याजिनः सुनिष्काः ।
 इन्द्रस्य सूनो शवसोनपातोऽनुवश्चेत्यग्रियं मदाय ॥ ४ ॥
 ऋमुमृमुक्षणो रयिं वाजे वाजिन्तमं युजम् ।
 इन्द्रस्वन्तं हवामहे सदासातममश्विनम् ॥ ५ ॥
 सेहमवो यमवथ यूयमिन्द्रश्च मर्त्यम् ।
 स धीमिरस्तु सनिता मेधसाता सो अर्वता ॥ ६ ॥
 वि नो वाजा ऋमुक्षणः पथश्चित्तन यष्टवे ।
 अस्मभ्यं सूरयः स्तुता विश्वा आशास्तरीषणि ॥ ७ ॥
 तं नो वाजा ऋमुक्षण इन्द्र नासत्या रयिम् ।
 समश्वं चर्षणिभ्य आ पुरु शस्तमद्यत्तये ॥ ८ ॥

एषां कतिपयमन्त्रा अधिदैवतपत्त उपनेयाः ।

शेषाः सर्वे मन्त्रा अधिभूतं तूपनीयन्ते ॥ ६ ॥

५१—युद्धात्प्राक्तनानामृभूणां भारतीयमनुष्यतया दस्युयुद्धात्

प्रागेवार्याणां भारतीयत्वसिद्धान्तः ।

इत्थमृभूणामेषां शिल्पं शृणुमः पुरा मनुष्याणाम् ।

भारतवर्षाभिजना ध्रुवमासंस्ते मनुष्यत्वात् ॥ १ ॥

एभिश्च निर्मितौ तावश्वौ हरिसंज्ञकौ समारुह्य ।

इन्द्रो दस्यूनवधीत् तस्मादभवः पुरैवासन् ॥ २ ॥

एष सुधन्वा राजा जनक ऋभूणां च मानुषे लोके ।

आसीद् भारतवर्षे तस्मादार्याः पुराप्यासन् ॥ ३ ॥

दस्युयुद्धाद् बहुपूर्वं सभ्यानामार्याणां भारतनिवासित्वसिद्धान्तः ।

यस्मिन्काले स्वर्ग इन्द्रोऽप्यमासीत् पामीरे वा ब्रह्मणो वास आसीत् ।

पामीरोऽयं देवपूर्णां यदासीत् तर्ह्येवासन् भारतेऽप्यार्यसभ्या ॥ ४ ॥

नैषां वासः स्वर्गलोके कदाचित् पामीराद्वा नागता भारतेऽस्मिन् ।

नो वाऽनार्याधिष्ठितं देशमेतं जित्वा तत्र स्वान्निवासाकापुः ॥ ५ ॥

युद्धेऽप्यायुः श्रूयतेऽस्मिन् सहायः सोयं राजैलेयपुत्रः श्रुतोऽस्ति ।

ऐलेयश्चेच्चाकुणा तुल्यकालोऽयोध्यायां चेच्चाकुरार्येश आसीत् ॥ ६ ॥

तस्मान्मन्ये भारतीयार्यसंघा दस्योर्युद्धात्पूर्वमेवात्र देशे ।

अस्थुस्तेषामेव देशः स्वकीयो न त्वेवास्मिन् सन्ति वैदेशिकास्ते ॥ ७ ॥

इति मधुसूदनविद्यावाचस्पतिप्रणीतस्य ब्रह्मविज्ञानशास्त्र-

सम्बन्धिनो विज्ञानेतिवृत्तवादस्य द्वितीयपर्वणि

भारतवर्षीयार्योपाख्याने आर्यदासीयाख्यो

द्वितीयः प्रक्रमः सम्पूर्णः ॥ २ ॥



* अथ विज्ञानभवनं तृतीयः प्रसङ्गः *

पुरायुगे दिव्यप्राणपरीक्षणार्थं विज्ञानशालानिर्माणम् ।

आर्य्यानार्य्यविद्रोहनिमित्तभूतं सिन्धुसरस्वतीसंभेदे सूर्य्याधिष्ठानम् ॥

आर्य्याणां दस्यूनां सूर्य्योऽभ्यामर्हने निमित्तमभूत् ।

तद्दर्शयामि तावद् यत्र स सूर्य्यो यथा चासीत् ॥ १ ॥

वेत्तं वसिष्ठमुख्याः सूर्य्यस्य गवां तथोषसो विद्याम् ।

चक्रे सूर्य्यं नामाधिष्ठानं प्राक् सरस्वतीकूले ॥ २ ॥

अस्ति विदस्तासिन्धोरन्तरतः सा सरस्वती धारा ।

सरयूसहिता काचित् सान्या प्राचीसरस्वत्याः ॥ ३ ॥

“सरस्वती सरयूः सिन्धुरुर्मिभिर्मर्महो महीरवसा यन्नुवक्षणीः ।

देवीरापो मातरः सूदयित्त्यो घृतवत्ययो मधुमन्तो अर्चता ॥

इयं शुष्मेभिर्विसखा इवारुजन् सानुगिरीणां तविषेभित्तिभिः ।

पारावतस्नीमवसे मुष्टकिभिः सरस्वतीमाविवासेम धीतिभिः ॥” (१०।६)

सा पारसीकवेदे हरखुवतीत्याख्यया पठिता ।

सर्पसरोवरतोऽस्या निर्गमनं दर्शितं मात्स्ये ॥ ४ ॥

“हेमकूटस्य पृष्ठे तु सर्पाणां तत्सरः स्मृतम् ।

सरस्वती प्रभवति तस्माज्ज्योतिष्मती तु या ॥” (मात्स्ये १६१।६४)

मन्ये सर्पसरस्तत् पञ्चाशत् क्रोशदीर्घं यत् ।

सार्द्धक्रोशप्रतप्तं भाषायामद्य ‘पानकाङ्गा’ख्यम् ॥ ५ ॥

“काश्मीरेष्वेव नागस्य भवनं तक्षकस्य च ।

वितस्ताख्यमिति ख्यात सर्वपापप्रमोचनम् ॥” (पाद्म खं० २५ अ०)

इत्थं पाद्मे स्वर्गखण्डे (२५ अ०) वितस्ता नामाख्याता तक्षकाणां पुरी या ।

आसन्नेऽस्यास्तप्सरस्तक्षकाणां तीर्थं तस्मात्सा सरस्वत्युपेता ॥ ६ ॥

काश्मीरादुत्तरतो विन्दुसरस्तत्सरीकुलेत्युक्तम् ।

१—अवस्ताख्ये । २—हरकुअती ।

‘सरपस’ नाम च तस्मात्सरस्वतीत्याहुरन्ये तु ॥ ७ ॥

सिन्धोः सङ्गमदेशे तस्य वामे च दक्षिणे च तटे ।

यासीत्सरस्वती पूस्तस्यां सूर्य्यप्रतिष्ठाऽऽसीत् ॥ ८ ॥

ऊचे वसिष्ठ एतां सरस्वतीं पुरि सरस्वत्याम् ।

प्रब्रह्मन्तीं रथ्यामिव तत्र वसिष्ठः स वसति स्म ॥ ९ ॥

स्थानं यदुन्नतं स्यान्निसर्गजं कृत्रिमेण वा विधिना ।

तत्रास्ति धरुणशब्दः सरस्वती पूरियं धरुणम् ॥ १० ॥

“प्रक्षोदसा धायसा सस्र एषा सरस्वती धरुणमायसी पूः ।

प्र वा बधाना रथ्येव याति विश्वा आपो महिना सिन्धुरन्याः ॥

एकाऽचेतत् सरस्वती नदीनां शुचिर्यती गिरिभ्य आ समुद्रात् ।

रायश्चेतन्ती भुवनस्य भूरेर्घृतं पयो दुदुहे नाहुषाया ॥

इमा जुह्वाना युष्मदा नमोभिः प्रतिस्तोमं सरस्वती जुषश्च ।

तव शर्मन् प्रियतमे दधाना उपस्थेयाम शरणं न वृक्षम् ॥ (७।६।५)

अयमुते सरस्वती वसिष्ठो द्वारावृतस्य सुभगे व्यावः ।

वर्धंशुभ्रे स्तुवतेरासि वाजान् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥”

भरद्वाजो वार्हस्पत्य इमां सरस्वतीं स्तौति ।

पुत्रो बृहस्पतेः प्रागत्रैवासीत् पुरा भरद्वाजः ।

सहकारी स वसिष्ठस्यासीत् स च तां सरस्वतीं स्तौति ॥ १ ॥

(६।६१) “इयमददाद्रभसमृणाच्युतं दिवोदासं वच्यश्वाय दाशुषे ।

या शश्वन्तमाचखादावसं पणिं ता ते दात्राणि तविषा सरस्वति ॥ १ ॥

इयं शुष्मेभिर्विसखा इवारुजत् सानु गिरीणां तविषेभिरुर्मिभिः ।

पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभिः सरस्वतीमाविवासेम भीतिभिः ॥ २ ॥

सरस्वतीदेवनदो निवर्ह्य प्रजां विश्वस्य वृसयस्य मायिनः ।

उतक्षितिभ्योऽवनीरविन्दो विषमेभ्यो अस्रवो वाजिनीवति ॥ ३ ॥

प्राणो देवी सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती ।

धीनामविच्यवतु ॥ ४ ॥

यस्त्वा देवि सरस्वत्युपब्रूते धने हिते ।

इन्द्रं न वृत्रतूर्ये ॥ ५ ॥

स्वं देवि सरस्वत्यैवां वाजेषु वाजिनी ।
 रदा पूषेव नः सेनिम् ॥ ६ ॥
 उत स्या नः सरस्वती घोरा हिरण्यवर्तनि ।
 वृत्रघ्नी वष्टि सुष्टुतिम् ॥ ७ ॥
 यस्या अनन्तो अह तस्त्वेपश्चरिष्यगुरुर्यवः ।
 अमश्चरति शेरुवत् ॥ ८ ॥
 सा नो विश्वा अतिद्विषः स्वसुरन्या ऋतावरी ।
 अतन्नहेव सूर्यः ॥ ९ ॥
 उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा ।
 सरस्वती स्तोम्याभूत् ॥ १० ॥
 आपभुषी पार्थिवान् पुरुरजो अन्तरिक्षम् ।
 सरस्वती निदृष्टातु ॥ ११ ॥
 त्रिषधस्था सप्तधातुः पञ्चजाता वर्धयन्ती ।
 वाजे वाजे हव्याभूत् ॥ १२ ॥
 प्राया महिन्नासु महिनासु चेकिते गुम्नेभिरन्या अपसामपत्तमा ।
 रय इष बृहती विभ्वने कृतोपस्तुत्या चिकितुषा सरस्वती ॥ १३ ॥
 सरस्वत्यभि नो नेपि वस्यो माप स्फरीः पयसा ना न आधन् ।
 जुषस्व नः सख्या वेश्या च मा त्वत्त्वेवाप्यरणानि गन्म ॥ १४ ॥

सूर्यसंस्थापनस्वरूपम् ।

अस्याः सिन्धुप्रान्ते प्रवहन्त्या अनुतटं सरस्वत्या ।
 नगरी सरस्वती या तस्यां सौरं बृहत् सदनम् ॥ १ ॥
 तत्र वसिष्ठप्रमुखा द्विचक्रयन्त्रेण सूर्यसंज्ञेन ।
 उपसं सूर्यज्योतिश्चन्द्राद्यंशून् परीक्षयामासुः ॥ २ ॥
 वैज्ञानिकैर्महर्षिभिरासीद् रचितं पुरा परीक्षार्थम् ।
 यत्सूर्यमन्दिरं तत् स्तूपाकारं शिलानयं वृत्तम् ॥ ३ ॥
 स्तूपादस्माद् बाह्यभागे समन्तान्नाशालाश्रेणिममम्बुनि ।
 प्रासादोऽभूदम्बरोल्लेखिशृङ्गो नानाकक्षोऽयं शनन्तन्तराय ॥ ४ ॥

प्रासादेऽस्मिन् मुख्यवेदमाध्यवात्सीत् सूर्यः पश्चादेतश्चोपसञ्च ।
 वार्हस्पत्योऽन्ये वसिष्ठादयो वा सर्वेप्यासन् मन्दिरेऽस्मिन्नियुक्ताः ॥ ५ ॥
 प्रासादानां मध्यभूमौ तदासीत् स्तूपाकारं सद्य वैवस्वतं तत् ।
 द्विप्राकारं छत्रसोपानगम्यातिध्वान्तान्तर्वेशमनिम्नावकाशम् ॥ ६ ॥
 सूर्यस्थानं निस्तलं वर्तुलं तद् ब्रह्माण्डाभं श्लक्ष्णवाह्यान्तरङ्गम् ।
 अन्तर्भूम्या अर्द्धमूर्ध्वं वहिर्धा तत्रागारं निम्नभूमीतलेन्तः ॥ ७ ॥
 रन्ध्रैरच्छादमावरुद्धैः कृतोर्ध्वं भाभैः सूक्ष्मैर्नीलदेशोपपन्नैः ।
 तत्सोपानं द्वारयोः क्लृप्तमन्तर्द्वारं द्वाराधः स्थितं भिन्नभिन्नौ ॥ ८ ॥
 द्वारेकस्मिन् (१) बाह्यभिन्नौ ततोऽन्तः प्रादक्षिण्यात् सम्मुखौ द्वारधस्तात् ।
 अन्तर्भिन्नौ या तथाऽन्तः प्रविष्टः सूर्यः साक्षाच्चक्रं पश्यति स्म ॥ ९ ॥
 सूर्यः गृहस्थैतस्यच्छदिपटलेऽकृत सा रन्ध्राणि ।
 दुर्लक्षाणि यथैभ्यो रश्मिश्चक्रे समं न्यपतत् ॥ १० ॥
 अष्टाचत्वारिंशद्रेखाः पूर्वापराः पटले ।
 प्रतिरेखं रन्ध्राणमभवदशीतं शतं (१८०) न्यस्तम् ॥ ११ ॥
 संवत्सरेण सूर्यो व्योम्नि चरन् यत्र यत्र देशे स्यात् ।
 तत्तत्सम्मुखवरन्ध्रादंशुमिपातोत्र चक्रे स्यात् ॥ १२ ॥
 यत्नं वायं प्रागुदेतिस्म सूर्यस्तर्ह्येवास्मिन्नश्मके विम्बितः स्यात् ।
 खे संचारेऽप्यत्र चक्रे स्थिरोऽर्कोऽयास्तभावे नक्तमत्राप्यदृश्यः ॥ १३ ॥
 तत्राश्चर्यं संवृतेऽस्मिन्नगारे ध्वान्ते गाढे सूर्यः एकत्र तस्थौ ।
 नामौ चक्रस्याश्मके विम्बितोऽभात् प्रातःकालात् सायमन्तं स सूर्यः ॥ १४ ॥

सूर्यचक्रस्वरूपम् ।

तत्रागारेन्तः स्थले चक्रयुग्मं हैमं सांशुश्लिष्टमासीत् स सूर्यः ।
 नाभिस्थोऽयं नास्य तत्रावलम्बोऽत्रात्याश्चर्यं खे निराधार एव ॥ १ ॥
 सूर्ये द्विचक्ररूपे एकं चक्रं बृहत् तदन्तरतः ।
 लुद्रं चक्रं निहितं तत्र प्रतिविम्ब एति बृहतोऽस्य ॥ २ ॥
 बृहदपि चक्रं द्विकृतं परिवर्तते क्रमेण ते चक्रे ।
 संवत्सरेण सौरैर्यैते परिवृत्तिमायातः ॥ ३ ॥

चक्रद्वितये चैकं भवति निगूढं सदैकवद् दृश्ये ।
 षण्मासैः पर्यायाद् दृष्टमदृष्टं वभूव तच्चित्रम् ॥ ४ ॥
 'द्वै ते चक्रे सूर्ये ब्रह्माणं ऋतुथा विदुः ।
 अथैकं चक्रं यद् गुहा तदद्भुतय इद् विदुः ॥' (१० । ८५ । १६)
 एतच्चक्राधस्ताद् भूमौ चन्द्रं समाहितं धरुणे ।
 ऊर्ध्वस्थ सूर्यरश्मिग्राहि परीक्षास्ति तत्रैव ॥ ५ ॥

सूर्यविज्ञानादाधिदैविकसिद्धिः ।

गौर्व्योतिरायुरेते सूर्ये सन्ति त्रयो भावाः ।
 भूतग्रामो देवग्रामात्मग्रामकौ च तेभ्यः स्युः ॥ १ ॥
 सर्वं ज्योम व्याप्नुवन् सोते एतत् सूर्यग्राणे द्वादशात्मन्यपीतः ।
 ज्योतिर्भावं भावयत्यत्र देवाः सेन्द्रा इन्द्रः शुक्रकृष्णादिरूपम् ॥ २ ॥

सूर्यविज्ञानादाधिभौतिकसिद्धिः ।

तस्मिश्चक्रे शङ्खोऽन्ते सहस्रं तीव्रज्योतिर्भासते चक्रमध्ये ।
 ज्योतिर्व्यस्मिन् ये सहस्रं विभागास्तेषामेकः सत्यकृत् कामधुक् च ॥ १ ॥
 शेषा गावस्तास्त्रिधा स्युर्विभक्ता आदित्यानां रुद्रकाणां वसूनाम् ।
 चक्रेऽन्यस्मिन् द्वादशैकादशाष्टौ द्वौ चेति स्युस्त्रिंशदंशाश्चरच ॥ २ ॥
 शङ्खग्रामे शक्तिवैचित्र्यहेतुर्गोभ्यो वर्णाः सप्त पार्थक्यत स्युः ।
 अन्योन्यस्मिन् घातविक्षेपकर्मद्वारा नानाशक्तयः प्रादुरासन् ॥ ३ ॥
 इति चक्रद्वययोगात् प्रतिफलिता अश्वो विभक्ताः स्युः ।
 विशकलितास्ता गावो भवन्ति ते सप्तसप्तका मरुतः ॥ ४ ॥
 गन्धादीस्तु विशेषान् जनयन्तीमानिमे मरुतः ।
 तत एव भूतभेदा भवन्ति नानाविधा लोके ॥ ५ ॥
 मरुतां पुनर्विभागादेकादशजातयो हि ते रुद्राः ।
 रुद्राणां च विभागादादित्या द्वादशावि स्युः ॥ ६ ॥
 इन्द्रस्तेषामेकोऽस्त्योक्तः सारीश्वरो महावीर्यः ।
 आदित्यरुद्रमरुतोऽवलम्बिताः सन्ति तडेन्द्रे ॥ ७ ॥

“यथाग्निगर्भो पृथिवी तथा द्यौरिन्द्रेण गर्भिणी ॥” (यजुः०) ।
 इत्थं वदन्त ऋषयः सूर्येऽपश्यन् विशिष्यैतम् ॥ ८ ॥
 आयुः स एष इन्द्रः स हि सर्वेषां भवत्यात्मा ।
 प्रत्यर्थमेव तिष्ठन् देवान् भूतानि वा जनयेत् ॥ ९ ॥
 देहे देहे बृहतीसहस्रभेदास्त्रिधा प्रवर्तन्ते ।
 प्राणमनोवाग्भेदादायुस्तन् तत्र सम्यगैक्षन्त ॥ १० ॥
 आयुस्त्वधृतः प्राणस्तत आदित्या भवन्ति तैरात्मा ।
 प्रत्यात्मतस्तु गावः सहस्रमभितः प्रवर्तन्ते ॥ ११ ॥
 योगाद् गवां तु रुद्रा एकादशजातिका विजायन्ते ।
 रुद्रे तु रुद्रयोगान्मरुतः स्युः सप्तसप्तकास्तत्र ॥ १२ ॥
 एषामेव तु मरुतां योगाविभेदाद् भवन्ति वसवोष्टौ ।
 गन्धो रसश्च रूपं स्पर्शो वाग् धृतिमती ध्रुवत्वं च ॥ १३ ॥
 मात्राभिराभिरेव प्रज्ञानप्राणभूतानि ।
 प्रभवन्त्येषां ग्रामा धातूद्भिच्चेतनैस्त्रिविधाः ॥ १४ ॥
 यत्किञ्चिदत्र वीक्षे तत् खनिजोद्भिज्जचेतनतः ।
 त्रेधा विभक्तमेतत् सर्वं सवितुः प्रसूतमंशुभ्यः ॥ १५ ॥
 “नूनं जनाः सूर्येण प्रसूता अयन्नर्थानि कृण्वन्नपांसि ।
 इत्थं वसिष्ठ ऊचे सर्वेषां सूर्यजनितत्वम् ॥ १६ ॥
 जगति हि सृष्टिविधाने यद्वैचित्र्यं प्रदृश्यते क्वापि ।
 तस्यैव एव सूर्यः कारणमस्तीति सिद्धान्तः ॥ १७ ॥
 सूर्ये द्युस्थे के के सन्ति पदार्थाः कथं च तैर्विश्वम् ।
 उत्पद्यते कुतो वा नानाभेदा इहोत्पन्नाः ॥ १८ ॥
 कथमिह वायुः पवते निर्वातं वा कुतो भवति ।
 कथमिह मेघा वृष्ट्यै कदाचिद्दुद्भूय शाम्यन्ति ॥ १९ ॥
 एतत् सर्वं ज्ञातुं भूमौ सूर्यं प्रतिष्ठाप्य ।
 चक्रद्वयप्रभावान् सर्वानर्थान् परीक्षयामासुः ॥ २० ॥
 चक्रद्वयेऽत्र सौरान् रश्मीन् संश्लेष्य विश्लेष्य ।
 नाना भावा जनिताः सर्वं विज्ञानमुपलब्धम् ॥ २१ ॥

सूर्यविज्ञानादाध्यात्मिकसिद्धिः ।

संकलितैर्व्यवकलितैरंशुभिरर्था वहिः क्रियन्ते त्स ।
 देवानामिदमेव तु विज्ञानं यज्ञयोनिरभूत् ॥ १ ॥
 संकलितैर्व्यवकलितैरंशुभिरात्मनि बलं हितं यज्ञात् ।
 आत्मा परोक्षदर्शी परोक्षकारी च यज्ञतो भवति ॥ २ ॥
 अपि मृतमुज्जीवयते यज्ञात् सिद्धयन्ति भुक्तयः सर्वाः ।
 या चाष्टयोगसिद्धिः सा यज्ञादात्मनि प्रभवत् ॥ ३ ॥
 “अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा ।
 प्राप्तिः प्राकान्म्यमीशित्वं वशित्वं चाष्ट सिद्धयः” ॥
 एतद्यज्ञविधाने यजमाननियुक्त ऋत्विगाख्यातः ।
 ऋत्विज ऋषयो ह्युषिता वैज्ञानिकता हि सूर्यविज्ञानात् ॥ ४ ॥

विज्ञानशालीयसूर्यप्रतिमायाः प्रतिमाराधनप्रचारमूलवीजत्वम् ।

अत एव सूर्यसदनाद् देवप्रतिमाप्रकल्पनारम्भः ।
 वेदेऽन्योपि च देवप्रतिमार्चायाः प्रचार आन्नातः ॥ १ ॥
 ऋग्वेदे सहितायां चतुर्थमण्डलचतुर्विंशे ।
 सूक्ते दशमर्च्येन्द्या मूर्तेः क्रयमाह वामदेव ऋषिः ॥ २ ॥
 उत्कृष्ट बहुमूल्यं विक्रीणन् द्रव्यमल्पमूल्येन ।
 पूजाफलोपलब्धौ समय प्रत्यर्पणाय चक्रे सः ॥ ३ ॥
 “भूयसां वस्त्रमचरत् कनीयोऽविक्रीतो अक्रानिपं पुनर्यनः ।
 स भूयसा कनीयो नारिरेचीद् दीना दृजा विदुहन्नि प्रवाणम्” । (१।२।१६)
 “क इमं दशभिर्ममेन्द्रं क्रीणाति धेनुभिः ।
 यदा वृत्राणि जह्वनद् अथैनं मे पुनर्जदन्” । (४।२४।१०)
 इन्द्रप्रतिमापूजाप्रकारमप्ययमुपादिक्षत् ।
 देहोपचारभोगाहवनमनःप्रेमभावनास्तुतिभिः ॥ ४ ॥
 “आदिद्ध नेम इन्द्रियं यजन्ते आदित् पक्तिः पुरोज्ञां रिरित्यात् ।
 आदिस्सोमो विपष्ट्यादसुष्वीनादिः शुजोप वृषभं यजार्चः” । (४।२४।४)

“कृणोत्यस्मै वरिवो य इत्था इन्द्राय सोममुशते सुनोति ।

सध्रीचीनेन मनसाऽविवेनन् तमित् सखोयं कृणुते समत्सु ।” (४ । २४ । ६)

“य इन्द्राय सुनवत् सोममद्य पचात् पक्तीरुत भृज्जाति धानाः ।

प्रतिमनायो रुचथानि ह्यर्यन् तस्मिन्दधद्रूपणं शुष्ममिन्द्रः ।” (४ । २४ । ७)

सर्वप्रथमं मन्ये देवयुगो वामदेव एवायम् ।

देवप्रतिमापूजां मानुषलोके प्रचारयामास ॥ ५ ॥

यद्यपि ततोपि पूर्वं सारस्वतसूर्यसदनेभूत् ।

अपि सूर्यचक्रमूर्तेरुपासनारम्भ इत्युक्तम् ॥ ६ ॥

किन्त्वासीदिह सेयं विज्ञानार्थैव सूर्यचक्रस्य ।

अंशुपरीक्षोपासा देवप्रतिमार्चना नैवम् ॥ ७ ॥

योगस्त्रिधा क्रियाया भक्तेर्ज्ञानस्य भेदेन ।

भक्तेस्ते चत्वारो हठलयवन्मन्त्रराजयोगाख्याः ॥ ८ ॥

देवप्रतिमायामियमुपासनामन्त्रयोगोऽस्ति ।

योगात्रियमार्चरिताद् देवीं रक्षामपेक्षितां लभते ॥ ९ ॥

“को देवानामवो अद्यावृणीति क आदित्यां अदितिं ज्योतिरीहे ।

कस्याश्विनाविन्द्रो अग्निः सुतस्यांशोः पिवन्ति मनसाऽविवेनम् ।

देवानामिदवो महत् तदावृणीमहे वयम् ।

वृष्णामस्मभ्यमृतये ।” (८ । ८३ । १) (८ । ७२ । १)

इत्थं महर्षयः प्राग् देवीं रक्षां परामुपादिक्षन् ।

मन्त्राराधितदेवः प्रत्यासन्नो मवन्नवति ॥ १० ॥

यत्र त विज्ञानार्थो न मन्त्रयोगाय वा मनोयोगः ।

सविकल्पकः समाधिर्न यत्र सार्चा वृथा क्रियते ॥ ११ ॥

विज्ञानशालाकर्ममाधिकारितया नियुक्तानां सूर्यैतशोषसामितिवृत्तम् ॥

सूर्योपसोः प्रथमतः सूर्यायतनप्रबन्धकर्तृत्वम् ॥

सौरं धामैतद्ध्यधीष्टे दिविष्टो वागध्यक्षो देवतानां पुरोधाः ।

भूमिष्ठोऽयं तद्वसिष्ठोऽध्यतिष्ठद् बार्हस्पत्यस्तस्य चासीत् सहायः ॥ १ ॥

भरद्वाजश्च शंयुश्च बार्हस्पत्यौ प्रसिद्धयतः ।
उभावपि तु पर्यायादत्रास्तां सूर्यमन्दिरे ॥ २ ॥
यद्यप्यत्रासन् बृहस्पत्यधीना द्रष्टारोऽन्येऽन्ये वसिष्ठादयश्च ।
किन्तु स्थाने नित्यरक्षास्वभूवन् सूर्याधीना बह्व्य एवोपसः प्राक् ॥ ३ ॥
स्वद्वो नाम बभूव । क्षितिपतिरेतस्य पुत्रस्तु ।
सूर्य इति स्वं विरुदं सूर्योपासकतया जगृहे ॥ ४ ॥
स च सौवश्वः सूर्यो गन्धर्वः ख्यायते जात्या ।
घोरः प्रगाथ ऊचेऽष्टमादिमैकादशे हि तथा ॥ ५ ॥
सूर्यायतनाध्यक्षः स हि सूर्योऽभूत् सहोषसा पूर्वम् ।
सूर्यं च दिवस्पुङ्गं त्रिदुरुषसं तां दिवस्पुत्रीम् ॥ ६ ॥
वरुणस्य कापि जामिर्भगस्वसाऽसीदुषा इति प्रथिता ।
सूर्यायतने सासीदुषसां प्रवरा तु बह्वीनाम् ॥ ७ ॥
रक्षति सूर्यं सूर्यः सोषा आप्तान् जनान् सभाजयति ।
सूर्यः सूर्यपरीक्षासुषः परीक्षासुषा जनयेत् ॥ ८ ॥

इन्द्रक्रोधात् सूर्ये निराकृते पश्चादेतशोपसोः सूर्यायतनप्रबन्धकर्तृत्वम् ।

सूर्येण सख्यमभवद्भयोः कृष्णस्य लम्पटेत्येति ।
सूर्यायेन्द्रोऽक्रुद्धयत्कृष्णासुरसौहृदाद्धेतोः ॥ १ ॥
अत एवैतशानामा तैर्यग्योनोऽश्वजातिकः सुष्टिः ।
आचक्रमे ग्रहोतुं सूर्यं सूर्याय दुद्रोह ॥ २ ॥
तत्र च सूर्यं तशयोस्तयोः प्रवृत्तेऽत्यभीमर्हे ।
आस्कन्दयत् स सूर्यस्तमेतशं कृष्णसहयोगात् ॥ ३ ॥
तत्र स इन्द्रोऽश्वाभ्यां वातजवाभ्यां समानयत्कुत्सम् ।
अप्रच्छन्नं सूर्यं गन्धर्वं छद्मानाऽऽक्राम्यत् ॥ ४ ॥
एतशमेतमरक्षत् समरे सूर्यं पराभाव्य ।
इन्द्रोऽनुगृह्य तस्मिन् सूर्यायतने न्ययुङ्क्तापि ॥ ५ ॥
“अस्मा इदुत्यदनुदाप्येषामेको यद् वत्रे भूरेरीशानः ।
प्रैतशं सूर्यं पस्पृधानं सौवश्ये सुष्टिमावदिन्द्रः ॥” (१६१।१४ नोपार्गः)

“यत् तुदत् सूर एतशं वडू वातस्य परिणा ।

वहत्कुत्समार्जुनेयं शतक्रतुस्सरद् गन्धर्वमस्तुतम् ॥”

इन्द्रकृतैतशरक्षा चक्रापहतिश्च सूर्यस्य ।

तुर्ये सप्तदशस्य त्वृच्याम्नाते चतुर्दश्याम् ॥ ६ ॥

“अयं चक्रमिपणात् सूर्यस्य नेतशं रीरमत सस्रमाणम्

आकृष्ण ईं जुहुराणो जिघत्ति त्वचो बुध्रे रजसो अस्य योनौ ॥” (४।१७।१४)

नोधा गौतम इव तत् प्रोवाचावस्युरात्रेयः ।

पञ्चम एकत्रिंशस्यैकादश्यामृचि द्वितयम् ॥ ७ ॥

“सूरश्चिद्वरं परितक्यायां पूर्वं करदुपरं जुजुवांसम् ।

भरच्चक्रमेतशः संरिणाति पुरो दधत् समिष्यति क्रतुं नः ॥” (५।३१।११)

पञ्चम ऊनत्रिशे शाक्त्यो यद् गौरवीतिरिन्द्रमिमम् ।

महयति यस्मिन्नेतशसंरक्षणमुपदिशत्येषः ॥ ८ ॥

“अधकृत्वा मघवन्तुभ्यं देवा अनुविश्वे अददुः सोमपेयम् ।

यत्सूर्यस्य हरितः पतन्ती पुरः सतीरुपटा एतशे कः ॥” (५।२६।५)

एतशस्य मानुषस्याप्याधिदैविकवद् वृत्तिः ।

संवत्सरे तु कतिधा रथमारुढं स एतशः सूर्यम् ।

स्वयमुपवृहन्नुदग् दिशि सीमाप्रान्ते दिवो नयति ॥ १ ॥

“उदुत्यदर्शतं वपुर्दिव एति प्रतिहरे ।

यदी माशुर्वहति देव एतशो विश्वस्मै चक्षसे अरम् ॥” (७।६६।१४)

अर्थाहरणे कर्मणि ये नियता व्यापृता नरा भृतकाः ।

हरितो नरास्त उक्ताः शिरसा रश्मिभिरिमे हरन्त्यर्थान् ॥ २ ॥

इन्द्रश्चक्रं स यदा दिवमनयत् यत्र हरितो नृन् ।

व्यरमयतेन्द्रो ना त्वयमेतश एकोऽहरच्चक्रम् ॥ ३ ॥

“त्वं सूर्यो हरितो रामयो नृन् भरच्चक्रमेतशो नायमिन्द्र ।

प्रास्यपारं नवतिं नाव्यनामपि कर्तमवर्तयोऽयज्यून ॥” (१।१२१।१३)

‘एतशाश्वकृतपरीक्षा ।

सूर्यस्थाननियुक्तं स एतशः सूर्यमन्वीक्ष्य ।

आयुर्ददर्श सम्यक् सूर्यादध्यात्ममुपसृप्तम् ॥ १ ॥

* वरुणस्य राजधान्यां वाह्रीके भृगुमहर्षिरभून् ।

भृगुवंश्य एतशोऽय कौपीतकिनोदितस्त्रिंशे ॥ २ ॥

अपि चैतरेय ऊचे त्रिंशोऽप्येव त्रयस्त्रिंशे । + (३ । ३३)

एतश आयुरपश्यच्छन्दांस्यप्येतशप्रलाप इति ॥ ३ ॥

अहोरात्रवृत्तानां छन्दःसंज्ञानामेतशनाम्नां विविचितानां सूर्याश्वत्वम् ।

तत्परीक्षकत्वात् सुप्तिराजस्य मनुष्यस्याप्येतशत्वम् ।

प्रजापतेः सूर्यसतोऽन्ति पृथ्वां यद्वयत् सोऽश्व इति प्रसिद्ध ।

स सप्तसंस्थो विपुबाध उर्ध्वप्रदेशभेदादिह सूर्यदृष्टे ॥ १ ॥

विपुवन्मण्डलतोऽर्वाक् त्रीणि त्रीण्येव तूदक् च ।

सन्ति समानान्तरवत् कृतान्यहोरात्रवृत्तानि ॥ २ ॥

सप्तानामपि तेषां गयत्र्युष्णिक् तथाऽनुष्टुप् ।

बृहती पंक्तिस्त्रिष्टुप् जगतीति च सन्ति नामानि ॥ ३ ॥

गायत्र्यामुदगयनं वृक्षिणमयनं जगत्यां स्यात् ।

रात्र्यहनी तु समाने भवतः सूर्यो बृहत्यां चेन् ॥ ४ ॥

* ‘एतशो ह वै मुनिर्यज्ञस्यायुर्ददर्श । स ह पुत्रानुवाच । पुत्रका यज्ञस्यायुर्ददर्श । तदभिलक्षितमि ।

मा मा हृष्टं ते ह तथेत्यूचुः तद्वाभिललाप । नस्य ह ज्येष्ठ पुत्रोभित्त्वा सुतमपि जगद—एतदे मे

पितेति । तं होवाच—अयनस्याधिकत्वां चात्मास्तु । पाणिष्ठा ते प्रजा करोमि । यदे मे जगत्सृज्यं नमः-

गृहीष्यः । शतायुषं गामकरिष्यं सहज्रायुषं पुनश्चमिति । तस्मादेति जगतां पात्रेदेनां तस्मात् सृज्यं-

पाणिष्ठाः । पित्रा हि शप्ता. स्वया देवतया, स्वेन प्राजायतिना’ (इति ओ० ब्रा० १० । ५)

+ (१) ‘एतशो ह वै मुनिर्यज्ञस्यायुर्ददर्श । यज्ञस्यायननामामिति हेतुना । स एतशः । एतः एतशः-

आप्लवन्ते प्रतीपं प्रतिस्त्वनमिति ॥’ (ऐ० ब्रा० ३० । ३३)

(२) ‘सर्वाणि छन्दास्येतशप्रलापः । छन्दानां ह्येव स्मा दंतस्तद्वत् ३ । एतशः एतः एतः एतः-

प्रलापः ।’ (ऐ० ब्रा० ३० । ३३)

यावान् सप्तच्छन्दोभिरवच्छिन्नो दिवः प्रदेशोऽयम् ।
 सूर्यरथं तं ब्रूमः सप्ताश्वं चैकचक्रं च ॥ ५ ॥
 यद् भास्वद्गतितर्म्हं प्रसिद्धयति क्रान्तिवृत्ताख्यम् ।
 रथचक्रं तद् ब्रूमस्तत्सयुजः सन्ति सप्ताश्वाः ॥ ६ ॥
 एषा वै परिभाषा पशवश्छन्दांसि देवानाम् ।
 शतपथचतुर्थकाण्डे तार्तीयकपञ्चमेऽधीता ॥ ७ ॥ (४ । ३ । ५ । १)
 सप्तच्छन्दांस्यश्वाः सप्तमुखो वा स एक एवाश्वः ।
 एतश्चेतं ब्रुवते एतश्च एतं ददर्श सम्यगृषिः ॥ ८ ॥
 तिर्य्यग्योनावश्वयोनिर्य आसीत् कश्चिद्वर्गस्तस्य राजैष सुखिः ।
 सूर्यस्याश्वं यद्दर्शेतशाख्यं तस्मादेषोऽप्येतशोऽभूत् प्रसिद्धः ॥ ९ ॥

उपसं: सूर्यायतनस्थाया बहवः प्रमेदाः ।

आसन्नपसी बह्व्यः पर्यायेणात्र कर्मकारिण्यः ।
 तासामेका सूर्यायतनस्था सूनरी नाम ॥ १ ॥
 प्रागुदयादिह चक्रे केतौ चित्रा प्रभोदेति ।
 तां सूनरी ह्युपास्ते नाखिलभास्ते तु साऽभास्ति ॥ २ ॥
 योषा सूर्यसदेशे नक्तं शेते विभावरी सोक्ता ।
 सैव पुनः त्यादहना प्रातर्यात्रां प्रकुर्वाणा ॥ ३ ॥
 अहना चरति गवाश्वोपेतं वाजं प्रयच्छन्ती ।
 दिवि तु भुवनस्य पत्नी याति मनुष्येषु मानुषीनाम्ना ॥ ४ ॥
 पञ्चक्षितिषु सरन्ती यतस्ततः पुंश्चली भवत्प्रेषा ।
 तेन भुवनस्य पत्नीत्यहना सा या दिवि क्रमते ॥ ५ ॥
 अपि सा सर्वाध्यक्षा तेन च भुवनस्य पत्नी सा ।
 यो विश्वकर्मजनको भुवनः सा तस्य पत्नी वा ॥ ६ ॥
 सूर्यस्यैका योषा तामाहुर्वाजिनीवतीं नाम्ना ।
 स हि गन्धर्वः सूर्यः सूर्यायतनेऽधिकारवानासीत् ॥ ७ ॥
 स्वर्गधन्ताह्यैर्वसुभिः काले काले प्रदीयमानस्य ।
 कोशं धनस्य रत्नानि या सा चित्रा मघा नाम ॥ ८ ॥

ते बह्व्यो बहन्ति तु ये संभारान् कुतश्चिदन्यत्र ।
 बह्वी नामाध्यक्षा काचिदुषा सा मघोन्याख्या ॥ ६ ॥
 ऋषयस्तु सूर्यरश्मीन् परीक्षितुं येऽत्र समवयन्त्यसकृत् ।
 तेषां परिचर्यायां जरयन्ती नाम काचिदुषा ॥ १० ॥
 विश्वपिशेति तृतीया कृतं पदं सायणः प्राह ।
 अथवा विश्वपिशा सा या बहुरूपा रथेनैति ॥ ११ ॥
 मधुघा च रोचनान्या ऋतावरी रेवती चान्या ।
 इत्थं बहवो भेदा आसन्नुषसो दिवस्पुत्राः ॥ १२ ॥
 एताः कर्मनियुक्ता उषसः कर्माख्यया ख्याताः ।
 इतरा विश्राम्यन्तः सर्वा भद्राभिधानाः स्युः ॥ १३ ॥
 उषसः सर्वा आसन् प्रसन्नहृदयाः सदा हसद्वदनाः ।
 मधुभाषिण्यः प्रेम्णा कर्षन्त्यश्चारुसर्वाङ्गयः ॥ १४ ॥

उषसो मानुष्या अप्याधिदैविकवद् वृत्तिः ।

सूर्योदयादेव रथं हिरण्मयं सारुह्य दूरानभिगति मानुषान् ।
 अध्यासितं तत्सहचारि दैवतैः शतं रथानामनुयापि पृष्ठतः ॥ १ ॥
 वाजेश्च पूर्णं वसुभिश्च भूरिभिर्नयन्त्यनोऽश्वानपि गाश्च भूयमी ।
 सूर्यप्रसोदोपहतान् विभाजयत्यर्थानिमान् प्राणिजने दिने दिने ॥ २ ॥
 गृहे गृहे संप्रचरन्त्यनातुरा समीक्ष्य सा दीनजनान् नवान्नयान् ।
 तेभ्यः प्रयच्छत्यहना यथोचितं धनानि वाजानपि गाश्च याजिनः ॥ ३ ॥
 या द्वेषिणोऽन्योन्यविरोधिनो जनान् प्रवृज्य धत्ते मुभगाऽतिन्मोभगम् ।
 तां भासमानामभिलाषपूर्णां विश्वं जगद् द्रष्टुमिमां ननाम ॥ ४ ॥
 चित्रं तु वाजं प्रविभज्य मानुषे जनेन्तरिक्षं च कदाप्युपेत्य सा ।
 विश्वारंघ देवानिह सोमपीतये संतर्पणायाह्वयनि स्म दक्षिता ॥ ५ ॥
 संयाति सूर्यायतनादितस्ततस्त्रिंशत्समन्नादि योजनानि सा ।
 पुंसां समक्षं चरतीयमत्र या निवर्तते नित्यमुपतराद् दिवः ॥ ६ ॥
 या चाप विश्राणयते धनान्नं रथेन गत्वोपसि मानुषेभ्यः ।
 निवृत्य विश्राम्यति सा परेशु पराऽहना यानि रथेन दानुम् ॥ ७ ॥

उपसो या मे दानं विशेषपुण्यातिशयकृत् स्यात् ।

इत्येव घोषयन्ती ददात्युषा उपसि कण्व इत्याह ॥ ८ ॥

१—विश्वामित्रो महर्षिरुपसं स्तौति । ३ । ६१ । १-७

पञ्चनदाख्ये देशे विश्वामित्रो महर्षिरासीत् प्राक् ।

एष सुदासो राज्ञः पुरोहितः स्तौति तामुपसम् ॥ १ ॥

३।६१

“ उषो वाजेन वाजेनि प्रचेताः स्तोमं जुषस्व-गृणतो मघोनि ।

पुराणी देवि युवतिः पुरन्धिरनुव्रतं चरसि विश्वं वारे ॥ १ ॥

उषो देव्यमर्त्या विभा हि चन्द्ररथा सनृता ईर्यन्ती ।

आ त्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा हिरण्यवर्णा पृथगजसो ये ॥ २ ॥

उषः प्रतीची भुवनानि विश्वोर्ध्वातिष्ठस्य मृतस्य केतुः ।

समानमर्थं चरणीयमाना चक्रमिव नव्यस्या ववृत्त्व ॥ ३ ॥

अवस्यूमेव चिन्वती मघोन्युषा याति स्वसरस्य पत्नी ।

स्वर्जनन्ती सुभगा सुदंसा आन्तादिवः पप्रथ आ पृथिव्याः ॥ ४ ॥

अच्छा वो देवीमुपसं विभातीं प्र वो भरध्वं नमसा सुवृक्तिम् ।

ऊर्ध्वं मधुधा दिवि याजो अश्रेत्प्ररोचना रुरुचे रण्वसंहक् ॥ ५ ॥

ऋतावरी दिवो अर्कैरबोध्या रेवती रोदसी चित्रमस्थात् ।

आयातीमग्नं उपसं विभातीं वाममेषि द्रविणं भिक्षमाणः ॥ ६ ॥

ऋतस्य बुध्न उपसामिषण्यन्वृषा मही रोदसी आविवेश ।

मही मित्रस्य वरुणस्य माया चन्द्रेव भानुं विदधे पुरत्रां ॥ ७ ॥

२—वसिष्ठो महर्षिरुपसं स्तौति ।

यस्तु वसिष्ठो राज्ञो वरुणस्यासीत् पुरोहितः पूर्वम् ।

पश्चात्सूर्यायतने नियुक्त आसीत् स चोपसं स्तौति ॥ १ ॥

७।७५

“ व्युषा आवो दिवि जा ऋतेनाविष्कृण्वाना महिमानमागात् ।

अपद्रुहस्तम आवरजुष्टमङ्गिरस्तमापध्या अजीगः ॥ १ ॥

महेनो अद्य सुविताय वो व्युषो महे सौभगाय प्रयन्धि ।

चित्रं रयिं यशसं घेहस्मे देवि मर्तेषु मानुषि श्रवस्युम् ॥ २ ॥

एते त्वे भानवो दर्शतायादिचित्रा उपसो अमृताश्च आगुः ।
जनयन्तो दैव्यानि व्रतान्यापृणन्तो अन्तरिक्षा व्यस्थुः ॥ ३ ॥
एषा स्या युजाना पराकात्पञ्च क्षिती परि सद्यो जिगति ।
अभिपश्यन्ती वयुना जनानां दिवो दुहिता भुवनस्य पत्नी ॥ ४ ॥
वाजिनीवती सूर्यस्य योषा चित्रा मघा राघ ईशे वम्नाम् ।
ऋषिपुत्रा जरयन्ती मघोन्मुषा उच्छ्रति वह्निभिर्गुणाना ॥ ५ ॥
प्रति द्युतानामरुपासो अश्वाश्चित्रा अहश्चक्रपम वहन्त ।
याति शुभ्रा विश्वपिशा रथेन दधाति रत्नं विधत्ते जनाय ॥ ६ ॥
सत्या सत्येभिर्महती महद्भिर्देवी देवेभिर्यजता यजत्रैः ।
रुजदृढाहानि दददुस्त्रियाणां प्रतिगाव उपस वावशन्त ॥ ७ ॥
नूनो गोमद्वीर वद्धे हि रत्नमुपो अश्वावत्पुरु भोजो अस्मे ।
मानो वह्निः पुरुषता निदेकर्युय पात स्वस्तिभि सत्र नः ॥ ८ ॥
उदु ज्योतिरमृतं विश्वजन्यं विश्वानर सविता देवो अग्नेत् ।
क्रत्वा देवानामजनिष्ट चक्षराविरकभुवनं विश्वमुषा ॥ ९ ॥
प्रमे पन्था देवयाना अहश्चक्रमर्धन्तो वसुभिरिष्टतासः ।
अभूदु केपुरुषसः पुरस्तात्प्रतीच्यागादधिहर्म्येभ्यः ॥ १० ॥
तानीदृहानि बहुलान्यासन् या प्राचीनमुदिता मर्यम्य ।
यत परिजार इवा चरन्त्युपो ददृक्षे न पुनर्यतीव ॥ ११ ॥
त इहेवानां सधमाद आसन्नृतावान कवय पर्यासः ।
गूढं ज्योतिः पितरो अन्त्रविन्दन्सत्यमन्त्रा अजनयन्मुपासम् ॥ १२ ॥
समान ऊर्वे अधिसङ्गतासः स जानते न यतन्ते मिथग्ने ।
ते देवानां न मिनन्ति व्रतान्यमर्धन्तो वसुभिर्यादमाना ॥ १३ ॥
प्रति त्वा स्यौमैरीडते वसिष्ठा उपवृधः सुमगे तुष्टुयांस ।
गवां नेत्री वाजपत्नी न उच्छ्रीपः सुजाते प्रथमा जरम्य ॥ १४ ॥
एषा नेत्री राघसः सन्नृतानामुषा उच्छ्रन्तीरिभ्यन्ते वनिष्टे ।
दीर्घश्रुतं रघिमस्मे दधाना सूर्यं पात न्वग्निभिः नग न ॥ १५ ॥
उपो रुरुचे युवतिर्न योषा विष्टवं क्षीवं प्रसुवन्ती च राघ ।
अभूदग्निः समिधे मानुषाणामकर्मोतिर्वाधमना तमानि ॥ १६ ॥

विश्वं प्रतीची स प्रधा उदस्थाद्दुसद्वासो विभ्रती शुक्रमश्वैत् ।
 हिरण्यवर्णा सुदृशी कसन्द्दग्वा माता नेत्र्यहामरोचि ॥ २ ॥
 देवानां चक्षुः सुभगा वहन्ती श्वेतं नयन्ती सुदृशीकमश्वम् ।
 उषा अदर्शि रश्मिभिर्व्यक्ता चित्रामघा विश्वमनुप्रभूता ॥ ३ ॥
 अन्ति वामा दूरे अमित्रमुच्छोर्वी गव्यूतिमभयं कृधी नः ।
 यावयद् द्वेष आभरा वसूनि चोदय राधो गृणते मघोनि ॥ ४ ॥
 अस्मे श्रेष्ठिभिर्भानुभिर्विभाह्युषो देवि प्रतिरन्ती न आयुः ।
 इषं च नो दधती विश्वधारे गोमदश्वावद्रथवच्च राधः ॥ ५ ॥
 यां त्वा दिवो दुहितर्वर्धयन्त्युषः सुजाते मतिभिर्वसिष्ठाः ।
 सास्मासुधा रयिमृष्वं बृहन्तं यूय पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

७।७८ “प्रति केतवः प्रथमा अदृशन्नुर्ध्वा अस्या अज्जयो विश्रयन्ते ।
 उषो अर्वाचा बृहता रथेन ज्योतिष्मता वामस्मभ्यं वक्षि ॥ १ ॥
 प्रति पीमग्निर्जरते समिद्धः प्रति विप्रासो मतिभिर्गृणन्तः ।
 उषा याति ज्योतिषा वाधमाना विश्वा तमांसि दुरिताय देवो ॥ २ ॥
 एता उत्थाः प्रत्यदृशन्पुरस्ताज्ज्योतिर्यच्छन्तीरुपसो विभातीः ।
 अजीजन्त्सूर्यं यज्ञमग्निमपाचीनं तमो अगादजुष्टम् ॥ ३ ॥
 अचेति दिवो दुहिता मघोनी विश्वे पदयन्त्युपसं विभातीम् ।
 आस्थाद्रथं स्वधया युज्यमानं मायमश्वासः सुयुजो वहन्ति ॥ ४ ॥
 प्रतित्वाद्य सुमनसो दुधन्तास्माकासो मघवानो वयं च ।
 तिल्विलायध्वमुपसो विभातीर्युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः” ॥ ५ ॥

७।७८ “व्युषा आ वः पथ्याजनानां पञ्चक्षितीर्मानुपीर्वोधयन्ती ।
 सुसन्द्गमिरुक्षभिर्भानुमश्रेद्धि सूर्यो रोदसी चक्षसावः ॥ १ ॥
 व्यक्षते दिवो अन्तेष्वक्तून्विशो न युक्ता उपसो यतन्ते ।
 सं ते गावस्तम आवर्तयन्ति ज्योतिर्यच्छन्ति सपितेव वाहू ॥ २ ॥
 अभूदुषा इन्द्रतमा मघोन्यजीजनत्सुविताय श्रवांसि ।
 वि दिवा देवो दुहिता दधात्यङ्गिरस्तमा मुकृते वसूनि ॥ ३ ॥
 तावदुषो राधो अस्मभ्यं रास्व यावत्तोदृभ्यो अरदो गृणाना ।
 यां त्वा जङ्घ्वंषमस्यारवेण विटलहस्य दुरो अद्रेरीणोः ॥ ४ ॥

देवं देवं राधसे चोदयन्त्यस्मद्यक्सूनृता ईरयन्ती ।
व्युच्छन्ती नः सनये धियो धा श्रूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥
प्रति स्तोमेभिरुपसं वसिष्ठा गीर्भिर्विप्रासः प्रथमा अचुध्रन् ।
विवर्तयन्तीं रजसी समन्ते आविष्कृण्वतीं भुवनानि विश्वा ॥ १ ॥
एषास्या नव्यमायुर्दधाना गूढ्वी तमो ज्योतिषोपा अगोधि ।
अग्र एति युवतिरह्याणा प्राचिकितत्सूर्यं यज्ञमग्निम् ॥ २ ॥
अद्वावतीर्गोमतीर्न उपासो वीरवतीः सदमुच्छरन्तु भद्रा ।
धृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता श्रूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥

७।८१ “प्रत्यु अदृश्यायत्युच्छन्ती दुहिता दिवः ।
अपोमहि व्ययति चक्षसे तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी ॥ १ ॥
उदुस्त्रियाः सृजते सूर्यः सचो उद्यन्नक्षत्रमर्चिवत् ।
तवेदुषो व्युपि सूर्यस्य च सम्भक्तेन गमेमहि ॥ २ ॥
प्रति त्वा दुहितर्दिव उषो जीरा अभुत्समहि ।
या बहसि पुरुस्याहं वनन्वति रत्नं न दाशुपे मयः ॥ ३ ॥
उच्छन्ती या कृणोषि मंहना महि प्रत्यै देवि स्वर्दशे ।
तस्यास्ते रत्नभाज ईमहे वयं स्वाम मातुर्न सूनवः ॥ ४ ॥
तच्चित्रं राध आभरोषो यद्दीर्घश्रुत्तमम् ।
यत्ते दिवो दुहितर्मर्तभोजनं तद्रास्व भुतजामहै ॥ ५ ॥
श्रवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वनं वाजा अस्मभ्य गोमतः ।
चोदयित्रि मघोनः सूनृतावत्युषा उच्छदपस्त्रिधः ॥ ६ ॥

३—प्रस्कण्वः काण्व उपसं स्नौति ।

प्रस्कण्वोपि च काण्वो महर्षिरुपसं परिष्टौति ।
काण्वाः सूर्यायतने परोक्षयन्ति स्म सूर्यविज्ञानम् ॥ १ ॥
१।४८ “सह वामेन न उषो व्युच्छा दुहितर्दिवः ।
सह धुम्नेन बृहता विभावरिरापादेवि शन्वती ॥ १ ॥
अश्ववतीर्गोमतीर्विश्व सुविदो भूरि न्यवन्न वग्नवे ।
उदीरय प्रतिमा सूनृता उपश्चोदराधो मघोनाम् ॥ २ ॥

उवासोषा उच्छ्राव नु देवी जीरा रथानाम् ।

ये अस्या आचरणेषु दध्नरे समुद्रे न श्रवस्यवः ॥ ३ ॥

उषो ये ते प्रयामेषु युञ्जते मनो दानाय सूरयः ।

अत्राह तत्कएव एषां कएवतमो नाम गृणाति नृणाम् ॥ ४ ॥

आ घा योपेव सूनर्युषा याति अभुञ्जती ।

जरयन्ती वृजनं पद्वदीयत उत्पादयति पक्षिणः ॥ ५ ॥

वि या सृजति समनं व्यर्थिनः पदं न वेत्योदती ।

वयो नक्रिष्टे पप्रिवांस आसते व्युष्टौ वाजिनीवती ॥ ६ ॥

एषा युक्तः परावतः सूर्यस्योदयनादधि ।

शतं रथेभिः सुभगोषा इयं वियात्येभिमानुपान् ॥ ७ ॥

विश्वमस्या नानाम चक्षसे जगज्ज्योतिष्कृणोति सूनरी ।

अपद्वेषो मघोनी दुहिता दिव उषा उच्छ्रदपस्त्रिधः ॥ ८ ॥

उष आ भाहि भानुना चन्द्रेण दुहितर्दिवः ।

आवहन्ती भूर्यस्मभ्यं सौभगं व्युच्छन्ती दिविष्ठषु ॥ ९ ॥

विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं त्वे वि यदुच्छसि सूनरी ।

सा नो रथेन बृहता विभावरि श्रुधि चित्रामघे हवम् ॥ १० ॥

उषो वाजं हि वंस्व यश्चित्रो मानुषे जने ।

तेना वह सुकृतो अध्वरो उष ये त्वा गृणन्ति बहवः ॥ ११ ॥

विश्वान्देवाँ आवह सोमपीतयेऽन्तरिक्षादुपस्त्वम् ।

सास्मासु घा गोमदश्चा वदुक्थ्य सुषो वाजं सुवीर्यम् ॥ १२ ॥

यस्या रुशन्तो अर्चयः प्रति भद्रा अहन्त ।

सो नो रयि विश्ववारं सुपेशसमुषा ददातु सुगम्यम् ॥ १३ ॥

य विद्धि त्वामृषयः पूर्वं उतये जुहूरेऽवसे महि ।

सा नः स्तोमो अभिगृणीहि राधसोषः शुक्रेण शोचिषा ॥ १४ ॥

उषो यदद्य भानुना विद्वारा वृणवो दिवः ।

अ नो यच्छ तादवृकं पृथुर्द्धिः प्रदेवि गोमती रियः ॥ १५ ॥

सं नो राया बृहती विश्वेश सामिमिद्धा समिलाभिरा

संघुन्नेन विश्वतुरोषो महि संवाजै वाजिनीवती ॥ १६ ॥

(२) “उपो भद्रेभिरागहि दिवश्चिद्वोचनादधि ।

बह त्वरुणप्सव उप त्वां सोमिनो गृहम्” ॥ १ ॥

सुपेशसं सुखं रथ यमध्यस्था उपस्त्वम् ।

तेना सुश्रवसं जनं प्रावाद्य दुहितर्दिवः ॥ २ ॥

वयश्चित्ते पतत्रिणो द्विपञ्चचतुष्पदजुनि ।

उपः प्रारन्तूँ रजुदिवो अन्तेभ्यस्परि ॥ ३ ॥

व्युच्छन्ती हि रश्मिभिर्विन्धसामासि रोचनम् ।

तां त्वा मुपर्वमृयवो गीर्भिः कण्वा अहूषत ॥ ४ ॥

४—कदीवान् दीर्घतमस उपसं स्तौति ।

दीर्घतमा औतथ्यो बृहस्पतेर्भ्रातृपुत्रो य ।

सूर्यायतने पश्यति कर्म भरद्वाजवत् सोपि ॥ १ ॥

१।१२३॥ (१) “पृथूरथो दक्षिणाया अयोज्येन देवासो अमृतासो अस्थु ।

कृष्णा दुदस्था दुर्या विहायाश्चिकित्सन्ती मानुपाय ज्ञपाय ॥ १ ॥

पूर्वा विश्वस्माद्भवनादवोधि जयान्ती वाजं बृहती सनुत्री ।

उच्चान्यल्यद्यवतिः पुनर्भूरोग अगन्प्रथमा पूर्वहूती ॥ २ ॥

यदद्य भागं विभजासि नृभ्य उपोदेवि मर्त्यत्रा सुजाते ।

देवो नो अत्र सविता दमूना अनागसो वोचति सूर्याय ॥ ३ ॥

गृहङ् गृहमहना यात्यच्छा दिवे दिवे अधि नामा दधाना ।

सिषासन्ती द्योतना शश्वदागादग्रमग्रमिद्भजते वमृनाम् ॥ ४ ॥

भगस्य स्वसा वरुणस्य जामिरुषः मृनृते प्रथमा जरत्य ।

पश्चा सदध्यायो अघत्य धाता जयेम त दक्षिणाया रथेन ॥ ५ ॥

उदीरतां सृनुता उत्पुनन्त्रीरुदग्रयः शुशुचानासो अस्थु ।

स्पर्हा वसूनि तमसाप गूढाविष्कृण्वन्त्युपसो विभानी ॥ ६ ॥

अपान्यदेत्यभ्यन्यदेति विंपुरुषे अहनी सञ्चरेते ।

परीक्षितो त्तमो अन्या गुहाकर द्यौ दुपा शोशुचना पयेन ॥ ७ ॥

सदृशोरद्य सदृशीरिदु ओ दीर्घ सचन्ते वरुण्य चान ।

अनवद्याक्षिशतं योजनान्येकैका क्रतुं परियान्न सन् ॥ ८ ॥

जानत्यहः प्रथमस्य नाम शुक्ला कृष्णा दजनिष्ठश्चितीची ।

ऋतस्य योषा न मिनाति धामाहरहर्निष्कृतमाचरन्ती ॥ ६ ॥

कन्येव तन्वा शाशदानां एषि देवि देवमियत्तमाणम् ।

संस्मयमाना युवतिः पुरस्तादार्विक्तांसि कृणुषे विभाती ॥ १० ॥

सुसङ्काशा मातृमृष्टेव योषा विस्तन्वं कृणुषे दृशेकम् ।

भद्रा त्वमुषो पितरं व्युच्छन्तत्ते अन्या उषसो नशन्त ॥ ११ ॥

अश्वावतीर्गोमती विश्ववारा यतमाना रश्मिभिः सूर्यस्य ।

परा च यन्ति पुनराच यन्ति भद्रा नाम बहमाना उषासः ॥ १२ ॥

(१ । १२४ । ३ । ६ । ७ । ८ । ९)

“एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि ज्योतिर्वसाना समना पुरस्तात् ।

ऋतस्य पन्था मन्वति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति ॥ १ ॥

एवेदेवा पुरुतमा दत्ते कं ना जामि न परिवृणक्ति जामिम् ।

अरेपसा तन्वा शाशदाना नार्भादीषते न महो विभाती ॥ २ ॥

अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची गर्तारुगिव सनये धनानाम् ।

जायेव पत्य उशती सुवासा उषा हस्तैव निरिणीते अप्सः ॥ ३ ॥

स्वसा स्वस्ते व्यायस्यै योनिमारैगपैत्यस्याः प्रतिचक्ष्येव ।

व्युच्छन्ती रश्मिभिः सूर्यस्याञ्जयङ्क्तेसमनगा इव ब्राः ॥ ४ ॥

आसां पूर्वासामहसु त्वसृणामपरापूर्वामभ्येति पश्चात् ।

ताः प्रब्रवन्नभ्यसीर्नूनमस्मे रेवदुच्छन्तु मुदिना उषासः ॥ ५ ॥

५—अष्टार्द्रष्ट्रो वैरूप इन्द्रं स्तुवन्नुपसं स्तौति ।

१—“सचन्त यदुषसः सूर्येण चित्रामस्य केतवो रामविन्दन् ।

आ यन्नक्षत्रं ददृशो दिवो न पुनर्यतो न किरद्धा नु वेद् ॥ १ ॥

एषां कतिपयमन्त्रा अधिदैवतपक्षा उपनेयाः ।

सर्वे त्वपरे मन्त्रा अधिभूतं समनुगच्छन्ति ॥ १ ॥

आप्त्योऽधिदैवतमुपसं स्तौति । ८ । ४७ । (१४ । १८)

केचिन्मन्त्रा उपसंस्त्वधिदैवतमेव पर्याप्ताः ।

आप्त्यखितो यथोचे संवे सूक्तेऽन्ततोऽष्टमगे ॥ १ ॥

यश्च गोषु दुःखं यथास्मे दुहितर्दिवः ।

त्रिताय तद्विभाव्याप्याय परावहानेहसो व उतयः सुऊतयो व ऊतयः" ॥ ८ ॥ ४११

"निष्कं वा घा कृण्वते स्रजं वा दुहितर्दिवः ।

त्रिते दुःखं सर्वमाप्ये परिद्वस्त्यनेहसो व उतयः सुऊतयो व ऊतयः" ॥ ८ ॥ ४११५

"तदन्नाय तदयसे तं भागमुपसेदुपे ।

त्रिताय च द्विताय चोषो दुःखं वहानेहसो व उतयः सुऊतयो व ऊतयः" ॥ ८ ॥ ४११६

"यथा कलां यथाशफं यथ ऋणं सन्नमयामसि ।

एवादुःखं सर्वमाप्ये सं नयामय नेहसो व उतयः सुऊतयो व ऊतयः" ॥ ८ ॥ ४३

"अजैष्माद्यासनाम चाभूमानागसो वयम् ।

उषो व यस्मादुःखं दमैष्मायतदुच्छ्रित्वनेहसो व उतयः सुऊतयो व ऊतयः" ॥ ८ ॥ ४११८

(३)-विज्ञानशालास्थितात् सूर्यचक्रद्वयादेकस्य देयेन्त्रेण परीहरणम् ।

उपःकारणात् सूर्याधिष्ठाने दस्पूनासाक्रमणमिन्द्रकुत्साभ्यां तन्निवर्हणं च ।

उषा विलज्जा चरतीति शुष्णो ववन्ध तां प्रेम्णि कदाप्यभीक्ष्य ।

तत्प्रेमपाशानुविकर्षितः सन्नपः समीपं स उपैत्यभीक्ष्यम् ॥ १ ॥

सूर्यनिवृत्त्या कृष्णो विरतोऽभूत् किन्तु तत्पश्चान् ।

सूर्यायतने शुष्णो यातायातं व्यधादुपोद्वेतोः ॥ २ ॥

शुष्णो दस्युः सूर्यं बहुधागत्य व्यमर्दयद् धृष्ट ।

अकुतोभयः स सूर्यद्वारं पिदधे निजुहू वे मूर्ध्नि ॥ ३ ॥

इन्द्रः शुष्णाक्रमणं सूर्यापह्नुतिमुपद्रवातिशयम् ।

वारहस्पत्यस्य गिरा श्रुत्वा सद्यः समाययौ सूर्यम् ॥ ४ ॥

दासाक्रमणनिरोधोपायानृपि सदासि चिन्तयन्तत्र ।

सूर्यसदनरक्षार्थं कमर्षिर्नृपं मागयामास ॥ ५ ॥

तत्रावोचदगस्त्यः सौरावक्रद्वयादेकम् ।

दिवि नीत्वा परचक्रं स्थापयितुं कुत्सरजणे युक्तम् ॥ ६ ॥

"वह कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकनत्तु नन्यू ऋषा जानन्मारा ।

प्रसूरश्चक्रं बृहतादभीकेऽभिन्पृषो यासिपद् यज्जनात्" ॥ (१ । १३ । १३)

रपक्वविरिद्रार्कं सातौचां दासायोपवर्हणीं कः ।

करत् तिस्रो मधवा दानुचित्रानिदुर्योगे कुयवाचं मृधिमेत् ॥ ८ ॥

मुषाय सूर्य्यं कवे चक्रमीशान ओजसा ।

वह शुष्णाय वधं कुत्सं वातस्याश्वैः ॥ ९ ॥ (१ । १७५ । ४)

श्रुषिमन्तमो हि ते मदो द्युम्निन्तम उत क्रतुः ।

वृत्रघ्ना वरिवोविदा मंसीष्टाः अश्चसातमः ॥ १० ॥ (१ । १७५ । ५)

इत्यगस्त्य परामर्शं युयुत्सुरनुमोदयन् ।

हृत्वैकं चक्रमन्यस्य रक्षायैकुत्समाह्वयत् ॥ ७ ॥

गत्वोशनसा साकं कुत्सगृहं तं न्ययोजयत् त्रातुम् ।

वातजवाश्वैः सूर्य्यस्थानेऽत्रानाय्य चादिशत् कुत्सम् ॥ ८ ॥

गान्धारमद्रभूपान् न्ययुङ्क्त कांश्चिच्च कुत्ससहकर्तृन् ।

वार्षागिरान् दभीति ध्वसन्ति पुरुषन्ति पूर्वाश्च ॥ ९ ॥

इन्द्रस्तत्र तदानीं दासाक्रान्तिं निरोधयितुम् ।

सहदेवैः कुत्सेन च सूर्य्यस्थानादताडयच्छुष्णम् ॥ १० ॥

स यथाऽयमिन्द्र एतं सह कुत्सेन न्यवर्हयच्छुष्णम् ।

शाक्त्यो हि गौरिवीतिः स्मारयतीन्द्राय तन् स्तोतुम् ॥ ११ ॥

“उशाना यत् सहस्यैरयातं गृहमिन्द्रजुजुवानेभिरश्वैः ।

वन्वानो अत्र सरथं ययाथ कुत्सेन देवैरवनोर्हशुष्णम्” (५ । २६ । ६)

(गौरवीति शाक्त्य)

षष्टिः षष्टिश्चेत्थं मरुतां सेनासु कल्पिता व्यूहाः ।

त्रिःषष्टिर्मरुतोऽत्राभिक्रमणे प्रस्तुता आसन् ॥ १२ ॥

सूर्य्यसंस्थासंरक्षणार्थो देवेन्द्रकृतः स्थानिकः प्रबन्धः ।

ये द्वेचक्रे सूर्य्यस्तत्रैकं दिवि समाधातुम् ।

दस्योः शङ्कित इन्द्रो हत्वाऽन्यन् कुत्सरक्षणे न्यदधात् ॥ १ ॥

प्रथमस्य मथकसूक्ते चतुर्थमन्त्रे तदेतदाम्नातम् ।

पञ्चममण्डलधारासूक्तस्य च दशममन्त्रेऽपि ॥ २ ॥

सूर्यस्यास्य विधाने नियुक्त आसीन् तदैतश सुप्ति ।
 सूनर्य्यबोऽभिधाना पुत्री दिव उपस उपचारे ॥ ३ ॥
 चक्रं हृत्वापीन्द्रः कृपयाऽरक्षत् तमेतश मर्त्यम् ।
 उपसं त्ववधीदुषसः शकटं भक्त्वा विपाशि निजिष्य ॥ ४ ॥
 उपसो दिवः सुतायाः प्रेमवशादेव गतागतं चक्रं ।
 शुष्णाः सूर्यस्थाने दासाक्रमणे निमित्तमेपोषाः ॥ ५ ॥
 अतएवेन्द्रः क्रुद्धस्तदुपोऽधिकृतं तदेकरविचक्रम् ।
 स्वर्गे निनाय शकटं वाजावहमक्षिपद् विपाशाग्रम् ॥ ६ ॥
 उपसः संवन्धादिह सर्वविधानं व्यवर्जयत् किन्तु ।
 एतशहयानुवाहितचक्रमरक्षत् तदैतशाधिकृतम् ॥ ७ ॥
 एतच्च वामदेवस्त्रिंशे सूक्ते चतुर्थमण्डलगे ॥ ४ । ३० ॥
 उपसो निवर्हणं तद् व्याचष्टे शकटमङ्गं च ॥ ८ ॥
 “यत्रोत बाधितेभ्यश्चक्रं कुत्साय युध्यते ।
 मुषाय इन्द्रसूर्य्यम् ॥ (४ । ३० । ४)
 यत्रोत मर्त्याय कमरिणा इन्द्र सूर्य्यम् ।
 प्रावः शचीभिरेतशम् ॥ (४ । ३० । ६)
 एतद्धे दुतवीर्यमिन्द्र चक्र्य णैत्यम् ।
 स्त्रियं यद्बर्हणा युवं वधीदुहितरं दिव ॥ (४ । ३० । ८)
 दिवश्चिद् या दुहितरं महान्महीयमानाम् ।
 उषासमिन्द्र संपिण्क ॥ (४ । ३० । ९)
 अपोषा अनसः सरत्सन्मिष्टाद् विभ्युषी ।
 नियत्सीं शिष्लधद्वपा ॥ (४ । ३० । १०)
 एतदस्या अनः शये सुसन्पिष्टं विपाश्या ।
 ससारसीं परावतः ॥” (४ । ३० । ११)
 सूर्य्यस्य दस्युगणतो रक्षार्थं वे न्ययुज्यन्त ।
 ते खलु कुत्साधीना राजान नृर्य्यनासेदुः ॥ ६ ॥
 अधितिष्ठति तं सूर्य्यम् कुत्सदभीति श्वसन्ति दुर्वीति ।
 सह राजचक्रमेवं चार्पागिर पञ्जराज कुन्म् ॥ १० ॥

इत्थं सूर्यस्थाने विधाय शान्तिं कृतेऽखिले सुखे ।

सबृहस्पतिरयमिन्द्रः समरुत्सेनोऽभ्यगात्स्वर्गम् ॥ ११ ॥

पृथिव्यां प्रतिष्ठापितसूर्यद्वयादेकस्य सूर्यस्य दिव्यारोपणम् ।

एकं चक्रं कुत्साभिरक्षणे तत्र संस्थाप्य ।

अपरं चक्रं हत्वा तं दिवमारोहयत् सूर्यम् ॥ १ ॥

प्रान्यश्चक्रमबृहः सूर्यस्य कुत्सायान्यद् वरिवो यावतेऽकः ।

अनासो दस्यू रमृणो वधेन निदुर्योण आवृणङ् मृध्वावचः ॥ २ ॥ (५।२६।१०)

अग्निपुरस्कृतानां देवानां स्वर्गे सहगमनम् ।

तत्सूर्यचक्रं तु मनुष्यलोकादिवि प्रणेतुं विहिते विमर्शे ।

अग्नादयस्तत्र सहोपगन्तुं चक्रुः समारम्भमनेकदेवाः ॥ १ ॥

(१०।६५।१) “अग्निरिन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमावायुः पूषा सरस्वती सजोषसः ।

आदित्या विष्णुर्मरुतः स्वर्द्धृहत् सोमो रुद्रो अदितिर्ब्रह्मणस्पतिः ॥

इन्द्राग्नी वृत्रहत्येषु सत्यो मिथो हित्वानातन्वा समोकसा ।

अन्तरिक्षं मक्षापप्रुरोजसा सोमोघृतश्रीमहिमानमीरयन्” ॥

दिवस्पतिर्यः पृथिवीपतिर्यः प्रधानतो दासवधोद्यतौ तौ ।

सोमोऽन्तरिक्षस्य पतिर्घृतं श्रीर्न्योन्तरिक्षं विपुलं तदाद्युः ॥ २ ॥

“ब्रह्म गामश्च जनयन्त ओषधीर्वनस्पतीन् पृथिवीं पर्वतां अपः ।

सूर्यं दिवि रोहयन्तः सुदानवः आर्याव्रता विसृजन्तो अधिक्षमिः ॥५॥

स्वर्णरमन्तरिक्षाणि रोचना यावामूर्मीं पृथिवीं स्कम्भुरोजसा ।

पृष्ठा इव महयन्तः सुरातयो देवाः स्तवन्ते मनुषाय सूरयः” ॥ ६ ॥

दिव्यन्तरिक्षे भुवि च प्रचक्रुर्व्योतींषि भूमिं च सुसज्जितां ते ।

ये स्वर्णरास्तान् व्यदधुः सुदीप्तान् कृतोत्सवान् राजनिदेशयोगात् ॥ ३ ॥

विश्वेपि देवा दिवि सप्रयातुं प्रतिष्ठमानाहि मनुष्यलोकात् ।

नृभ्यो वसूनि व्यतरन् ग्रहर्षात् तेभ्यः स्तवन्ते स्म च मानुषेभ्यः ॥ ४ ॥

दिवोऽधिकारो मस्तां यथासीद् यथान्तरिक्षेऽधिकृतश्च वातः ।

यथाप्सु चान्धौ वरुणस्तथाग्निभूम्याः पतिर्दीर्घतमा जगाद् ॥ ५ ॥

यद्यप्यमरावत्यां देवसभायां सुधन्मायाम् ।

विष्ण्वानधितिष्ठन्ति हि दिक्पाला लोकपालाश्च ॥ ६ ॥

सन्ति तथापि ततोऽन्ये चत्वारोऽलोकपतयोऽमी ।

स्वे स्वे लोके प्रत्यासन्नाः शवसोनपात्संज्ञाः ॥ ७ ॥

शवसोनपात् स शास्ता यः स्थानीयः प्रबन्धकर्ता स्यात् ।

राजप्रतिनिधिभूतः प्रान्ताध्यक्षः पुराकाले ॥ ८ ॥

योऽग्निः स देवोऽधिकृतः पृथिव्यां मनुष्यलोकेऽधिपतिर्नियुक्तः ।

बहिः स देवेभ्य इतः प्रदानं प्रगृह्य दिव्यर्पयति प्रणीय ॥ ९ ॥

“त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः ॥

देवेभिर्मानुषे जने ॥

यो अग्निः सप्त मानुषः श्रितो विश्वेषु सिन्धुषु ॥

तमागन्मन्त्रिपत्त्यं मन्धातुर्दस्यु हन्त ममग्नि यज्ञेषु पूर्व्यम् ।

नभन्ता मन्यके समे” —

॥

इत्थं ब्रूते काण्वो नाभाकस्त्रिषु समुद्रकूलेषु ॥

भवन्तानि त्रीण्यग्नेर्मन्त्रकृतः सप्तमानुषान् संभूतान् ॥ १० ॥

मनुष्यलोकाधिपतित्वहेतोरग्निः प्रधानः स इतः पृथिव्या ॥

चक्रप्रणीतौ दिवि तेन केतुः सूर्यप्रणोत्त्वममुष्य वक्ति ॥ ११ ॥

“अग्ने नक्षत्रमजरमासूर्यं रोहयो दिवि ॥

दधज्योतिजनेभ्यः” — (१० । १५६ । ४ ।)

तान् प्रस्थितान् दिव्यमरान्मनुष्यास्ते स्वस्तिवाकैर्वहुधाऽभ्यनन्दन ॥

यूयं समं धीमिरितः प्रयान्तस्वः प्राप्य तत् स्वस्तिगिरो जुष्यम् ॥ १२ ॥

“विश्वेदेवाः सह धीभिः पुरन्ध्वा मनोर्यजत्रा अमृता कृता ॥

एतिषाचो अभिषाचः स्वर्विदः स्वर्गिरो ब्रह्मसृक्तं जुषेरत” ॥

स्वं स्वं दिविस्थानमभिप्रयातान् ववन्दिरे भक्तिवशान्मनुष्या ॥

वसिष्ठपूर्वा भुवि सूर्यसंस्था-प्रतिष्ठिताः स्वं च यशोऽर्पयन्तः ॥ १३ ॥

“देवान् वसिष्ठो अमृतान् ववन्दे चे विदवा भुवनाऽन्निष्ठान् ॥

तेनो रासन्तामुरुगायमथ यूयं पात स्वस्तिभिः सदा न ॥ १४ ॥”

(१० । ६४ । १४)

एतशेन सूर्यरथवहनम् ।

अर्थाहरणे कर्मणि ये नियता व्यापृता नरा भृतकाः ॥
हरितो नरास्त उक्ताः शिरसा रदिमभिरिमे हरन्त्यर्थान् ॥ १ ॥
इन्द्रश्चक्रं स यदा दिवमनयत् तत्र हरितो ननु ॥
व्यरमयतेन्द्रो ना त्वयमेतश् एकोहर्चचक्रम् ॥
“त्वं सूर्यो हरितो रामोन्द्रन् भरचक्रमेतशो नायमिन्द्र ॥
प्रास्य पारं नवति नाव्यानामपि कर्तमवर्तयोऽयज्यून” ॥ (११२११२)
यद्यपि नद्योवह व्यस्तथापि या नौकया तार्याः ॥
मध्ये मार्गं नवतिस्तत्पारे चक्रमेतशो निन्ये ॥ ४ ॥

दिशि सूर्यारोपणस्थानम् ।

स्वर्गस्त्रिविष्टपाख्यो विष्टपमेतस्य मण्डलं खण्डम् ॥
पेशान्यामपराजितदिशि चन्द्रं विष्टपं त्वासीत् ॥ १ ॥
प्राग्मेरुलक्षितं तु ब्राह्म विष्टपमवाग् दिशि प्रथितम् ॥
तत् उत्तरदिक्प्रथितं नाकारब्धं तु विष्टपं विष्णोः ॥ २ ॥
ब्रह्मा विष्णुरथेन्द्रस्त्रयोऽक्षरा मुख्यतोऽधिदैवमिमे ॥
अग्निः सोम इतिमावनुगौ पञ्चाक्षरं विश्वम् ॥ ३ ॥
लोकत्रयमधिभूतं तद्वदिदं पञ्चमण्डलं क्लृप्तम् ॥
एकं मनुष्यलोकोऽन्तरिक्षमेकं त्रिविष्टपं तु द्यौः ॥ ४ ॥
ब्राह्मस्य वैष्णवस्यान्तरे स्थितं विष्टपस्यास्य ॥
ब्रध्नस्य विष्टपं तत् प्रकल्पितं यज्ञसूर्याभ्याम् ॥ ५ ॥
आसीद्विस्तु मध्ये लोको ब्रध्नस्य विष्टपस्तत्र ॥
संप्रत्युत्तरतः प्राग् मेरोरंशे तु सप्तदशे ॥ (१७) ॥ ६ ॥
मध्ये चतुष्पथं यः स्केभोधरुपाख्य उन्नतः क्लृप्तः ॥
तदुपरि चाश्मा-पुश्निर्नामिहितः सूर्यचक्रं तत् ॥ ७ ॥

“इन्द्रो दीर्घाय चक्षसे आसूर्य रोहयदिवि ॥
विगोभिरद्रिमैरयत्” । (ऋ० सं० १ । ७ । ३) (मधुच्छन्दाः) ॥
‘ इन्द्रो दिवः प्रतिमानं पृथिव्या विश्वावेदस्वना हन्ति शुष्णम् ॥
महींचिद्द्यामातनोत् सूर्येण चास्कम्भचित्कम्भनेन स्कम्भीयान्” ॥
(१० । १११ । ५)

अद्रिः सोऽश्मा पृश्निः समन्ततो गोभिराकीर्णः ॥
अहनि च दिवा च दीर्घत्विपेऽत्रसूर्ये तमायत्त ॥ ८ ॥
स्कम्भस्यास्य चतुर्षु च पार्श्वेष्वसीच्चतुर्भद्रम् ॥
वृषभो ह्रदश्च चन्द्राश्चः पक्षी ते शिलाकायाः ॥ ११ ॥
“दिवो यः स्कम्भी धरुणः स्वातत आपूर्णो अंशु पय्यंति विश्वतः ॥
सेमे मही रोदसी यक्षदावृतासमीचीने दाधार समिपः कविः ॥
स्कम्भो दाधार द्यावापृथिवी उभे इमे स्कम्भो दाधारोर्वन्तरिक्षम् ॥
स्कम्भो दाधार प्रदिशः पङ्क्तिं स्कम्भ इदं विश्वं भुवनमाविवेश ॥
उक्ता समुद्रो अरुणः सुपर्णः पूर्वस्य योनि पितुराविवेश ॥
मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा विचक्रमे रजसस्यात्यन्तो” ॥ (५ । ४७ । १)
स्कम्भोऽधिदैवतमयं व्याख्यातोऽथर्वसंहितायां यः ।
दशमे काण्डे सप्तमसूक्ते सोपीन्द्रतः क्लृप्तः ॥ १२ ॥
“स्कम्भे लोकाः स्कम्भे तपः स्कम्भेऽधृत्यमाहितम् ।
स्कम्भ त्वां वेद प्रत्यक्षमिन्द्रे सर्वं समाहितम् ॥
इन्द्रे लोका इन्द्रे तप इन्द्रेऽधृत्यमाहितम् ।
इन्द्रं त्वां वेद प्रत्यक्षं स्कम्भे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥
यत्परममवमं यच्च मध्यमं प्रजापति ससृजे विश्वरूपम् ।
क्रियता स्कम्भः प्रविवेश तत्र यत्र प्राविशत्क्रियन् तद् दन्तुष ॥
यस्मिन् भूमिरन्तरिक्षं द्यौर्वन्मिन् अग्राहिता ।
यत्राग्निश्चन्द्रमाः सूर्यो वातन्तिष्ठन्त्यापिनाः ॥
यस्य प्रयत्निश्चिह्वाः अङ्गे सर्वे सनाहिता ।
स्कम्भं तं ब्रूहि क्तमः त्विदेवसः ॥

यत्र ऋषयः प्रथमजा ऋचस्साम यजुर्मही ।
 एकर्षिर्यस्मिन्नार्पितः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्वदेवसः ॥ १ ॥
 अस्त्यधिदैवं स्कम्भो नाकद्वितयान्तरा ततो विपुलः ।
 सूर्येण क्लृप्तगर्भस्तत्प्रतिमो भौमदिवि स कृतः ॥ १३ ॥
 अस्ति सुषुम्णा वृषभो वरुणः समुद्रः खगश्चन्द्रः ।
 स्कम्भं परितस्तस्माद् भौमस्कम्भानुगा अपि ते ॥ १४ ॥
 अस्ति च वेदो वृषभोऽस्त्यपां समुद्रः क्षितिश्चन्द्रः ।
 स्कम्भं परितस्माद् भौमे स्कम्भे परितस्ते ॥ १५ ॥

अश्मा पृश्निः ।

देवयुगे प्रागभवद् विश्वविदितमद्भुतत्रितयम् ।
 एकं मानुषलोके सूर्यायतन सरस्वत्याम् ॥ १ ॥
 अन्यत् स्वर्गे प्रेङ्गं वरुणाधीनं हिरण्मयं विपुलम् ।
 तत्रैवान्यद्वरुणं यत्राश्मा पृश्निराहितो रेजे ॥ २ ॥
 विशदं स्वरूपमेषामन्यत्र स्वर्गवर्णने कथितम् ।
 स्वर्गे सोऽश्मा पृश्निः सुप्रथितोऽत्यद्भुतश्चासीत् ॥ ३ ॥
 तत उत्तरतः पन्था विष्णोश्चन्द्रस्य लोकस्य ।
 पितृलोकस्य प्राच्यां दक्षिणतो ब्रह्मलोकस्य ॥ ४ ॥
 तत्र चतुष्पथमध्ये स्कम्भस्योपरि विहायसि क्रान्तः ।
 सप्तशिरा हैमाश्वोऽश्मनि पृश्नौ चक्रमदधात् तत् ॥ ५ ॥
 नक्तं दिवा च तुल्यं सूर्यमयूखप्रसारतो ज्योतिः ।
 सर्वासु दिक्षु पथिषु प्रयतामयनान्यदर्शयत्साधु ॥ ६ ॥
 इत्थं भगवानिन्द्रः स्वर्गेऽप्येकं स सूर्यमारोप्य ।
 कीर्तिं स्वामप्रययद् भूमौ शान्तिं च संस्थाप्य ॥ ७ ॥

इति मधुसूदनविद्यावाचस्पतिप्रणीतस्य ब्रह्मविज्ञानशास्त्रसम्बन्धिनो विज्ञानेतिवृत्तवादस्य
 द्वितीयपर्वणि भारतवर्षीयार्योपाख्याने विज्ञानमवनाख्यस्तृतीयः प्रसङ्गः सम्पूर्णः ॥ ३ ॥

अथ दस्युनिग्रहश्चतुर्थः प्रक्रमः ॥

भारतीयार्यराष्ट्रं वैदेशिकानार्यदासानामाक्रमणम् ।

दस्यूनामुपद्रावकाणां पुनराक्रमणम् ।

गतवति कतिपयकाले पुनरपि शान्तिर्व्यलुप्यत प्रायः ॥

अत्युद्धतस्वभावैराक्रम्यन्तार्यराष्ट्राणि ॥ १ ॥

एतेऽपगणप्रमुखा आर्यान् गन्धर्वदेशवास्तव्यान् ॥

शश्वत् प्रपीडयन्तो व्याकुलयाञ्चक्रु रत्युग्राः ॥ २ ॥

आर्य्यो दशधुरन्वः श्वैत्रेयोऽन्यो मुहुर्निवुध्यापि ॥

बलवदस्युभिरेतैर्ह तश्रियौ जग्मतुः परां विपदम् ॥ ३ ॥

सव्यं पद् गृभि-शुष्णौ वेशत्त्वायुं पुत्रवःपुत्रम् ॥

वैदयिनमृजिश्चानं पिभुमृगयश्च शूशुवान् व्यरुजन् ॥ ४ ॥

वयं चतूर्वयाणं सुश्रवसं चातिथिग्वमार्यं नृपम् ॥

वङ्गुद-करञ्ज-पर्यायमुख्या बहुधा निपीडयामासुः ॥ ५ ॥

चुमुरिधुर्निर्दभीति-ध्वसान्ति-पुरुषन्ति-तुर्वीतीन् ॥

वार्षागिराश्च पञ्चभ्रातृन् भूपान् प्रपीडयतः ॥ ६ ॥

राज्ञो यदा पिठीनस आसीद् रज्यां विवाहं प्रादिष्टः ॥

चुमुरिधुर्निर्वलादिव तां रजिमपजहतुस्तर्हि ॥ ७ ॥

राजादभीतिरेतौ परिभावयितुं यदा प्रवृत्तोऽभूत् ॥

प्रबलौ तदा दभीतिं चुमुरिधुनी तौ तमर्दयतः ॥ ८ ॥

देवेन्द्रः श्रुतवृत्तः समादिशन्ति ग्रहीतुं तौ ॥

इन्द्रकृपातो राज्ञा पिठीनसा सा रजिर्लज्या ॥ ९ ॥

पष्टिसहस्राण्यस्मिन्नभिर्मर्दे निहता नुभटाः ॥

दासानामित्यूचे वार्हस्पत्यो भरद्वाजः ॥ १० ॥

कुवयकृतः कुत्सपराभवः ।

कुवयः शुष्णः पिप्पुस्तुमः स्मदिभश्च दस्यवोऽत्युग्राः ॥

आक्रम्य सूर्य्यसंस्थामशान्तिमातेनिरे भूयः ॥ १ ॥

वेत्सुनगराधीशे कुत्से तत्सूर्य्यसंस्थायाः ॥

प्राणार्थमागते सति वभूव दासैरमुष्य संमर्द्दः ॥ २ ॥

प्रबलः कुवयस्तमिमं कुत्सं छलतः पराभाव्य ।

वेत्सुजनपदसीम्नः सहस्रा निष्कासयामास ॥ ३ ॥

अपहृत्यैतत् क्षेत्रं तुग्रस्मदिभौ तु शासकत्वेन ।

कुवयस्तत्र तदानीं वेत्सुराष्ट्रे नियोजयामास ॥ ४ ॥

सिन्ध्वादिस्रोतोभ्योऽपां ग्रहणं वर्जितं चक्रे ।

जलनिग्रहाय शुष्णं पिप्पुं चापि प्रयोजयामास ॥ ५ ॥

प्रस्तरखण्डप्रचयाज्जलप्रवाहो न्यरोधि सिन्धूनाम् ।

हिमवद्गोण्यामजिरे कृतोऽर्णवः कृत्रिमोऽवरुद्धाद्भिः ॥ ६ ॥

कृष्णास्तदधिष्ठाता मध्येऽर्णवमुन्नते गिरौ न्युपितः ।

अहिशम्बरौ च नौभ्यो यातायातं गृहेषु चक्रुरिमे ॥ ७ ॥

(२)—दस्युनिग्रहणार्थं भारतीयार्याणां देवेन्द्रसाहाय्यलाभाय प्रयत्नः ।

कुत्सादीनामार्ग्यनृपाणां परित्राणोपायचिन्तासमितिः ॥

कुत्सादयोऽतिखिन्नाः किं करवामेति चिन्तयामासुः ।

घौरः प्रगाथ एतान्चे समयोचितं तत्र ॥ १ ॥

(१)—न । १ “मा चिदन्यद् विशंसत सखायो मा रिपण्यत ।

इन्द्रमित्तोता वृषणं च चासुते मुहुरुक्था च शंसत ॥ १ ॥

अवच्छिन्नं वृषभं पथाजुरं गां न चर्षणी सहम् ।

विद्वेषणं संवननो भयंकरं मंहिष्ठमुभयाविनम् ॥ २ ॥

य ऋते चिदभिषिषः पुरा जनुभ्य आतदः ।

सन्धाता सन्धि मघवा पुरुवसुरिष्कर्ता विहुतं पुनः ॥ ३ ॥

(२)—न । ६२ “प्रो अस्मा उपस्तुतिं भरता यज्जुजोषति ।

उक्थैरिन्द्रस्य माहिनं वयो वर्धन्ति सोमिनो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ १ ॥

अयुजो असमो नृभिरैकः कृष्टीरयास्य ।

पूर्वीरिति प्रवावृषे विश्वा जातान्योजसा भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ २ ॥

(३)—ना६३ “सपूर्व्यो महानां वेतः क्रतुभिरानजे ।

यस्य द्वारा मनुष्यिता देवेषु धिय आनजे ॥ १ ॥

दिवो मानं नोत्सदन्त्सोम पृष्ठासो अद्रयः ।

उक्थ्या ब्रह्म च शंस्या ॥ २ ॥

स विद्वो अङ्गिरोभ्य इन्द्रो गा अवृणोदप ।

स्तुपे तदस्य पौंस्यम् ॥ ३ ॥

स प्रत्नया कविवृध इन्द्रो वाकस्य वक्षणिः ।

शिवो अर्कस्य होमन्यस्मन्नागन्त्ववसे ॥ ४ ॥

आदूनुते अनुक्रतुं स्वाहा वरस्य यज्यवः ।

इवात्रमर्का अनृपतेन्द्रगोत्रस्य दावने ॥ ५ ॥

इन्द्रे विश्वानि धीर्या कृतानि कर्त्त्वानि च ।

यमर्का अध्वरं विदुः ॥ ६ ॥

यत्पाञ्चजन्यया विशेन्द्रे घोषा असूतत ।

अस्तृणद्वर्हणा विपो ३ यो मानस्य सत्तयः ॥ ७ ॥

अस्य वृष्णो व्योदन उरुक्रमिष्ट जीवसे ।

यवं न पश्य आददे ॥ ८ ॥

तद्धाना अवस्यवो युष्माभिर्दक्षपितरः ।

स्याम मरुत्वतो वृषे ॥ ९ ॥”

(४)—“प्रारभै गायत्रमर्चत वावातुर्यः पुरन्दरः ।

याभिः काण्वस्योपवर्हिंसदं वा मद्वाग्नी भिनत्पुर” ॥ (८ । १ । ८)

अन्यन् मा प्रयतध्वं मा क्लिश्यध्वं तमेन्मेवेन्द्रम् ।

शरणं यात स एवाऽखिलकृच्छ्रात् तारयिष्यति नः ॥ २ ॥

ग्रीवाद्येदात्पूर्वं संधानद्रव्यमन्तरेणैव ।

स चिद्धन्नमद्गमखिलं सगः नंधाय मग्न्ने ॥ ३ ॥

दासानां प्रवलानामिन्द्रोऽस्त्येरो निदर्शने गम् ।

तस्मादिन्द्रं यातेत्यादिप्रोक्ते स पुन्नासीत् ॥ ४ ॥

कुत्सं त्वामिह सूर्यायतनेऽस्मिन् स न्ययुक्तेन्द्रः ।
 प्राक् स यदा गन्धर्वं सूर्यं हत्वैतशं तत्र ॥ ५ ॥
 तस्मादत्र विपन्नः शरणं याहीन्द्रमेव तं तूर्णम् ।
 अहमपि तमाह्वयामि तु कामगवीमिव समस्तकामदुहम् ॥ ६ ॥
 गायत्रमिन्द्रसविधे नयतेत्युक्त्वा प्रगाथ एतददात् ।
 वाग् ब्रह्म भद्रसूक्तं गायत्रं नाम कुत्साय ॥ ७ ॥
 देवानामाह्वानं त्वाह्व इत्युच्यते तत्र ।
 आश्रावणं तदुक्तं यच्चाश्रावयति देवेभ्यः ॥ ८ ॥
 अभ्यर्थनां तु देवा अभ्युपगच्छन्ति तच्छ्रौषट् ।
 अभ्यर्थनामयं यद्विनयवचस्तद्वि गायत्रम् ॥ ९ ॥
 काण्वो हीन्द्रप्रणयी काण्वकृताभ्यर्थनास्तोत्रम् ।
 नीत्वा यातेत्यददात् कुत्सकरे विनयपत्रं सः ॥ १० ॥
 तत्र प्रथमं काण्वः प्रगाथ एवार्थनांचक्रे ।
 दस्युवधार्थं कुरुसत्राणार्थं त्वरितमायातुम् ॥ ११ ॥
 मेधातिथि-मेध्यातिथि-नीपातिथयस्तदेन्द्राय ।
 काण्वा एत्य त्रातुं चक्रुरिहाभ्यर्थनासूक्तम् ॥ १२ ॥

प्रगाथस्याभ्यर्थनासूक्तम् ।

८ । ६२—“आयाहि कृण्वाम त इन्द्र ब्रह्माणि वर्धना ।

येभिः शविष्ठ चाकनो भद्रमिह श्रवस्यते भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ४ ॥
 धृपतरिचद्धृपन्मनः कृणोपीन्द्र यत्त्वम् ।
 तीव्रैः सोमैः सपर्यतो नमोभिः प्रतिभूषतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ५ ॥
 अवचष्ट ऋचीपमोऽवँता इव मानुषः ।
 जुष्ट्वी दक्षस्य सोमिनः सखायं कृणुते युजं भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ६ ॥
 विश्वे त इन्द्र वीर्यं देवा अनुक्रतुं ददुः ।
 मुनो विश्वस्य गोपतिः पुरुष्टुत भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ७ ॥
 गृणे तदिन्द्र ते शव उपमं देवतातये ।
 यद्वंसि वृत्रमोजसो शचीपते भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ८ ॥

समनेव वपुष्यतः कृण्वन्मानुषा युगा ।

विदे तदिन्द्रश्चेतनमधश्रुतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ६ ॥

उज्जातमिन्द्र ते शव उत्त्वामुत्तवक्रतुम् ।

भूरिगो भूरि वा वृधुर्मघवन्तवशर्मणि भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ १० ॥

अहं च त्वं च वृत्रहन्त्संयुज्याव सनिभ्य आ ।

अराती वा चिदद्विबोऽनु नौशूर मंसते भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ११ ॥

सत्यमिद्धा उतं वयमिन्द्रं स्तवाम नानृतम् ।

महां असुन्वतो वधो भूरि ज्योतींषि सुन्वतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ १२ ॥

८। ६५—“यदिन्द्र प्रागयागुदङ्ग्यत्वा हूयसे नृभिः ।

आयाहि तू यमोशुभिः ॥ १ ॥

यद्वा प्रसवणे दिवो मादयासे स्वर्णरे ।

यद्वा समुद्रे अन्धसः ॥ २ ॥

आत्वागीर्भिर्महामुरुं हुवे गामिव भोजसे ।

इन्द्रसोमस्य पीतये ॥ ३ ॥

आतइन्द्र महिमानं हरयो देव ते महः ।

रथं वहन्तु विभ्रतः ॥ ४ ॥

इन्द्रगृणीष उ स्तुपे महौ उपईशानकृत् :

एहि नः सुतं पित्र ॥ ५ ॥

सुतावन्तत्त्वा वयं प्रयस्वन्तो हवामहे ।

इदं नो बर्हिरासदे ॥ ६ ॥

यच्चिद्धि शश्वतामसीन्द्रसाधारणत्वम् ।

तं त्वा वयं हवामहे ॥ ७ ॥

इदं ते सोम्यं मध्वधुक्त्रद्रिभिर्नरः ।

जुषाण इन्द्र तत्पित्र ॥ ८ ॥

विश्वो अर्यो विपश्चितोऽतित्यन्तूयमागहि ।

अस्मे धेहि श्रयो बृहत् ॥ ९ ॥

दावा मे पृषतीनां राजाहिरण्यवीनाम् ।

मा देवो मघवा रिपत् ॥ १० ॥

सहस्रे पृषतीनामधिश्चेन्द्रं बृहस्पृथु ।

शुक्रं हिरण्यमाददे ॥ ११ ॥

न पातो दुर्गहस्य मे सहस्रेण सुराधसः ।

श्रवो देवेष्वकृतः ॥ १२ ॥

“इयमुते अनुष्टुतिश्चकृषे तानि यौस्याः ।

प्रावदचक्रत्य वर्तन्निम् ॥” (८ । ६३ । ८)

“ववृत्विषाय धाम्न ऋक्वभिः शूर नो नुमः ।

जेषामेन्द्र त्वया युजा ॥” (८ । ६३ । ११)

“अस्मे रुद्रा मेहना पर्वतासो वृत्रहत्ये भरहूतौ सजोषाः ।

यः शंसते स्तुवते धायिपञ्च इन्द्रव्येष्टा अस्मां अवन्तु देवाः ॥” (८ । ६३ । १२)

मेधातिथेरभ्यर्थनीयं वाग्ब्रह्म ।

८ १—“यच्चिद्धि त्वा जना इमे नाना हवन्त ऊतये ।

अस्माकं ब्रह्मेदमिन्द्र भूतु तेऽहा विश्वा च वर्द्धनम् ॥ ३ ॥

विततूर्यन्ते मघवन् विपश्चितोऽय्यो विपोजनानाम् ।

उपक्रमस्व पुरुषमाभर वाजं नेदिष्ठमूतये ॥ ४ ॥

महेचन त्वामद्रिक् परा मुल्काय देयाम् ।

न सहस्राय नायुताय वज्रिवो न शताय शतामघ ॥ ५ ॥

वर्याँ इन्द्रासि मे पितुरुत आतुरमुज्जतः ।

माता चेमे छदयेयः समावसो वसुत्वनाय राघसे ॥ ६ ॥

क्वेयथ क्वेदसि पुरुत्रा चिद्धि ते मनः ।

अल्पिं युष्म खजकृत् पुरन्दर प्रगायत्रा अगासिपुः ॥ ७ ॥

ये ते सन्ति दशग्विनः शतिनो ये सहस्रिणः ।

अश्वासो ये ते वृषणो रघुद्रवस्तेभिर्नस्तूयमागहि ॥ ८ ॥

आ त्वाद्य सवर्द्धां हुवे गायत्र वेपसम् ।

इन्द्रं घेतुं सुदुधामन्यामिषमुरुधारामरं कृतम् ॥ ९ ॥

यत्तुदत्सूर एतशं बह्वृक्वातस्य पर्णिना ।

वह्वृक्त्समार्जुनेयं शतक्रतुस्तत्सरद् गन्धर्वमस्तुतम् ॥ १० ॥

“मा भूमनिष्या इवेन्द्र त्वदरणा इव ।

वनानि न प्रजहितान्यद्रिवो दुरोपासो अमन्महि ॥ (८ । १ । १३)

अधज्मो अधवाद्रिवो बृहतो रोचनादधि ।

अया वर्धस्व तन्वागिरा ममा ज ता सुक्रनो पृण ॥ (८ । १ । १४)

मात्वा सोमस्य गल्दया सदा याचन्नहं गिरा ।

भूर्णि मृगं न सवनेषु नुकुधं क ईशानं न याचिषन् ॥ (८ । १ । १५)

इहि तिस्रः परावत इहि पञ्चजनं अति ।

वेना इन्द्रावचाकशत् ॥” (८ । ३२ । २२)

मेध्यातिथेरभ्यर्थनासूक्तम् ।

“एन्द्र याहि मत्स्व चित्रेण देव राधसा ।

सरो न प्रा युदरं सपीतिभिरासोनेभिरु स्थिरम् ॥” (८ । १ । २३)

आत्वा सहस्रमाशत युक्ता रथे हिरण्यये ।

ब्रह्म युजो हरय इन्द्र केशिनो व न्तु सोमपीतये ॥ (८ । १ । २४)

अत्वा रथे हिरण्यये हरी मयूरशेन्या ।

शितिपृष्ठा बंहतौ मध्वो अन्धसोषिविचक्षणस्य पीतये ॥ (८ । १ । २५)

पिवात्वत्य गर्बण सुतन्य पूर्वया इव ।

परिष्कृतस्य रसिन इयमासुतिश्चारुमंदाय प यने ॥ (८ । १ । २६)

य एको आस्त दसना महौ उग्रो अग्निर्नैः ।

गमत् स शिप्री न स चोपद्रागमद्वयं न परिदर्शति ॥ (८ । १ । २७)

त्व पुरं चरित्राणं वधैः शुष्णस्य सं पिणरु ।

त्व भा प्रनुचरो अथद्विता यजिन्द्रहृद्वो नुन ॥ (८ । १ । २८)

ममत्वा सूर उदिते मम मध्यन्दिने दिव ।

मम प्रतित्वे अपि न वेन दमना ते मामो ममन्त ॥ (८ । १ । २९)

वर्यं यत्वा सुतावन्त प्रापो न दृष्टं गर्विषः ।

पवित्रस्य प्रन्तवरेषु वृत्तान् परिशेतर मन्तो ॥ (८ । १ । ३०)

त्वरन्ति वा सुतेनरो दम्नो निरेव उस्थिनः ।

कदा सुत वृषाण शोक मगान् अन्तर्हन्ति दम्नान् ॥ (८ । १ । ३१)

सत्यमित्था वृषेदसि वृषजूतिर्नोऽवतः ।

वृषा ह्युम शृण्विषे परावति वृषो अर्वावति श्रुतः ॥ (८ । ३३ । १०)

वृषणस्ते अभीशवो वृषा कशा हिरण्ययो ।

वृषा रथो मघवन् वृषणाहरी वृषा त्वं शतक्रतो ॥ (८ । ३३ । ११)

एन्द्र याहि पीतये मधुशविष्ठ सोम्यम् ।

नायमच्छा मघवा शृणवद् गिरो ब्रह्मोक्था च सुक्रतुः ॥ (८ । ३३ । १३)

वहन्तु त्वा रथेष्ठा मा हरयो रथयुजः ।

तिरश्चिदय्यं सवनानि वृत्रहन्न्येषां या शतक्रतो ॥ (८ । ३३ । १४)

नहि पस्तव नो मम शास्त्रे अन्यस्य रण्यति ।

यो अस्मान् वीर आनयत् ॥ (८ । ३३ । १६)

अधः पश्यश्व सोपरि संतरां पादकौ हर ।

माते कशष्कौ दृशन् स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ ॥ (८ । ३३ । १६)

नीपातिथेरभ्यर्थनासूक्तम् ।

८ । ३४ “एन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम् ।

दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १ ॥

आत्वा प्रावा वदन्निह सोमीघोषेण यच्छतु ।

दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ २ ॥

अत्रा विनेमिरेषामुरां न धूनुते वृकः ।

दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ३ ॥

आत्वा कण्वा इहावसे हवन्ते वाज सातये ।

दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ४ ॥

दधामि ते सुतानां वृण्येन पूर्वपाय्यम् ।

दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ५ ॥

स्मत्पुर्न्धिर्न आगहि विश्वतो धीर्न ऊतये ।

दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ६ ॥

आनो याहि महेमते सहस्रोते शतामघ ।

दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ७ ॥

आत्वा होता मनुर्हितो देवत्रावक्ष्य दीड्यः ।
 दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ८ ॥
 आत्वा मदच्युता हरी द्येनं पक्षेववक्षतः ।
 दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ९ ॥
 आयाहार्य आ परि त्वाहा सोमस्य पीतये ।
 दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १० ॥
 आनो याहुपश्चुत्युक्थेषु रणया इह ।
 दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ११ ॥

८।१ स रूपैरसुनोगहि संभृतै सम्भृताश्वः ।
 दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १२ ॥
 आयाहि पर्वतेभ्यः समुद्रत्याधि विष्टपः ।
 दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १३ ॥
 आनो गव्य न्यद्व्या सहस्रा शूर दईहि ।
 दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १४ ॥
 आनः सहस्रशो भरायुतानि शतानि च ।
 दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १५ ॥

भर्गस्य प्रगाथस्याभ्यर्धनादृक्म् ।

८।६१ ' उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वाणिदं वचः ।
 सत्राच्या मघवा सोमपीतये धिया शयिष्ठ नगन्त ॥ १ ॥
 तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसे धिपरो निष्टतच्छु ।
 उतोपमानां प्रथमो निपीदसि सोमवानं नि ते मन ॥ २ ॥
 आवृषस्व पुरुवसो सुतम्येन्द्रान्यम् ॥
 विद्वा हित्वा हरि वः वृत्स सासाहं मयं निष्टतच्छु ॥ ३ ॥
 अप्राभि सत्य मघवन्तये दन्मिन्द्र मन्वा यथावता ।
 सनेमवाजं तव शिप्रिस्तवन्ता नक्षत्रिन्तो मग्निः ॥ ४ ॥
 शग्ध्यूरेषु शचीपत इन्द्र निश्वाभिन्तिभिः ।
 भगं नदि त्वा यशसं वन्विदमनुगं यशान् ॥ ५ ॥

पौरो अश्वस्य पुरुकृद्वा मस्युत्सो देव हिरण्ययः ।
 न किहि दानं परिमधिषत्वे यद्यद्यामि तद्भाभर ॥ ६ ॥
 त्वं ह्योह चेत्वे विद्राभगं वसुत्तये ।
 उद्वोवृषस्व मधवन् गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये ॥ ७ ॥
 त्वं पुरु सहस्राणि शतानि च यूयादानाय मंहसे ।
 आ पुरन्दरं चकृम विप्रवत्स इन्द्र गायन्तोऽवसे ॥ ८ ॥
 अविप्रो वा यदविधद्विप्रो वेन्द्रते वचः ।
 स प्रममन्दत्वाया शतक्रतो प्राचामन्यो अहंसन ॥ ९ ॥
 उपवाहुर्भक्ष कृत्वा पुरन्दरो यदि मे शृणुवद्ववम् ।
 वसूयवो वसुपतिं शतक्रतुं स्तोमैरिन्द्रं हवामहे ॥ १० ॥
 न पपासो मनामहे नारायसो न जल्हवः ।
 यदिन्विन्द्र वृषणं स चा सुते सखायं कृणवामहे ॥ ११ ॥
 उग्रं युयुज्म पृतनासु सासहि मृणकाति मदाभ्यम् ।
 वेदा भृमं चित्सनितारथी तमो वाजिनं यमिदूनशत् ॥ १२ ॥
 यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि ।
 मधवञ्छगिध तव तन्नऊतिभिर्विद्विषो वृमृधो जहि ॥ १३ ॥
 त्वं हि राधस्पते राघसो महः जयस्यासि विघतः ।
 तं त्वा वयं मधवन्निन्द्रगिर्वणः सुतावन्तो हवामहे ॥ १४ ॥
 इन्द्रः स्पलुत वृत्रहा परस्थानो वरेण्यः ॥
 सनो रक्षिपच्चरमं समभ्यमं सपश्चात्पातु नः पुरः ॥ १५ ॥
 त्वं नः पश्चादधरोदुत्तरात्पुर इन्द्र निर्पाहि विश्वतः ।
 आरे अस्मत्कृणु हि देव्यं भयमारे हेतीरदेवीः ॥ १६ ॥
 अद्याद्याश्वः श्व इन्द्र त्रास्व परे च नः ।
 विश्वाचनो जर्तुन्त्सत्यते अहादिवानक्तं च रक्षिषः ॥ १७ ॥
 प्रमङ्गी शूरो मधवा तुवीमघः सम्मिश्लो वीर्यायकम् ।
 उभाते वाहू वृषणा शतक्रतो निया वज्रं मिमिक्षुः ॥ १८ ॥

अथ दस्युपरिपीडितानामार्याणामिन्द्रशरणे गमनम् ।

इत्थं कृतमतिराप्तप्रणयवचोयुक् स विह्वलः कुत्से ।
 अन्यच्छरणमपश्यन्निन्द्रायैवामरावर्ती प्रयचौ ॥ १ ॥

२६—तत्र विज्ञानौपयिकं सूर्येऽसुरप्रेरितानां दामानामाक्रमणम् ।

देवानामिह सूर्यादुदगाद् वैज्ञानिक प्रभावः न ।
 सौमिकयज्ञवशात् ते प्रापुर्लोकानि भूतिम् ॥ १ ॥
 बलिनोऽसुरास्त एते कहाविभूति महाप्रभावं च ।
 देवानामिह दृष्ट्वा यज्ञं क्रतुं यतन्ते स्म ॥ २ ॥
 विज्ञानदुर्वलत्वाद्प्रारयन्तस्तु ते यज्ञे ।
 विज्ञानोदयनार्थं सूर्येऽग्नित्राक्रमन्ते स्म ॥ ३ ॥
 सूर्यः पृथ्व्यां चक्रद्वयरूपः कश्चिदासीन् प्राक् ।
 देवैर्विनिमित्तस्त हतुं दासान् न्ययोजयन्नुरा ॥ ४ ॥
 यदेवदासीयनियोधनं तद् यैर्यत्र त्रेषामभवद् यदर्थम् ।
 तज्ज्ञायते वेदवचोऽवधानात् तत्किंचिदत्रापि निदर्शयामः ॥ ५ ॥
 प्राक् स्वर्णं सप्तगुमभ्यवोचद् वैकुण्ठ इन्द्र प्रनटेऽमराणाम् ।
 एवं कात्स्न्यतो जीवनकर्म तस्मिन् अकर्ण्यदासदुर्म्मे न्यगुणम् ॥ ६ ॥

२७—मनुष्यामनुष्यभेदान् दामानां त्रैविध्यम् ।

स एष दासस्तु न देव आसीन्न वानरो नापि मनुष्यः ॥
 आर्यैर्द्विषन् कश्चिदनार्यवर्ग्यः पृथग्यदेवैर्न विनागः ॥ १ ॥
 वर्वरभिन्नाः सभ्या आर्या दासा इति त्रिविधा ।
 आर्या बहुधा भिन्ना देवपितृप्रभृतयः कथिता ॥ २ ॥
 सभ्येष्वेकेऽनार्या जाता दाना हि इन्द्रो नृणां ।
 चौर्याद्व्याच्य दैन्यात् पलाय्य दाना उपचयिन् ॥ ३ ॥
 अमनुष्याश्च मनुष्या इत्थं दासाः प्रभो त्रिविधाः ।
 भारतवर्षाभिजना वन्यनिपादा मनुजगताः स्तु ॥ ४ ॥
 तेषामार्यैः साकं क्वपि कदापि युतं न दृष्टम् ।
 नेते जिता न चैते भारतवर्षागिरादृता न हन्ते ॥ ५ ॥
 दत्तुनियुद्धादस्मान् प्रागेवैवं ददो मनुजम् ।
 सहवासोऽनार्याणामनार्याणां भवतीति श्रुतम् ॥ ६ ॥

मनुना स्मृतौ त एते स्मर्यन्तेऽद्यापि दृश्यन्ते ।
 भारतवर्षवहिःस्थास्त्वमनुष्या गिरिचरा दासाः ॥ ७ ॥
 तेषां प्रभवं प्रकृतिं भेदान् वसतीश्च युद्धसंस्थानम् ।
 तदभिज्ञानविशेषानत ऊर्ध्वं दर्शयिष्यामः ॥ ८ ॥

२८—अमनुष्यदासानां प्रभवः ।

ये देवयोनयस्ते दशधा भिन्ना अमीषु भूतगणाः ।
 आसन्नके तेऽपि द्विविधाः सभ्या असभ्याश्च ॥ १ ॥
 सभ्यनिकाये भुक्ता आर्यनिदेशानुकारिणः सभ्याः ।
 ये विपरीता एभ्योऽसभ्यास्ते दस्यवोऽपगणाः ॥ २ ॥
 ॐ प्रमथप्रमुखा बहवो गणाः सुराणां तु सैनिका आसन् ।
 उत्सवसंकेताद्याः केऽपि गणाः भारते कथिताः ॥ ३ ॥ सभा—२७

ॐ सभापर्वः अ० २७ पौरवं युध निर्जित्य दस्यून् पर्वतवासिनः ।

गणानुत्सवसंकेतानजयत् सप्त पाडवः ॥ १ ॥
 ततः काश्मारकान्वीरान् क्षत्रियान् क्षत्रियर्षभः ।
 व्यज्रयल्लोहितं चैव मंडलैर्दशभिः सह ॥ २ ॥
 ततः परमविक्रान्तो बाह्लीकान् पाकशासिनः ।
 महता परिमर्देन वशे चक्रं दुरासदान् ॥ ३ ॥
 दण्डान् सह काम्बोजैरजयत् पाकशासनिः ॥ ४ ॥
 प्रागुत्तरां दिशं ये च वसन्त्याश्रित्य दस्यवः ॥
 निवसन्ति बने ये च तान् सर्वानजयत् प्रभुः ॥ ५ ॥
 लोहान् परमकाम्बोजानृषिकानुत्तरानपि ।
 श्रुषिकेष्वापि संग्रामो बभूवातिभयंकरः ॥ ६ ॥
 स श्वेतपर्वतं वीरः समतिक्रम्य वीर्यवान् ।
 तं जित्वा हाटकं नाम देशं मुह्यकरक्षितम् ॥ ७ ॥
 सरो मानसमासाद्य हाटकानभितः प्रभुः ।
 गन्धर्वक्षितं देशमजयत् पाडवस्ततः ॥ ८ ॥

एभ्यो ये विपरीता लुठचरान्तेऽपरीतय प्रोक्ता ।

मन्ये त एव सांप्रतमफरीतीत्याख्यान्यना ॥ ७ ॥

हरोदोतस एवान्-अपरीतईत्येवमाचष्ट । (Aparviti)

तस्मात् पूर्वयुगेऽसी अपरीतय एव चाख्यानाः ॥ ५ ॥

युद्धस्थलान्न येषां परिच्युनिन्तेऽपरीतय सुदृढा ।

परिगलितं यन्न स्यादपरीतत्वं श्रुतं तन्नय ॥ ६ ॥

विश्वमना वैयश्चोऽप्रतिरुद्धं वक्तुमिन्द्रघलम् ।

अपि गौतमः क्रतून् प्रतिरुद्धान् चाम्माह जहं नम ॥ ७ ॥

इन्द्र यथा ह्यग्निनेऽपरीत नृतो राम ।

अमृतारातिः पुनरुह्यत दाशुपे । (८ । २७ । ६) । ८ ।

आनो भद्रा क्रतवो यन्तु विश्वतोऽऽज्जहन्ते अपरीता—

स उद्भिदः ॥ देवानो यथा सदाभिः वृष्टे—

असन्न प्रायुवो रजिनारो दिवे दिवे ॥ ६ ॥ (८ । २८ । १ । १)

(८ । २८ । २ । १ । १)

अथवा ये प्रतिरुद्धा परिच्युता अपरीतयन्ते नृ ।

एषां वेश्म समन्तान् प्रतिरुद्धं चापरोतिन्ते य ॥ १० ॥

दैवतरीत्यपकृषदेषामपरीतिना गणानां राजा ।

अपकृष्टत्वादेषामपगणराजदेन विभुनिष्ठाभिन् ॥ ११ ॥

त इमेऽफगाननान्ना अफगन नाम्ना च स्मृतं पतिः ।

एषामेव तु वेदिकसमये दाम्भ्यसुपनम् ॥ १२ ॥

२६—अमनुष्यदायप्रतिः ।

अप्रकृतय आमन् एते हन्यामगपग मृग ।

घौरा द्रष्टव्यं योद्धं संततः सैरनयनं ॥ १३ ॥

३०—अमनुष्यदायप्रतिः ।

एषा दायो भेदा अग्नये अमनुष्यः ।

आसन् पुराणि दाय मनुष्येण नान्यथा ॥ १४ ॥

३१-अमनुष्यदासानां प्रमुखाः कतिपये वेदे नामतो निर्दिश्यन्ते ।

वहवः श्रेण्य एषामेकैकश्रेणिनायको भिन्नः ।

प्रमुखा अराजकानां दासानां मन्त्रविश्रुताः केचित् ॥ १ ॥

शंवरः कुयव-शुपण-पिप्रवाः पङ्गुभिः स्मदिभ-रोहिणाऽहयः ।

व्यंस-वेश-मृगया-इलीलिविशः-शूश्रूवांश्चमुरि-तुग्रकौ धुनिः ॥ २ ॥

पर्वतनिवासिशंवर एवा मर्मोच्यते तुजिवर्ची ।

दस्यव एते दासा असुरा पृत्राश्च सर्व उच्यन्ते ॥ ३ ॥

३२-अमनुष्यदासानां हिमवत्प्रदेशे सिन्धुनदप्रान्ते निवासः ।

हिमवति च हेमकूटे यावन्तः पादपवतास्तेषु ।

सिन्धुनदोत्तरभागे द्रोण्यां निवसन्ति दासगणाः ॥ १ ॥

गान्धारोत्तरसीम्नि च निपधात् प्राच्यां य उज्जिहानदेशोक्ति ।

अद्यत्वे तं देशं म्लेच्छा आहुस्तु काफिरस्थानम् ॥ २ ॥

जाह्नवहाटकदेशौ संप्रति चित्राल्लहाखौ ।

कथितौ तत्र प्रान्ते दस्यव एते वसन्तिस्म ॥ ३ ॥

दुर्गमगिरिगहनेऽस्मिन् श्वेतगिरेः द्रुपत्यकाप्रान्ते ।

विषमेऽङ्गणे निगूढे निवसन्ति स्मापरीतिनोऽपगणाः ॥ ४ ॥

गान्धराद्या देशा आर्याणामथ च हेमकूटाद्याः ।

दासानामुभये ते विभिन्नसप्तनदवास्तव्याः ॥ ५ ॥

३३-“सिन्धुनदप्रान्ते सप्तनदत्रयम्” ।

सिन्धौ तावत् सप्त सप्त स्रवन्त्यः संगच्छन्ते वामतो दक्षतश्च ।

सिन्धोः प्रच्यामन्यदन्यत् प्रतीच्यां तस्योदीच्यां सङ्गमस्थानमन्यत् ॥ १ ॥

प्रसप्त सप्त त्रेधा हि चक्रमुः प्रसृत्तरीणामतिसिन्धुरोजसा ।

त्रिः सप्त सप्ता नद्यः ॥ २ ॥

त्रिः सप्त सप्ता नद्यो महीरपो वनस्पतीन् पर्वता अग्निमूतये ।

कृशानुमस्तृन् तिष्यं सधस्य आ रुहं रुद्रेषु रुद्रियं हवामहे ॥ ३ ॥

-(१० । ६४ । ८)

नहि वां वज्रयामहेऽथेन्द्रमिद्यजामहे । जविष्टं नृणां नमः ।
 सनः कदाचिद्वर्षता गमदावाजसातये । गमदा नैधसानये । नमः ॥ २ ॥
 ताहि मध्यं भराणामिन्द्राग्नी अधिष्ठितः ।
 ता उ कवित्वना कवीपृच्छ्यमाना सखीयते । सखीतमस्तु नरा । नमः ॥ ३ ॥
 अभ्यर्च नाभाकवदिन्द्राग्नी यजसागिरा ।
 ययोर्विश्वमिदं जगदिदं द्यौः पृथिवीमष्टुपभ्ये विष्टतोमनु । नमः ॥ ४ ॥

प्रब्रह्माणि नाभाकवदिन्द्राग्निभ्यामिरज्यत ।

या सप्तबुध्नमर्णवं जिह्ववारमपोणुत । इन्द्र ईशान ओजसः । नमः ॥ ५ ॥
 स्वागतमिन्द्राग्निभ्या मित्यं कृत्वा स नाभाक !
 शुष्णवधाय विशेषादिन्द्रं प्रोवाच तत्प्रवच्यामि ॥ ६ ॥

इन्द्रस्यातिथ्यपरिचर्या ।

इन्द्रः स्वाराणिनषवे तिष्ठन्नासीत्सा कुन्सन्ध ।
 अतिथिस्तेन सकृत्सः । पर्यचरन् तं हि मयतोमनः ॥ १ ॥
 देवानामविशेषात् प्राशनसमयास्तयो द्विवा निरता ।
 प्रातः सवन मध्यन्दिनसवनं वा तृतीयमनं वा ॥ २ ॥
 कुत्सो विश्वामित्रं न्ययोजयत् तस्य भोजनाग्नये ।
 प्रातःसवने मध्यन्दिनसवनेऽथो तृतीयमनं वा ॥ ३ ॥
 ऋभुरथ विष्वावाज पूषा वतम्य देवराजस्य ।
 सहभोजने नियुक्ताः पर्वतहर्ष्यस्वयं वदाम् ॥ ४ ॥
 पूषा पशुशालानामध्यक्षः किन्तु सोऽस्ति हव्यं इन्द्र ।
 देवेन्द्रः प्रियवाहनहर्ष्यस्वान् यो विमोदतोऽभीष्टे ॥ ५ ॥
 इन्द्राय यत्र धानान् तृतीयमनं प्रदीयन्ते ।
 तत्रर्भवे च बाजायेन्द्रहरिभ्या च दीयन्ते ॥ ६ ॥
 इन्द्रस्य पानभोजनसमये नत्र च मन्दः सन्
 पिबति च सोममपूपं शुक्लं पाल्मपान्तिनाम् ॥ ७ ॥

भोजनसामग्र्या ये धर्त्तास्ते जनाः प्रयस्वन्तः ।

॥ ५ ॥ सोमादिपानदाने परिचरितारस्तु जरितारः ॥ ५ ॥

सर्वेषां सोऽध्यक्षो विश्वामित्रो महर्षिरिन्द्रं तम् ।

॥ ६ ॥ आमन्त्र्य सूक्तवाकैर्मधुवाकैश्चोपचरति स्म ॥ ६ ॥

तत्र विश्वामित्रकृतो देवेन्द्राय भोजनसमये मधुवाकः ।

॥ ३५२ ॥ धानावन्तं करम्भेणमपूपवन्तमुक्थितम् ॥

इन्द्रं प्रातर्जुषस्व नः ॥ १ ॥

पुरोडाशं पचत्यं जुषस्वेन्द्रा गुरस्व च ।

॥ २ ॥ तुभ्यं हव्यानि-सिस्ते ॥ २ ॥

पुरोडाशं च नोघसो जोषयासे गिरश्च नः ।

वधूयुरिव योषणाम् ॥ ३ ॥

पुरोडाशं सनश्रुत प्रातः सावे जुषस्व नः ।

इन्द्रकतुर्हि ते बृहन् ॥ ४ ॥

माध्यन्दिनस्य सवनस्य धानाः पुरोडाशमिन्द्रकृष्वेह चारुम् ।

प्रयस्तोता जरिता तूर्यर्थो वृषायमाण उपगोभिरीद्वे ॥ ५ ॥

तृतीये धानाः सवने पुरुषदुत पुरोडाशमाहुतं मामहस्व नः ।

कृभुमन्तं वाजवन्तं त्वा कवे प्रयस्वन्त उपशिद्धेम धीतिभिः ॥ ६ ॥

पूषण्वते च कृमा करम्भं हरिवते हव्यैश्वाय धानाः ।

अपूपमद्वि सगणो मरुद्भिः सोमं पिव वृत्रहाशूर विद्वान् ॥ ७ ॥

प्रतिधाना भरत तूपमस्मै पुरोडाशं वीरतमाय नृणाम् ।

दिवे दिवे सदृशोरिन्द्रं तुभ्यं वर्धन्तु त्वां सोमपेयाय धृष्ट्यो ॥ ८ ॥

३-६०-१-७ विश्वामित्रकृतस्तृतीयसवने ऋमुत्रयपरितोषार्थः प्राशनीयो मधुवाकः

“इहेह वो मनसा बन्धुता नर उषजो जग्मुरभि तानि वेदसा ॥

याभिर्मायाभिः प्रतिजृतिं वर्षसः सौधन्वना यज्ञियं भागमानश ॥ १ ॥

याभिः शचीभिश्चमसौ अपिशत यया धिया गामरिणीति चर्मणः ।

येन हरी मनसा निरतक्षत तेन देवत्वमृभवः समानश ॥ २ ॥

इन्द्रस्य सख्यमृभवः समानशुर्मनोर्नपातो अपसोदधन्विरे ।

सौधन्वनासो अमृतत्वमेरिरे विष्ट्वी शमीभिः सुकृतः सुकृत्यया ॥ ३ ॥

— 22 —

विनिमयनव्यवहाराञ्जस्यार्थं राजशासनप्रख्यम् ।
 अथ यथा प्रश्यामस्ताम्रपणं रौप्यणं स्वर्णम् ॥ ६ ॥
 एवं देवयुगे प्रागासीद्-गोनाम विनिमयद्रव्यम् ।
 तद् गौरेव हिरण्यं वान्यद्वेत्येवमनुचिन्त्यम् ॥ ७ ॥
 अद्येव पूर्वकाले क्रयविक्रयवत् प्रभूपहारेऽपि ।
 विनिमयनीयद्रव्याण्यावेद्यन्ते स्म ता-गावः ॥ ८ ॥
 आराध्याः संभ्रान्ताः संभावितसज्जनाश्च समवेत्य ।
 प्रणयप्रदेयमर्थं स्वैः स्वैः काव्यैः सहार्पयामासुः ॥ ९ ॥
 येयं प्रथते वेदिकमन्त्राणां संहितात्रितयी ।

काव्यानि तान्यवोणमित्युक्तं शतपथेऽष्टमे ॥ काण्डे ॥ १० ॥

(शत० न क्र० ३ प्र० ३ ब्रा० ४ कं०)

तत्र च कुत्सुनियुक्तो विश्वामित्रो महर्षिरुत्थाय ।
 दस्युवधायेन्द्रायावदेयदभ्यर्थनासूक्तम् ॥ ११ ॥
 शुष्मिन्तमं च वनुते दस्युभ्यः स्वगृहराष्ट्रचार्थम् ।
 भोज्यान्नलाभहेतोर्द्युम्निनिर्युक्तिं च सोर्यते सोमम् ॥ १२ ॥

वीरप्रानप्रमहे विश्वामित्रकृतो दस्युवधाभ्यर्थनासूक्तपाठः ॥ ३१-३७ ॥

विश्वामित्रो भोजनादिप्रबन्धाध्यक्षः क्लृप्तस्तेन पानोत्सवस्य ।
 अध्यध्यक्षः सोऽभवत् तत्सभायां सग्वेरन्तेऽभ्यर्थनां सोऽध्यवोचत् ॥ १ ॥

३ । ३७ । “वार्त्रहत्याय शवसे पृतनापाह्वाय च
 इन्द्रत्वा वर्तयामसि ॥ १ ॥

अर्वाचीनं सुते मन उत चक्षुः शतक्रतो ।
 इन्द्र कृण्वन्तु वाघतः ॥ २ ॥

नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे ।
 इन्द्राभिमातिषाह्ये ॥ ३ ॥

पुरुष्टुतस्य धामभिः शतेनं महयामेसि ।
 इन्द्रस्य चर्षणीधृतः ॥ ४ ॥

इद्रं वृत्राय हन्तवे पुरुहूतमुपब्रुवे ।
 भरेषु बाज सातये ॥ ५ ॥

तं शिशीता स्वध्वरं सत्यं सत्वानमृत्विर्यम् ।

उतो नु चिद्य ओहत आण्डा शुष्णस्य भेदत्यजैः स्वर्वतीरपो

नभन्तामन्यके समे ॥ ११ ॥

एवेन्द्रामिभ्यां पितृवन्नब्रवीयो मन्धातृवदङ्गिरस्वदवाचि ।

त्रिधातुना शर्मणा पातमस्मान्वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ १२ ॥

ततो दस्युनिग्रहोपायचिन्तायां कुत्सेनोपायप्रदर्शनम् ।

अथ सुप्रसन्न इन्द्रो दस्यूनामभिजनस्थितिप्रचारादि ।

अपि तदमनोपायाद्यध्यवसातुं परामृत्तत् ॥ १ ॥

व्यङ्गपयत्तु स कुत्सो निषधादस्मात्तु पूर्वतः सरिताम् ।

पारेऽञ्जस्यादीनां प्रत्यासन्ने 'शिफा' नद्याः ॥ २ ॥

कुयचम्रामं जाने किन्त्वञ्जस्यादयोऽतिदुष्पाराः ।

बलवज्जलसंवेगाः सन्ति प्रथि, प्राणहारिण्यः ॥ ३ ॥

यद्यपि सरित्प्रवाहो हस्तद्विशतीमितोऽस्ति विस्तारे ।

किन्तु तथापि न नौभिर्गन्तुं शक्योऽन्तरश्मभिर्घातात् ॥ ४ ॥

जलवेगप्रावल्यादुष्वावचभूमिसञ्चारात् ।

सरितां पारं गन्तुं न बाहुतरणात्समर्थन्ते ॥ ५ ॥

दस्यव एते निपुणा गिरिशिखरप्रोतदोलवर्तन्याः ।

शिक्याभिर्मशकैर्वा यातायातं प्रकुर्वन्ति ॥ ६ ॥

दासातिरिक्तजनता त्वासां पारं समर्थते नैतुम् ।

तत्कृतदोलनिपातादवहनतो मशकंशिक्यानाम् ॥ ७ ॥

दोलाद्यारूढा अपि बहवो नद्यां निपातिता द्वेपात् ।

तस्मात्तेषां ग्रामाः सहसा द्रष्टुं न शक्यन्ते ॥ ८ ॥

मध्ये मार्गं च सन्ति रुन्धानाः ।

तस्मात्तेषां ग्रामा दुरधिगमा दुर्गमाः सन्ति ॥ ९ ॥

आसां ततो नदीनां निस्तारार्यं नियुज्यन्ताम् ।

आहूय राष्ट्रिशूराः आर्यो बनेरक्षिणः कुशलाः ॥ १० ॥

दासानां पथि चरतां व्यामोहार्थं नियुज्यन्ताम् ।

कृतदासवेष्टभूपास्तद्वापायां च शिञ्जिता मम्म ॥ १६ ॥

ततो दस्युनिग्रहार्थं कुन्मप्रदक्षितमार्गाश्रयणम् ।

इत्थं कुत्सादिष्टमार्गं स इन्द्र. सम्यग् मत्वा नतर्थादिदेश ।

दस्यूनेतान् संनिगृह्य स्वराज्ये भूयोऽप्यार्यान् धातुमाजान् प्रतिगन्तु ॥ १७ ॥

सिन्धो. पारे नैपथेऽत्रौ स इन्द्र. न्कन्यादानं विष्मन् प्ररन् ।

गूढं दस्युस्थानमादौ विचेतुं विज्ञानं द्रोण्यां प्रेषयामास चागन् ॥ १८ ॥

काले भूयस्यप्यनिश्चित्य तेषां शैलद्रोणीगहर्ग्याभिरेनान् ।

प्रत्यावृत्तास्ते चरा आयुराजप्रेष्यारण्याभिजवेमान् रुयन् ॥ १९ ॥

आसीदायु. प्राक् प्रतिष्ठानराजो हेमाद्रिं पञ्चगौरप्रगने ।

ये तद्भृत्या. केऽप्यष्टव्यां नियुक्तास्ते नन्दान् दस्युर्जातिनाम् ॥ २० ॥

आयुराजस्य प्रतिष्ठानं पुगधिष्ठानुः पश्चिमः ।

गन्धर्वराजपौत्रो बुधपुत्रो च पुम्परा राजा ।

तत्पुत्र आयुरासीद् गन्धर्वराज प्रतिष्ठाने ॥ २१ ॥

‘गौरी’ नदीसमीपे भूजवतः पर्वतादगन्धर्वे ।

गान्धारे प्रागासीदिदं प्रतिष्ठानमायुपुत्रम् ॥ २२ ॥

अधुना केचिद्ब्रुवते भारतवर्षागन्धर्वेराजम् ।

‘भूमी’-‘प्रायान’-सविधे पुग प्रतिष्ठानमित्येते ॥ २३ ॥

राजा ययातिरवसद् वार्षके न प्रजगन्धर्वे ।

तस्य निवासस्थानं विदुः ‘प्रतिष्ठानं’ मित्येते ॥ २४ ॥

अस्मिन् भारतवर्षे सन्ति हि ‘प्रायान’ देशाः ॥ २५ ॥

वाहीक-वैतुलादि-प्रतिष्ठानं स्पर्शान् नन्दान् ॥ २६ ॥

जाह्नवदेशप्रथिता ‘जाह्नवी’ नाम च नदी ।

तस्या कृत्वा गुप्तं पुरं प्राग्वत्प्रतिष्ठानम् ॥ २७ ॥

‘पञ्च प्रमाणजातं निर्दिष्टं पौराणिकम् ॥ २८ ॥

आयु पौरुषस्यो दाम्पत्यस्य च ॥ २९ ॥

इन्द्रस्तस्मादायुराड्वन्यवर्गात्तेषां भाषावेशभूषादि साम्यम् ।
संपाद्य स्वांस्तत्र वर्गे प्रवेश्य स्थानं तेषामध्यवास्यत् क्रमेण ॥ ६ ॥

अप्रतिरथमहोवाकः ।

अथ तत्र देवसेनां मरुत्याः सेनया संयुक् सज्जा ।
समराङ्गणेऽवतरितुं प्रतीकृतं स्म प्रभोराज्ञाम् ॥ १ ॥
अथ समराय मरुद्भिः संयुजं निषधात् प्रतिष्ठमानं तम् ।
प्रोत्साहयितुं चन्द्रोऽप्रतिरथ उपासते स्म ॥ २ ॥
आभिक्रमिकः सुभटः प्राथानिकसमयमालक्ष्य ।
राजनियत्याऽभ्यूचेऽप्रतिरथ ऐन्द्रो महोवाकम् ॥ ३ ॥

॥ युद्धयात्रांस्मरे राजपुरुषेणाप्रतिरथेनाप्रतिरथसूक्तपाठः ॥

१०।१०३ “आशुः शिशानो बृषभो नःभीमो घनाघनः क्षोभिणश्चर्षणीनाम् ।

संक्रन्दनो ना निमिष एक वोरः शतं सेना अजयत्साकमिन्द्रः ॥ १ ॥

संक्रन्दनो ना निमिषेण जिष्णुना युक्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना ।

तविन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ॥ २ ॥

स इषुहस्तैः सनिषङ्गिभिर्वशी संस्रष्टा संयुध इन्द्रो गणेन ।

संस्रष्टजित्सोमपा बाहुशर्भुं प्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥ ३ ॥

बृहस्पते परिदीया रथेन रत्नोहा मित्रो अप वाधमानः ।

प्रभञ्जनत्सेनाः प्रमृणो युधोजयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम् ॥ ४ ॥

बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान्वाजी सहमान उग्रः ।

अमिबीरोऽभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्ररथमातिष्ठ गोवित् ॥ ५ ॥

गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमब्जं प्रमृणन्तमोजसा ।

इमं सजाताअनुवीर यद्धमिन्द्रः सखायो अनुसंरम्भवम् ॥ ६ ॥

अभिगोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः ।

दुश्च्यवनः पृतनाषाडयुध्योस्माकं सेना अवतु प्रयुत्सु ॥ ७ ॥

इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः ।

देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् ॥ ८ ॥

इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्द्ध उग्रम् ।
 महामनसा भुवनच्यवानाङ्घ्रिषो देवानाञ्जयतामुदस्थात् ॥ ६ ॥
 उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत्सत्त्वना मामकानां मनांसि ।
 उद्धृत्रहन्वाजिनां वाजिनान्युद्धृथानां जयतां यन्तु घोषा ॥ १० ॥
 अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु ।
 अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्तस्मां उ देवा अवता हवेषु ॥ ११ ॥
 अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्येष्वे परे हि ।
 अभिप्रेहि निर्हह हत्सु शोकैरन्वेनामित्रास्तमसा सचन्ताम् ॥ १२ ॥”
 अवसृष्टा परापत शर व्ये ब्रह्मसंशिते ।
 गच्छामित्रान्प्रपद्यस्व मामीषाङ्कञ्चनो छिषः ॥ (६ । ७४ । १६)
 प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु ।
 उषा वः सन्तु बहवो नाधृष्या यथासथ ॥
 असौ या सेना मरुतः परेषामभ्यैति न ओजसा स्पृष्टमाना ।
 ताङ्गूहत तमसाऽपव्रतेन यथामीअन्योअन्यन्नजानन् ॥
 यत्र वाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव ॥ (६ । ७४ । १७)
 तन्न इन्द्रो बृहस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु विश्वाहा शम्म यच्छतु ।
 मर्मणि ते वर्मणाच्छादयामि सोमस्त्वा राजा मृतेनानुवस्ताम् ।
 उरोर्वरोयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तत्वानुदेवामदन्तु ॥” (६ । ७४ । १८)

नुमेधपुरुमेधौ बृहद्गगानेन देवेन्द्रमभिष्टोतु देवेन्द्रसहचारिणं प्रधानामान्यमिन्द्र-
 तनूनपातं मरुद्गणं तावदभ्यर्थयेत ।

८ । ८६ “बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम् ।
 येन ज्योतिरजनयन्तृतावृधो देवं देवाय जागृषि ॥ १ ॥
 अपाधमदभिः शस्तीरशस्ति हाथेन्द्रोद्युभ्यामव न ।
 देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे बृहद्भानो मरुद्गण ॥ २ ॥
 अथ इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत ।
 वृत्रं हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणां ॥ ३ ॥

अथेन्द्राय तौ बृहद्गानं गायतः ।

अप्रतिरथे प्रयुक्ते मारुत्या सेनयेन्द्रमासक्तम् ॥

उपतस्थाते तु बृहद्गानं गातुं नृमेघपुरुमेधौ ॥ १ ॥

८ । ८६ “अभिप्रभर धृषता धृषन्मनः श्रवश्चित्ते असद्बृहत् ॥

अर्षन्त्वापो जवसा विमातरो हनो वृत्रं जया स्वः ॥ ४ ॥

यज्जायथा अपूर्व्यमघवन्वृत्रहत्याय ॥

तत्पृथिवीमप्रथयस्तदम्भा उत द्याम् ॥ ५ ॥

तत्ते यज्ञो अजायत तदर्कं उतहस्कृतिः ॥

तद्विश्वमभिभूरसि यज्जातं यश्च जन्त्वम् ॥ ६ ॥

आमासु पक्मैरय आसूर्यं रोहयोदिवि ॥

धर्मं न सामन्तपता सुवृक्तिभिर्जुष्टं गिर्वणसे बृहत्” ॥ ७ ॥

८ । ६० आनो विश्वासु हव्य इन्द्रः समत्सु भूपतु ॥

उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहा परमज्या ऋचीपमः ॥ १ ॥

त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यसि सत्य ईशान कृत् ॥

तुविद्युन्मस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः ॥ २ ॥

ब्रह्मा त इन्द्रगिर्वणः क्रियन्ते अनतिद्रुता ॥

इमा जुषस्व हर्यश्च योजनेन्द्र याते अमन्महि ॥ ३ ॥

त्वं हि सत्यो मघवन्नानतो वृत्राभूरिन्यूज्यसे ॥

सत्त्वं शविष्ठ वज्रहस्त दाशुपेऽर्वाचं रयिमा कृधिः ॥ ४ ॥

त्वमिन्द्र यशा अस्पृजीषी शवसस्यते ॥

त्वं वृत्राणि हंस्यप्रतीन्येक इदनुत्ता चर्षणीधृता ॥ ५ ॥

त्वमुत्वा नूनमसुर प्रचेतसं राधोभागमिवेमहे ॥

महीवकृतिः शरणा त इन्द्र प्रते सुम्ना नो अश्नवन्” ॥ ६ ॥

निपधात् प्रस्थितेनेन्द्रेण आदौ सरयुपरस्थमार्यराजद्वयं निहतम् ।

निपधोद्विगिरेः प्रतस्थे मारुत्या देवसेनया च सह ॥

महतोत्साहेनेन्द्रोऽदिवविष्णुयुक् कुत्सयुग्ं बृहस्पतियुक् ॥ १ ॥

दस्युनिन्द्रो हन्तुं शैलानेवाभियातुकामोऽपि ।
 मध्ये मार्गं प्रथमं दावार्य्यौ प्रतिययौ हन्तुम् ॥ २ ॥
 आर्य्यविमौ नरेशावार्य्यकुलध्वंसनोपायान् ।
 परिदर्शयतस्तेषां दासानां प्रेमवशभूतौ ॥ ३ ॥
 इत्याकर्ण्य स इन्द्रः प्रथमं तावेव धर्षितुं चक्रे ।
 रुभैपज्यात्पूर्वं रुक्प्रभवोत्सादनं श्रेयः ॥ ४ ॥
 सरयोः सरितः पारे क्वचिदार्यावर्णचित्ररथौ ।
 भूपो वसतः स्मैतौ दाससखौ तद्वितप्रवर्णौ ॥ ५ ॥

सरयुनदीपरिचयः ।

आत्रेयः श्यावश्वः सरयुं सह पठति सिन्धुना कुम्भया ।
 क्रुन्वाथगयः प्लातोऽपि सिन्धुनापि च सरस्वत्या ॥ १ ॥
 “मावोरसाऽनितभा कुभा क्रुमुर्मावः सिन्धुर्निरीरमत ।
 मावः परिप्रातु सरयुः पुरीषिण्यस्मे इत् सुम्नमस्तुवः ॥ (४ । ४३ । ६)
 सरस्वती सरयुः सिन्धुर्निर्मिर्महो महीरवसा यन्तु वज्रणी ।
 देवीरापोमातरः सूदयित्वो घृतवत्पयो मधुमन्नो अर्चत” ॥ (१० । ६४ । ६)
 एतेनेयं सरयुः सिन्धुगता काचिदन्तरिक्षेऽस्ति ।
 न तु साऽयोध्याप्रान्ताथिता श्रुता कुञ्चिद्वेदे ॥ २ ॥
 तक्षशिलानगरी तलवहना या सिन्धुसंगमना ।
 सा सरयुरिति सत्यव्रताख्यसामश्रमी प्राह ॥ ५ ॥
 अपरे त्वेतां सरयुं हिन्दुकुशपर्वतप्रभवाम् ।
 प्राहुस्तथाहि तस्याः परिचयमित्थं विजानीयान् ॥ ६ ॥
 वेदे यत्तुर्योक्ता चर्चजम्बूश्च सा पुराणोक्ता ।
 ‘अक्सस’—इति तां स्लेच्छा आहु ‘रम्’ इति च तानाहु ॥ ७ ॥
 तस्या दक्षिणकूले यत्तः पू ‘रोक्सियाना’ न्या ।
 तद्देशस्था उक्ता यत्तव इति वेदमन्त्रे प्राहु ॥ ३ ॥
 एतानेव तु पश्चान्स्लेच्छा विदुः ‘रोक्सियानी’ नि ।
 यत्तव आर्य्या आसन् पश्चान्स्लेच्छा वभ्रुवुन्ने ॥ ४ ॥

यन्नुप उदक् तु शिग्रुर्नदी 'सुगद' उच्यते म्लेच्छैः ।

यन्नुषि सैति च सुगदप्रान्तोऽयं 'सुगदिर्याना' ख्यातः ॥ ५ ॥

सुगदनदी यद्गिरितः प्रवहति 'सुगदी' स पर्वतः कथितः ।

तद्गिरिशिखरे स ऋषिर्माकण्डेयः पुरायुगे न्यवसत् ॥ ६ ॥

अथ 'हिन्दुकुश'—'सुगदानिया' न्तरे यन्नुपोऽवाच्याम् ।

प्रान्तोऽस्ति वक्द्रियाना हिन्दूकुशजा नदीह 'दगिदुसा' ॥ ७ ॥

वाह्नीक एव 'वक्द्रा' नाम्नाख्यातः पुरा म्लेच्छैः ।

स च वाह्नीकप्रान्तस्तैरुक्तो 'वक्द्रिया' नाम्ना ॥ ८ ॥

शैलद्वयान्तराले प्रवहन्त्युत्तरमुखी तु 'दगिदुसा' ।

वृत्सुः सा तत्प्रान्ते 'जरियस्या' सैव 'वक्द्रा' पूः ॥ ९ ॥

प्रान्तोऽस्ति 'मार्गियाना' पश्चिमतो 'वक्द्रिया' प्रान्तात् ।

तत्र च हिन्दूकुशजा 'मरग्यु' सो दङ्मुखी नदी वहति ॥ १० ॥

४—योऽर्वाक् तु मार्गियानाप्रान्ताद् हिन्दूकुशोऽस्य दक्षिणतः ।

उद्भूय पश्चिमां प्रागथोत्तरामनु तु या नदी वहति ॥ ११ ॥

प्राक्सीमिन् 'हरसियाना' प्राग्तस्थौ 'च्छुस' नदीन्तु याऽन्वेति ।

या च 'सरीफी' पर्वतपश्चिमपार्श्वानुगोत्तरां याति ॥ १२ ॥

'अरियुस' नदी तु सोक्ता सरयुः स्यात् सा नदी वेदे ।

दक्षिणतोऽस्याः प्रान्तः प्रथते वा एरियानेति ॥ १३ ॥

प्रागेतदेरियानाप्रान्तात् प्रत्यक्तटे सुलेमानात् ।

प्रान्तो य इण्डियाख्यस्तत्र वसन्तिस्म भारतीयाः प्राक् ॥ १४ ॥

फरहनदी निर्गमने पारस्यानां तु 'पर्सिया' नगरी ।

तस्या उत्तरतः सा सरयुर्या 'मरियुस' ग्राह ॥ १५ ॥

अर्णचित्ररथयोः स्वजातिविद्वपो वधे हेतुः ।

तस्याः सरयाः परितस्तावार्यावर्णचित्ररथौ ।

कुत्साद्यार्यगृहाणां परिस्थितिं दश्युषु स्म सूचयतः ॥ १ ॥

तस्मादार्याविव तु समूलघातं जघान स प्रथमम् ।

इति वामदेव ऊचे तुर्यस्य त्रिंशके सूक्ते ॥ २ ॥

“उतत्या सद्य आर्या सरयोरिन्द्र-पारतः ।

अर्णाचित्ररथावधीः ॥ (४ । ३० । १८)

सरस्वतीप्रान्तवासिचित्रराजापेक्षया सरयुप्रान्तवामिनश्चित्ररथस्य भिन्नत्वम् ।

यं सोमिरस्तु काण्वो दातारंभूरि तुष्टाव ।

सोऽन्यश्चित्रो राजा सरस्वती तदवसन्नृपप्रवरः ॥ १ ॥

“चित्र इद्राजा राजका इदन्यके यके सरस्वतीमनु ।

पर्जन्य इव ततनद्धि वृष्ट्या सहस्रमयुताददत् ॥ २ ॥

इन्द्रो वाषेदियन्मघं सरस्वती वा सुभगाददिवसु ।

त्वं वा चित्रदाशुषे” ॥ ३ ॥ (६ । २१ । १७ । १०)

अर्णाचित्ररथयोगर्गन्धर्वत्वम् ।

अर्णश्चित्ररथो वा मन्ये स्यातामिमौ तु गन्धर्वा ।

मन्ये तद्वधमेव त्वकीर्तयत्कुसुतिः काण्वः ॥ १ ॥

“अभि गन्धर्वमतृणद् बुध्नेषु रजः स्वा ।

इन्द्रो ब्रह्मभ्य इद्वृधे” ॥ २ ॥ (८ । ७७ । ५)

ततः सप्तदस्युराजराष्ट्राभिक्रमणम् ।

अञ्जस्याद्या दुस्तरा आपगाया आसंस्तासां पारमासाद्य कष्टान् ।

दस्युप्रामान् वीर आक्रम्य हत्वा कौश्रित् कांश्चिज्जीवतोऽपि न्यगृह्णन् ॥ १ ॥

सप्तभ्योऽशनुभ्यः शत्रुभूदिन्द्र एष यानवधीत् ।

कुयवं शुष्णं शंवरमहिवंगृदरौहिणान् कृष्णम् ॥ २ ॥

एषां भुवनान्यासन् सप्तानां सप्तभिन्नतन्त्राणि ।

गणनागसुरभेदादेते सङ्कीर्णजातिका दासाः ॥ ३ ॥

अहिरत्र नाग आसीदसुरा कृष्णश्च रौहिणो नमुचि ।

अपरेऽपगणा वृत्त्या दस्यव एतेऽसुरानगा अभयन् ॥ ४ ॥

पर्वतयात्रायां रासभरथादयः परिरुगः ।

रासभरथेन चेन्द्रो दस्युविदासाय पर्वतप्रान्ते ।

अचरद् विष्णुसहायः स वृहस्पतिरन्वितोऽग्निभ्याम् ॥ १ ॥

हरयः पृष्ठानुचरा दश तु शतानीन्द्रमेतमनुचेतः ।

मारुत्या सेनया भागत्रयमत्र सह भेजे ॥ २ ॥

हरिभिः सहस्रसंख्यैर्हरियानुक्तः सहस्राक्षः ।

स मरुद्भिस्तु मरुत्वान् न विना हरिभिर्मरुद्भिः सः ॥ ३ ॥

द्वौ तु हरी इन्द्राश्वौ खे भुवि चाभ्यामयं चरति ।

याति गिरीणां विषमं शृङ्गाच्छृङ्गान्तरं ताभ्याम् ॥ ४ ॥

रौहिणासुरनिपातः ।

दस्युकुलध्वंसायाभिक्रममाणं निम्य देवेन्द्रम् ।

स्वर्गं रिक्तं मत्वा तं जेतुं रौहिणश्चक्रमे ॥ १ ॥

तं ग्रामारोहन्तं सत्वरमाक्रम्य रौहिणं परितः ।

निजघान वज्रहस्तो देवेन्द्रः कम्पयन् दासान् ॥ २ ॥

अहिनिर्घातनम् ।

आसन् केचित् पर्वतास्तत्र दस्युग्रामो वासाऽध्वादि निर्गूहतेऽलम् ।

तेषामन्तः कापि शैलस्य गर्भे दासग्रथोऽहिर्नागवंशोऽध्यवात्सीत् ॥ १ ॥

अहिरयमसुरः कुयवप्रभृतीनां दासमुख्यानाम् ।

साहय्येन कदाचित् सिन्धोः स्रोतोऽरोधनं चक्रे ॥ २ ॥

सिन्धोः सप्तस्रोतांस्यन्याऽयमावगहरोद्भेदात् ।

तेषां यमदिग्वाहीन्ययनान्युपरोधयाञ्चक्रे ॥ ३ ॥

शैलद्रोण्यामद्रिद्वययोगेन पथि संकीर्णे ।

स्थूलोपलैः प्रपातैः प्रचितैः स्रोतांसि रुद्धानि ॥ ४ ॥

गिरिकुलगह्वरभागाः सर्वेऽप्यभवन् पयोभिराकीर्णाः ।

ओघः समुद्रवद्भूदुर्गैः कूटैरितस्ततः प्रचितः ॥ ५ ॥

वक्ष्ये यो याः सरितामद्रीणां याश्च वंक्षणा आसन् ।

तत्रापां विलमखिलं प्रस्तरखण्डैर्निरोधयामासुः ॥ ६ ॥

स्रोतःस्यवरोधे रक्षार्थं दासपत्न्योऽग्र्याः ।

आसंस्तत्र नियुक्ता निरीक्षका यामिका वहवः ॥ ७ ॥

तत्र च पयःप्रसारेऽन्तरीपदेशे विशालशैलस्य ।

अधरशिलाविस्फोटात् तिर्यग्चिवर चकार दूरतरम् ॥ ८ ॥

जलमयमन्तर्धिवर प्लवगम्यं तत्पर तमसा ।

छन्नं वर्त्म ततस्तद्विशति गिरेरुदरमत्यजिरम् ॥ ९ ॥

तत्र च विविधाः शाला राजगृहाण्यपि गृहाणि भृत्यानाम् ।

दृषदुत्किरणात् सिद्धान्यत्र च भाः शिखरविवरेभ्यः ॥ १० ॥

इत्थं पर्वतगर्भे दृषदुद्धरणान्महाजिरे जाते ।

सिद्धेष्वावनेकसदनेष्वहिरण्यमाशेत संवृतोऽम्भोभिः ॥ ११ ॥

अम्भसि पर्वतगर्भे तमसाक्रान्ते विलेशयः सोऽहिः

लोकान् दृष्ट्वा दृष्ट्वा गिरिकुहरेऽहोष्ट दुष्ट आत्मानम् ॥ १२ ॥

“समुद्रे अन्तः शयत उन्दावज्रो अभीवृतः ।

भरन्त्यस्मै संयतः पुरः प्रत्यवणा बलिम्” ॥ (८ । १०० । ९)

इन्द्रस्तेषां पर्वतानां च पक्षादिछत्वाऽऽक्रम्योद्बोधयामास सुमम् ।

अत्युग्रार्हिं तं जघानाद्विभेदात्तन्मादापोऽगुः समुद्रं सरस्तः ॥ १३ ॥

शैलद्रोण्यां वृक्षणाख्या अपां ये बन्धा आसन् दासपत्नीप्रगुप्ताः ।

ते च ध्वस्ताः शैलपक्षावभेदादापः सर्वा सप्तसिन्धुष्वगुप्ताः ॥ १४ ॥

सगरो नामस्थानं तदन्तरिक्षं यतो मूलात् ।

सिन्धोः सप्तस्रोतास्युन्मोच्यावाहयत् सिन्धौ ॥ १५ ॥

तत्र प्रान्ते पर्वतश्रेणिष्वन्धे संरुद्धानां तर्ह्यपां भूयसीनाम् ।

शैलोद्भेदात् स्रोतसाऽभूद् ‘वितस्ता’ भूमिप्रान्ते सिन्धुवारा प्रमार ॥ १६ ॥

तत्रैकहेलयाऽपामोघविसारे पुराऽवरोद्धानाम् ।

कासां मूल मध्यं वाऽन्तो वेत्यवगमे जना मुमुहुः ॥ १७ ॥

३—शंवरहत्यम् ।

प्रस्तोकाख्य सृञ्जयपुत्र कथितो दिवोदामः ।

‘अतिथिग्व’श्च स एवाश्वथ उक्तो गर्गयजमानः ॥ १ ॥

‘अतिथिग्वं तु ‘कशोजुव’ मपीदयच्छ्वरो दिवोदामम् ॥

अश्विभ्यां मयमिन्द्रस्तमरत्तच्छ्वरं हत्वा ॥ २ ॥

अतिथिग्वशत्रुशंवरनिग्रहणयेन्द्र आदिशत् पूर्वम् ॥
 तद्भयतो गिरिगह्वरतमसि पयः संवृतः सोऽस्थात् ॥ ३ ॥
 अत्युच्चपर्वतोपरि गृहमासीत् किञ्चिदस्यान्तः ॥
 अवरोहणसोपानेऽभूदवतरितं तु कंदरद्वारम् ॥ ४ ॥
 उत्कीर्णाश्मकृताजिरमासीदुदरं गिरेस्तत्र ॥
 अन्तर्विविधाः शाला आसन् वर्तमानि चत्वराणि सर ॥ ५ ॥
 आरुणादौ शिखरं गृहान्तरद्वारमासाद्य ।
 अवरोहणसोपानेनावतरन् विशति गह्वरायतने ॥ ६ ॥
 इत्थं सोतिनिगूढं सुरक्षितं दुर्गमाश्रित्य ।
 इन्द्रनियुक्तैश्चारैरलक्षितः शम्बरः जीवत् ॥ ७ ॥
 चत्वारिंशद्वर्षाण्यात्मानं निन्हुवानः सः ॥
 श्रुण्वनिवर्द्धाभिक्रमकालेऽकस्मादयं ददृशे ॥ ८ ॥
 पर्वतशिखरस्योपरि शंवर एत्यस्थितो रिपुं द्रष्टुम् ।
 शृङ्गाभिप्रात्य भूमौ तमखिनौ जघन्तुः क्रूरम् ॥ ९ ॥
 “याभिर्महातिथिग्वं कशोजुवं दिवोदासं शंवरहृत्य आव्रतम् ।
 याभिः पूर्वभिर्द्यौः त्रसदस्युमावतं तामिरुपुरुतिभिरखिना गतम्” (१ । ११२ । १४)
 शतमदममय्य आसन् शम्बरपुत्र्यो दृढाऽऽसु यो मुख्या ।
 आयस्येका शंवरदस्योः सा राजधान्यासीत् ॥ १० ॥
 नवनवतिर्याः पुत्र्यस्तांसांमीशाश्च नवनवतिः ।
 बाह्व इव ते चासन् वंशवदाः शंवरस्यास्य ॥ ११ ॥
 निर्हस्यशंवरं प्रागतिथिगवायाददात्पुत्रीं मुख्याम् ।
 नवनवतिं तु पुरस्ताः सर्वा विध्वंसयामास ॥ १२ ॥
 मध्ये मध्ये श्रान्तः स्थगितः समरे बभूव यद्दीन्द्रः ।
 तर्हि भरद्वाजः सहकाले तत्रार्पयत्सोमम् ॥ १३ ॥
 “यस्यत्यच्छम्बरं मदे दिवोदासाय रन्ध्रयः ।
 अयं स सोमः इन्द्र ते सुतः पिव ॥” (६ । ४३ । १)
 “यात्सानो सानुमारुहद् भूर्य्यस्पष्टकर्त्तुम् ।
 तदिन्द्रो अर्थं चेतति यूथेन वृष्णि रेजति (१ । १० । ३) मधुच्छन्दाः ।

शंवरपुरी विभेदनकर्मणि राजा तु यो नियुक्तोऽभूत् ।
 त्रसदस्युन्तं दासैः प्रहस्यमानं ररक्तुर्दस्यौ ॥ १४ ॥
 'वर्ची' शंवरसेनापतिसुरस्तस्य वीरान् स ।
 इन्द्रो विष्णुसहायः शतं सहस्रं न्यवधीत् ॥ १५ ॥
 'सखे विष्णो वितरं विक्रमत्व द्यौर्देहि लोकं वज्राय विष्कभे ।
 हनाव वृत्रं रिणचाव सिन्धूनिन्द्रस्य यन्तु प्रसवे विलघ्नः ॥' (६ । १०० । १२)
 शंवरहत्ये नवति नव च पुरीरामुरोत्तु यद् व्यधमत् ।
 यद्वा शतं सहस्रं वीरान् भूमौ न्यपातयत्ताकम् ॥ १६ ॥
 पर्वतभेदाच्चक्रे मार्गं सेनाभिधानाय ।
 कतिपयपर्वतपद्मानशातयत् सत्तसिन्धुषु यन् ॥ १७ ॥
 स्रोतांसि दासरुद्धान्यचारयत्सागरं यावन् ।
 महदिदमैन्दं वीर्यं प्रभाव उग्रोऽक्तं कर्म ॥ १८ ॥
 "पुरां भिन्दुयुवाकविरमितौजा अजायत ।
 इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुत ॥" जेता मधुच्छन्दमः (१ । ११ । ५)
 इन्द्रो मानुष आसीदमानुषं कर्म यच्चक्रे ।
 तत्सर्वं व्याचष्टे गुत्समदो वज्रिणं स्तुत्वा ॥ १९ ॥
 अहिशंवरयोर्युद्धे पर्वतपद्मावभेदनादिन्द्र ।
 लेभे गोत्रभिदाख्यां पुरन्दराख्या तु पुरशतोद्भेदान् ॥ २० ॥
 यच्छंवरसमकालो राजाऽऽसीद् भारते त्रिविशमः ।
 तदतो दस्युनिग्रहात्प्रागपि सभ्यस्थितिं विजानेऽत्र ॥ २१ ॥

४ — कृष्णासुरत्वगुत्कर्तनम् ।

अंशुमती तु नदी या तस्यास्तोरऽसुरन्तु कृष्णान्य ।
 प्रयुतानुचरोपेतस्तत्प्रान्ते नृन् प्रपीडयन्मनीन् ॥ १ ॥
 पश्चिमतो दक्षिणतश्चोत्तरगतं दृश्यतिन्यस्मिन् ।
 इन्द्रः पूर्वत इत्वा मध्ये सन्तं तमात्रामन् ॥ २ ॥
 सर्वाजयत्तामाभिमानेन दासमुत्तं जानन्न मर्मन्तं पुरुषम्
 अभ्यायान्तं वीरमिन्द्रं प्रशंसन् हान्ये कृष्णं कौतुहलान् ॥ ३ ॥

स्तुतिमुखनिन्दां कुर्वन् राज्ञः पत्युः स्फुटं ब्रुवन् दोषान् ।

सन्धिं चेच्छन् रक्षां चार्थयते योद्धुमाह्वयति ॥ ४ ॥

१० । ४२ “अस्तेव सुप्रतरं लायमस्यन्भूपन्निव प्रभरास्तोममस्मै ।

वाचा विप्रास्तरत वाचमर्या निरामयजरितः सोम इन्द्रम् ॥ १ ॥

दोहेन गामुप शिक्षां सखायं प्रबोधय जरितर्जारमिन्द्रम् ।

कोशं न पूर्णं वसुनान्युष्टमाच्यावय मघदेवाय शूरम् ॥ २ ॥

किमङ्गत्वा मघवन्भोजमाहुः शिशीहि माशिशयं त्वाऽशृणोमि ।

अप्लस्वती मम धीरस्तु शक्रवसुविदं भगमिन्द्रो भरा नः ॥ ३ ॥

त्वां जना मम सत्येष्विन्द्र सन्तस्थाना विह्वयन्ते समीके ।

अत्रायुजं कृणुते यो हविष्मन्नासुन्वता सख्यं वष्टिशूरः ॥ ४ ॥

धनं न त्यन्दं बहुलं यो अस्मै तीव्रान्तसोमोऽआसुनोति-प्रयस्वान् ।

तस्मै शत्रून्सुतकान्प्रातरहो निस्वष्ट्रान्युवति हन्ति वृत्रम् ॥ ५ ॥

यस्मिन्वयं दधिमा शंसमिन्द्रे यः शिश्राय मघवा काममस्मै ।

आराक्षित्सन्भयतामस्य शत्रून्यस्मै द्युम्ना जन्या तमन्ताम् ॥ ६ ॥

आराच्छत्रुमुपवाधस्व दूरमुग्रो यः शम्भः पुरुहूत तेन ।

अस्मे घेहि यवमद्गोमदिन्द्र कृधी धियं जरित्रे वाजरत्नाम् ॥ ७ ॥

प्रयमन्तवृषसवासो अगमन्तीत्राः सोमा बहुलान्तास इन्द्रम् ।

नाह दामानं मघवानियं सन्नि सुन्वते वहति भूरिवामम् ॥ ८ ॥

उत प्रहामति दीव्या जयाति कृतं यच्छ्वक्नी विचिनोति काले ।

यो देवकामो न धना रुणद्धि समित्तं राया सृजति भवधावान् ॥ ९ ॥

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन जुषं पुरुहूत विश्वाम् ।

वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेनाजयेम् ॥ १० ॥

बृहस्पतिर्नः परिपातु पश्चादुतोत्तरस्मादवरादघावोः ।

इन्द्रः पुरस्तादुत मघ्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥ ११ ॥ (१०७ ४२)

१० । ४३ “अच्छा म इन्द्रं मतयः स्वर्धिदः सध्रीचीर्विश्वा उशतीरनूपत ।

परिष्वजन्ते जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युः मघवानमृतये ॥ १ ॥

न वा त्वद्विगपवेति मे मनस्त्वे इत्कोमं पुरुहूत शिश्रय ।

राजेव दस्मा निषद्वोऽधिबर्हिष्यस्मिन्सु सोमेऽन्नपानमस्तुते ॥ २ ॥

विप्लवदिन्द्रो अमतेरुतलुघ. स इद्रापो मघवा वश ईशते ।
 तत्पेदिमे प्रवणे सप्तसिन्धवो वयो वर्धन्ति वृषभस्य शुम्भिण ॥ ३ ॥
 वयो न वृक्षं सुपलाशमासदन्त्सोमास इन्द्रं मन्दिरश्च मृपद ।
 प्रैषामनीकं शवसादविद्युतद्विद्वत्स्वर्मनवे ज्योतिरार्यम् ॥ ४ ॥
 कृतं न श्वघ्नी विचिनोति देवने संवगं यन्मघवा सूर्यं जयत् ।
 न तत्ते अन्यो, अनुवीर्यं शक्रपुत्राणो मघवन्नोत नूतन ॥ ५ ॥
 विशं विशं मघवा पर्यशायत जनानां धेना अवच कशद्वृषा ।
 यस्याह शक्रः सवनेषु रण्यति स तीव्रं सोमं. सहते घृतन्यत ॥ ६ ॥
 आपो न सिन्धुमभियत्समक्षरन्त्सोमास इन्द्रं कुन्त्या इव हृदम् ।
 वर्धन्ति विप्रा महो अस्य सादने यवं न वृष्टिर्दिव्येन दानुना ॥ ७ ॥
 वृषा न क्रद्धः पतयद्रजः स्वा यो अर्यपत्नोरकृणोदिमा अघ. ।
 स सुन्वते मघवा जोरदानवेऽविन्दञ्ज्योतिर्मनवे हविष्मते ॥ ८ ॥
 उज्जायतां परशुज्योतिषा सह भूया ऋतस्य सुदुचा पुराणवत ।
 विरोचता मरुवो भानुना शुचिः स्वर्णशुक्रं शुशुचीत नत्पति ॥ ९ ॥
 गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन लुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
 वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेनाजयेम ॥ १० ॥
 बृहस्पतिर्नः परिपातु पश्चादुतोत्तरस्मादधराधायो ।
 इन्द्र पुरस्तादुत मध्यतो न सत्वा सविभ्यो वरिध वृणोतु ॥ ११ ॥
 १० । ४४ “आयात्विन्द्र. स्वपतिर्मदाय यो धर्मणा नृनुजानन्तु विमान ।
 प्रत्वक्षाणो अतिविश्यासहांस्यपारेण महता वृष्येन ॥ १ ॥
 सुप्रामा रथः सुयमा हरीते मिम्यक्ष वज्रो नृपते गभन्नौ ।
 शीभं राजन्त्सुपथा याह्यर्वाह वर्धाम ते पपुषो वृष्यानि ॥ २ ॥
 एन्द्रवाहो नृपति वज्रवाहुमुग्रमुप्रासस्तविषान् यन्म ।
 प्रत्वक्षसं वृषभं सत्यशुध्म मे मामत्रा सधमादो वरन्तु ॥ ३ ॥
 एवापति द्रोणसाचं सचेतसमृजं स्वम्भं अरुणं य उराग्ने ।
 ओजः कृष्व सङ्गभायत्वे अप्यसो यथा के निषान्निनो गे ॥ ४ ॥
 गमन्नस्मे वसूत्या हि शसिपं न्वाशिपं भरमावाहि मेग्नि ।
 त्वमीशिषं सारिमन्ना सत्सि वहिष्यनाश्रया तव पात्रेति धर्मः ॥ ५ ॥

पृथक् प्रायन् प्रथमा देवहूतयोऽकृण्वत श्रवस्यानि दुष्टरा ।
 न ये शेकुर्नजियां नावसाहमीर्मवते न्यविशन्त-केपयः ॥ ६ ॥
 एवैवापागपरे सन्तु दूह्योऽश्वा येषां दुर्युज आयुयुजो ।
 इत्था ये प्रागुपरे सन्ति दावने पुरुणि यत्र वयुनानि भोजना-॥ ७ ॥
 गिरीरआ न्रेजमानो अधारयधौः क्रन्दन्तरिक्षाणि कोपयत् ।
 समीचिनेधिषणो विष्कभायति वृष्णः पीत्वामद उक्थानि शंसति ॥ ८ ॥
 इमं विभर्मि सुकृतं ते अङ्कुशं येना रुजासि, मघवञ्छफारुजः ।
 अस्मिन्सुते सवने अस्त्वोक्यं सुत इष्टौ मघवन्नोध्या भगः ॥ ९ ॥
 गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन ह्यधं पुरुहूत-विश्वाम् ॥ १० ॥
 वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥ १० ॥
 बृहस्पतिर्नः परिपातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादधायोः ।
 इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥ ११ ॥

५—बङ्गृदादि दस्युग्रामाणां निर्मूलनम् ।

पौरुषसस्यायोः शत्रुं वेशं तु नम्रतामनयत् ।
 बङ्गृन्निभरन्धयत् तं यः सव्यायार्हयत्पूर्वम् ॥ १ ॥
 स्मदिभं तुग्रं कुत्सद्विषं श्रुतर्वद्विषं न्यहन् मृगयुम् ।
 अशमं चाबुदमुरणं वल दभीकं रुधिक्रां च ॥ २ ॥
 सुश्रवसः पुनरार्यस्यासन् विद्रोहिणो दासाः ।
 बङ्गृदकरञ्जपर्णमुख्याः क्रूराश्च निःषपिनः ॥ ३ ॥
 बङ्गृद एष ऋजिश्च द्वेषी, पर्णयकरञ्जौ तु ।
 अप्यवुदोऽतिथिगवस्यायोर्वेशः सपन्नोऽभूत् ॥ ४ ॥
 शंबरवदस्य बङ्गृदनाम्नो दस्योः शतं पुर्य्यः ।
 आसंता अपि सर्वा मरुतो विध्वंसयामासुः ॥ ५ ॥
 बङ्गृदकप्रमुखानामभिमर्दे निहता दासाः ।
 षष्टिसहस्राणीति प्रोचे सव्यखिपञ्चाशे ॥ ६ ॥ (सू० ५३)

६—शुष्णस्य निगडवन्धनम् ।

यो वा शुष्णः सर्वतः पूर्वमागतसूर्यस्थानं तेन पुत्रीं द्वयो यः ।
 धृष्टोऽवध्नात् प्रेमपाशेऽथ तस्य यातायातं भूयसा योऽत्र चक्रे ॥ १ ॥
 सर्वाशान्तेर्हेतुरासीत् स तस्माज्जीवन्तं त तर्जयामास दण्डे ।
 दाम्नावध्नावाऽऽयसेन प्रगाढं कारागारे चाऽऽयसे तं न्यगृह्णान् ॥ २ ॥

७—कुत्सकुवीयम् ।

सूर्यस्याधिष्ठाने शुष्णस्य निगडवन्धनं श्रुत्वा ।
 कुयवः सहस्रसुभटैराक्रामीच्छुष्यतुमुद्धर्तुम् ॥ १ ॥
 कुयवाक्रमणं रोद्धुं कुत्सः प्रतिचक्रमे सुभटैः ।
 कुयवप्रवलाक्रमणात् कुत्सो विजितः पराभवं चापन ॥ २ ॥
 विद्वान् प्रतूर्णिरिन्द्रः सहसाऽकस्मादुपस्थाय ।
 कुयवाक्रमणात् कुत्सं परितरेऽन्याश्च तत्रार्थान् ॥ ३ ॥
 आक्रममाणं कुयवं प्रत्याक्रम्येन्द्र एव आहत्य ।
 भूमौ निपात्य तरसा तस्य शिरश्छेदयामास ॥ ४ ॥
 उन्नताधरधराधरस्थली स्यन्दनादिव शिफाम्रचनिर्करे ।
 कृत्रिमोत्समुखसंपतत्पथः क्षीरवद्भवति शुभ्रमुज्ज्वलम् ॥ ५ ॥
 क्षीरवद्भवलधारया तथा क्रौतुकान् कुयव एव नित्यम् ।
 स्नापयत्युदकमध्यगः स्वयं स्वे स्त्रियौ जलविहाररहितं ॥ ६ ॥
 त्रैण एव कुयवः स्वभार्ययोः प्रेमपाशहृतचिन्मो हन ।
 दासराजवधजातविस्मया दस्थवो व्यपगता दतन्तः ॥ ७ ॥
 लुब्धदासकुलमाकलय्य ते योषितौ च कुयवस्य तत्सदान् ।
 स्वामिनं तमनुगन्तुमुद्यते योद्धुमेत्य निहते बभूवुः ॥ ८ ॥
 निहते तु दस्युराजे कुयवे शुष्णे च शंकरे चार्ते ।
 सर्वेऽपि कान्दिशीकाः जेषा भेजुर्दिशो दाम्ना ॥ ९ ॥

८—पञ्चाशनुमहत्त्वदस्युनिग्रहम् ।

सप्तापीथं दासराजान् हिमाद्रिद्रोणीन् दानुमरीचनिग्रहः ।
 हत्वा चेषां सैनिकानां महन्नायुषां कृतान्तयानाम् ॥ १ ॥

इन्द्रः पञ्चाशत्सहस्रारिणं तेषां नीन्वा प्राधाचायुराट् पारवश्ये ।
 सम्यक् तेषां सम्यताशिणार्थं सोऽनेनाभूदायुराजो नियुक्तः ॥ २ ॥
 इत्थं प्राप्नो निग्रहं दस्युसंघः प्रत्यष्टोपि प्राक् प्रतिष्ठानराष्ट्रे ।
 सोऽयं सम्यः शिक्षितो वीरयोद्धा प्रातिष्ठानोऽभूत्प्रसिद्धः पुरात्वे ॥ ३ ॥
 ये चेदानीं स्लेच्छवर्गे पठाना इत्याख्याता आयुराट्-शिक्षितास्ते ।
 प्रातिष्ठानाः क्षत्रियत्वे पुराऽऽसन् पञ्चान्स्लेच्छैस्लेच्छतां प्रापितास्ते ॥ ४ ॥
 पूर्वं स्लेच्छा आहुरेके 'पतान'स्यापञ्चशात्तं पठानेति शब्दम् ।
 किन्त्वेकस्यासीत्पतानत्वमिष्टं नैते सर्वे तस्य वंशे प्रसूताः ॥ ५ ॥

अपहृतराजेभ्यः कुत्सादिभ्यः पुनरिन्द्रकर्तृकं प्राग्भूद् स्वस्वविभागदानम् ।

यद्यत् क्षेत्रं यद्यथां स्रोत आसीदन्नानां वा स्तूपमांसीत्तृणानाम् ।
 द युक्तिष्टं सूर्यधामापि तत्तत् प्राग् यस्यासीत्तत् तत्तत्ससान ॥ १ ॥
 इत्थं निगृह्य दस्युनिन्द्रो राज्ञां स्वकं धनं प्राग्वत् ॥
 कुत्सादिभ्यो विभजन् व्यभजत्सूर्यं च तद्वदेवैभ्यः ॥ २ ॥
 भूमेर्जलाशयानां सूर्यस्य च दस्युभिर्गृहीतानाम् ॥
 तेभ्यो विभागदानं यद्भूद् वर्षागिरास्तदेवाहुः ॥ ३ ॥

“एतत् त्यत् त इन्द्रं वृष्ण उक्तं वार्षागिरा अभिगृणन्ति राधः ॥

ऋन्नाथः प्रष्टिभिरन्वरीपः सहदेवो भयमानः सुरार्धाः ॥

दस्युञ्जिर्म्यंश्च पुरुहूत एवैर्हत्वा पृथिवी शर्वा निवर्हीत् ॥

सनत्क्षेत्रं सखिभिः श्रित्येभिः सनत्सूर्यं सनदपः सुवज्रः ॥

समन्युमीः समदनस्य कर्ताऽस्माकेभिर्नृभिः सूर्यं सनत् ॥

अस्मिन्नहन् सप्ततिः पुरुहूतो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥

इति मधुसूदनविद्यावाचस्पतिप्रणीतस्य ब्रह्मविज्ञान-

शास्त्रसंवन्धिनो विज्ञानेतिवृत्तवाद्य-

द्वितीयपर्वणि भारतवर्षीयार्यो-

पाख्याने दस्युसंहाराख्य-

श्चतुर्थः प्रसङ्गः

संपूर्णः ॥ ४ ॥

अथेन्द्रविजयाभिनन्दनं पञ्चसुः प्रक्रमः प्रारभ्यते ।

(१)—विज्ञानशालायां भारतीयार्यैः कृतः कृतज्ञतासूचको विजयमहोत्सवः ।
सारस्वते सूर्यसदने विजयाभिनन्दनमहोत्सवः प्रमहान्यः ।

दस्यूनां निग्रहणादाय्याणां च स्वराज्यसंप्राप्तेः ॥
सुस्थेऽत्र सर्वलोके स्वर्गायिन्द्रः स गन्तुमर्च्येन्द्वन् ॥ १ ॥
आय्याणामधिवक्तुर्देवेन्द्रस्याद्य नमानम् ॥
कतुं स कुत्स ऐच्छज्जनतास्तत्राभ्यमन्त्रयन् प्रमहे ॥ २ ॥
निषधगिरिस्थस्कन्धावारे शिविरेऽभवन् महः प्रथमम् ॥
अथ तु सूर्यस्थाने सोमाभिपयोत्सवः पुनर्व्यतनोन् ॥ ३ ॥
सूर्यस्यायः सदने प्रमहो विजयाभिनन्दनीयो यः ॥
तत्रेन्द्रमस्तुवन्निति विश्वामित्रश्च वक्ति सत्यरथः ॥ ४ ॥

“युधेन्द्रो महा वरिचक्षरः देवेभ्यः सपतिर्नृपिप्राः ।
विब्रम्बन् सदने अभ्य तानि विप्रा उग्रैर्गैर्गङ्गा नृपः ॥ १ ॥ १३२७
“न्यूषु याचं प्रमहे भवानहं गिर इन्द्रावः सन्ने निगमः ।
नू चिद्वि रवः समतामियाविद्वज्जुष्टन्तिर्गिर्गोत्रेऽग्रे ॥ १ ॥
(संस्कृत १३२७-१३२८)

उपकर्तृकृतोपकृतिं कीर्तयितुं यो मोक्षाय निर्यते ॥
उत्तरमहस्तदुक्तं तत्र च पानागने गुणगगनम् ॥ ५ ॥
बहुभिः सयुङ्क्ते नृपान् कृतज्ञतां दर्शयन्महोत्सवाः
प्रमहे चक्रे हर्षान् नमिन् विजयान्वयेऽग्रे ॥ ६ ॥

वीरपानप्रमहाध्यक्षो विश्वामित्रो दस्युवधं कीर्तयन्निन्द्रमभिनन्दयामास ।

३।३२ “इन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरुणि व्रतानि देवा न भिनन्ति विश्वे ॥
दाधार यः पृथिवीं द्यामुत्तेमां जजान सूर्यमुपसं सुदंसाः ॥ ८ ॥

त्वमपो यद्ववृत्रं जघन्व्यो अत्यो इव प्रासृजः सर्तवाजौ ॥
शयानमिन्द्र चरतावधेन वज्रिवांसं परिदेवीरदेवम् ॥ ६ ॥

अहर्भाहि परिशयानमर्ण ओजायमानं तु विजात तव्यान् ॥
न ते महित्वमनुभूदधद्यौर्यदन्यया स्फिग्या क्षामवस्थाः ॥ ११ ॥

यज्ञो हित इन्द्र वर्धनोभूदुत प्रियः सुतसोमो मियेवः ।
यज्ञेन यज्ञमय यज्ञियः सन् यज्ञस्ते वज्रमहिहत्य आवत् ॥ १२ ॥

३।३४ “मखस्यते तविपस्य प्रजूतिमियमि वाचममृताय भूषन् ।
इन्द्र क्षितीनामसि मानुपीणां विशां दैवीनामुत पूर्वयावा ॥ २ ॥

महो महानि प्रनयन्त्यस्येन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरुणि ।
वृजनेन वृजिनान्स पिपेप मायाभिर्दस्यूरभिभूत्योजाः ॥ ६ ॥

सत्रासाहं वरेण्यं सहोदां ससवांसं स्वरपश्च देवीः ।
ससान यः पृथिवीं द्यामुत्तेमामिद्रं मदन्त्यनुधीरणासः ॥ ८ ॥

ससानात्याँ षत स सूर्य ससानेन्द्रः ससान पुरुभोजसं गाम् ।
हिरण्ययमुत भोगं ससान हत्वी दस्युन्प्रार्य वर्णमावत् ॥ ६ ॥

इन्द्र ओषधीरसनो दहानि वनस्पतीं रसनोदन्तरिक्षम् ।

विभेद वलं नुनुदे विवाचोऽथाभवदमिताभि क्रतूनाम् ॥ १० ॥

“सखा ह यत्र स खमिर्नवगवैरभिज्वा सत्त्वमिर्गा अनुगमन् ।

सत्यं तविन्द्रो दशभिर्दशगवैः सूर्यविवेदतमसि क्षियन्तम्” ॥ (३।३६।५)

अथ शान्तिकवीरपानानन्तरं प्रमहप्रमुखेन कुत्सेन कृतमिन्द्रविजयाभिनन्दनसूक्तम् ।

१।१०१ “प्रमन्दिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्णगर्भो निरहन्तृजिह्वना ।

अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ १ ॥

यो व्यंसं जाह्नपाणेन मन्थुना य शम्बरं यो अहन्पिप्रमव्रतम् ।
 इन्द्रो यः शुष्णमशुष न्यावृणाद् मरुत्वन्तं सत्याय हवामहे ॥ २ ॥
 यस्य द्यावा पृथिवी पौत्यं महद्यस्य व्रते वरुणो यम्य मृर्यः ।
 यत्येन्द्रस्य सिन्धवः सश्चति व्रतं मरुत्वन्तं सत्याय हवामहे ॥ ३ ॥
 यो अश्वानां यो गवां गोपतिर्वशीय आरित कर्मणि कर्मणि स्थिर ।
 वीलोश्चिदिन्द्रो यो असुवन्तो यो मरुत्वन्त सत्याय हवामहे ॥ ४ ॥
 यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिर्यो ब्रह्मणे प्रथमो ना अविन्द ।
 इन्द्रो यो दस्यूरधरो अघातिरन् मरुत्वन्त सत्याय हवामहे ॥ ५ ॥
 य सूरैर्भिर्हव्यो यश्च भीरुभिर्योधावद्भिर्हृयते यश्च जिग्युभिः ।
 इन्द्रं यं विश्वा भुवनाभिसंवधुर्भूतुयन्तं सत्याय हवामहे ॥ ६ ॥
 रुद्राणामेति प्रदिशा विचक्षणो रुद्रैर्भिर्योषा तनुते प्रयुज्यः ।
 इन्द्रं मनीषा अभ्यचति श्रुतं मरुत्वन्त सत्याय हवामहे ॥ ७ ॥
 यद्वा मरुतः परमे सधस्ये यद्वायमे वृजने मादयामे ।
 अत आयाह्यध्वरं नो अन्धात्वायः हविश्चकृमा नन्दरार ॥ ८ ॥
 त्वायेन्द्र सोम सुपुमा सुदक्ष त्वा या हविश्चकृमा नन्दरारः ।
 अथा नियुत्वः स गणो मरुद्भिरग्निमन्यते ब्रह्मिणि मादयन् ॥ ९ ॥
 मादयस्व हरिभर्ये त इन्द्र विध्यन्व शिणे विज्यन्व धेने ।
 आत्वा सुशिप्र हरियो वहन्तुशन्हव्यानि प्रति नो नुदन् ॥ १० ॥
 मरुत्स्तोत्रस्य वृजनम्य गोपा वयमिन्द्र ए ननुयाम वज्रम् ।
 तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदिनिः सिन्धु पृथिवी वनर्षी ॥ ११ ॥
 १।१०२ “इमां ते धियं प्रभरेमहो महोमस्य नोत्रे धिपणा यन् ननु” ।
 तमुत्सवे च प्रसवे च सासहिमिन्द्रदेवात् नन्दमा नन्दन् ॥ १२ ॥
 अस्य श्रवो नद्यः स स विभ्रति द्यावा दामा पृथिवी ॥ १३ ॥
 अस्मे सूर्याचन्द्रमसाभिचक्षे भन्दे कर्मिन्द्र अग्नौ विन्दुस्म ॥ १४ ॥
 तं स्मा रयं मघवन् प्रायसान ये जत्र य ते ननु नन्द नन्दन् ॥ १५ ॥
 आजान इन्द्र मनसा पुरुष्टुत त्वापन्नो यो नन्दयन् नन्दन् ॥ १६ ॥
 वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माग्मन्तुया भरे भरे ।
 अस्मभ्यमिन्द्र वरिय नुगं वृधि द्रवा ना मरुत्तुमन्तुमन् ॥ १७ ॥

नाना हि त्वा हवमाना जना इमे धनानां धर्तारवसास विपन्यवः
 अस्माकं स्मा रथमातिष्ठ सातये जैत्रं हीन्द्र निभृतं मनस्तव ॥ ६ ॥
 गोजिता बाहू अभितक्रतुः सिमः कर्मन्कर्मच्छतमूतिः खजङ्करः ।
 अकल्प इन्द्रः प्रतिमानमोजसाथा जनावि ह्वयन्ते सिषासंवः ॥ ६ ॥
 उक्ते शतान्मघवन्नुष भूयस उत्सहस्त्राद्रिरिचे कृष्टिषु श्रवः ।
 अमात्रं त्वा धिषणा तित्विपे मगधा वृत्राणि जिघ्नसे पुरन्दर ॥ ७ ॥
 त्रिविष्टिधातु प्रतिमानमोजसस्तिस्रो भूमिर्नृपते त्रीणि रोचना ।
 अतीदं विश्वं भुवनं ववक्षिथा शत्रुरिन्द्र जनुपा सनादसि ॥ ८ ॥
 त्वां देवेषु प्रथमं हवामहेत्वं बभूय पृतनासु सासहिः ।
 सेमं नः कारुमुपमन्युमुद्भिदमिन्द्रः कृणोतु प्रसवे रथं पुरः ॥ ९ ॥
 त्वं जिगेथ नधनारुरोधिथामेष्वाजा मघवन्महत्सु च ।
 त्वामुग्रमवसे सं शिशीमस्यथा न इन्द्र हवनेषु चोदय ॥ १० ॥
 विश्वाहेन्द्रो अधिवक्तानो अस्त्वपरिहृताः सनुयाम वाजम् ।
 तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः प्रार्थवी उत्तद्यौः ॥ ११ ॥
 १।१०३ “तत इन्द्रियं परमं पराचैरधारयन्त कवयः पुरेदम् ।
 तन्मेदमन्यदिव्यन्यदस्य समी पृच्यते समनेव केतुः ॥ १ ॥
 स धारयत्पृथिवीं पप्रथञ्च वज्रेण ह्रस्वो निरपः ससर्ज ।
 आहन्नहिमभिनद्रौहिणं व्यहन्त्यसं मघवा शचीभिः ॥ २ ॥
 स जातुर्भर्मा श्रह धान ओजः पुरो विभिन्नचरद्विदासीः ।
 विद्वान्वज्रिन्द्रस्यवे हेतिमत्यार्यं सहो वर्धया शुम्भमिन्द्रः ॥ ३ ॥
 तदूचुपे मानुपे मां युगानि कीर्तेन्यं मघवा नाम विभ्रत् ।
 उप प्रयन्दस्युहयाय वज्री यद्वसूनुः श्रवसे नाम दधे ॥ ४ ॥
 तदस्येदं पश्यता भूरिपुष्टं श्रदिन्द्रस्य धत्तन वीर्याय ।
 स गा अविन्दत्सो अविन्दद्श्वात्स ओषधीः सो अपः स वनानि ॥ ५ ॥
 भूरिकर्मणे वृषभाय वृष्णे सत्यशुष्माय सुनवाम् सोमम् ।
 य आहत्या परिपन्थीव शूरोऽयजन्वनो विभजन्नेति वेद ॥ ६ ॥
 तदिन्द्रमेव वीर्यं चकर्थ यत्स सन्तं वज्रेणावोधयोऽहिम् ।
 अनुत्वा पत्नीर्हृषितं वयश्च विश्वेदेवासो अमदन्नन्तु त्वा ॥ ७ ॥

शुष्पं पिप्रुं कृयवं वृत्रमिन्द्र यदावधीर्विपुरः शंवरत्य ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उतद्यौ ॥ ८ ॥

१११०४ “योनिए इन्द्र निषदे अकारितमा निषीद स्वानो नार्या ।

विमुच्या वयोऽवसाया श्वान्दोषावस्तोर्वहीयसः प्रयित्वे ॥ १ ॥

ओ त्वे नर इन्द्रमूतये गुर्नू चित्तान्सद्यो अध्वनो जगम्यान् ।

देवासो मन्युं दासस्यश्चमन्ते न आवत्तन्मुविताय वर्णम् ॥ २ ॥

अवत्मना भरते केतवेदा अवत्मना भरते फेनमुद्रन् ।

क्षीरेण स्नातः कृयवस्य योषे हते ते स्यातां प्रवणे शिफाया ॥ ३ ॥

युयोष नाभिरुपरस्यायोः प्रपूर्वाभिस्तरते राष्टि शूः ।

अंजसी कुलिशी वीरपत्नी पयो हिन्वाना उदर्भरन्ते ॥ ४ ॥

प्रतियत्स्या नीथादर्शिं दस्योरोको नान्द्वासादनं जानती गान् ।

अधस्मानो मधवञ्चकृतादिन्मा नो मधेव निष्पपी परादाः ॥ ५ ॥

स त्वं न इन्द्र सूर्य्यं सो अप्सवनागास्त्व आ भज जीवशंने ।

मान्तरां भुजमा रीरपो नः श्रद्धित ते महत् इन्द्रियाय ॥ ६ ॥

अधा मन्ये श्रुते अस्मा अधायि वृषा चोदस्व महत धनाय ।।

मानो अकृते पुरुहूत योनाविन्द्र लुध्यद्भ्यो वयः शान्तिं दा ॥ ७ ॥

मानो वधीरिन्द्रमा परादा मान प्रिया भोजनानि प्रनाये ।

आण्डा मानो मधवञ्चक निर्मेन्मा न पात्रा भेत्सजानुयान् ॥ ८ ॥

अर्वाहेहि सोमकाम त्वाहुरय सुतन्तस्य विद्या नदाय ।

उरुञ्चवा जठर आवृण्व पितेयन शृणुहि दृशमान ॥ ९ ॥

इन्द्रविजयाभिनन्दनमूक्रे वार्यागिराणां राजां इन्द्रमन्त्रागिराम् ।

अत्राशवाः पञ्च वार्यागिराणां राजानां प्राणिन्द्रो नृपतिः ।

दस्युध्वंसेऽत्युधमैत्रं चरिन् सन्त्युपत्यः सत्यारण्यं नृपतिः ॥ १ ॥

पञ्चदशक्षुं न्यात्यन् संस्तपिरं त्वं दृतागिर पुनः ।

चतस्रवन्ते कौत्सात् संस्तपिषास् नृपतिः ॥ २ ॥

संरक्षकतामेते याचन्ते तेन वरदानम् ।

अभ्युपगम्यात्मानं न्यवेदयन्ति पारुष्येऽपि ॥ ३ ॥

वार्षागिराणामात्मसमर्पणम् ।

इन्द्रविजयाभिनन्दने वार्षागिराणां कुत्ससहयोगेनात्मसमर्पणं सूक्तम् ।

१।१०० “स यो वृषा वृष्ण्येभिः समोका महो दिवः पृथिव्याश्च सन्नाट् ।

सतीनसत्वा हव्यो भरेषु मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १ ॥

यस्यानाप्तः सूर्यस्येव यामो भरे भरे वृत्रहा शुष्मो अस्ति ।

वृषन्तमः सखिभिः स्वेभिरेवैर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ २ ॥

दिवो न यस्य रेतसोदुधाना पन्थासो यन्ति शवसापरीताः ।

तरद्वेष्टाः सासहिः पौत्येभिर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ३ ॥

सो अङ्गिरोभिरङ्गिरस्तमो भूदृषा वृषभिः सखिभिः सखा सन् ।

ऋग्भिर्ऋग्मी गातुभिर्ज्येष्ठो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ४ ॥

स सूनिभिर्न रुद्रेभिर्ऋग्भा नृपाहो सासहो अमित्रान् ।

स नीलेभिः श्रवस्यानि तूधन्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ५ ॥

स मन्युमीः समदनस्य कर्तास्माकेभिर्नृभिः सूर्य सनत् ।

अस्मिन्नहन्तसत्पतिः पुरुहूतो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ६ ॥

तमूतयो रणयव्वूरसातौ तं हेमस्य क्षितयः कृण्वत त्राम् ।

स विश्वस्य करुणस्येश एको मरुत्वान्नो भवित्विन्द्र ऊती ॥ ७ ॥

तमप्सन्त शवस उत्सवेषु नरो नरमवसे तं धनाय ।

सो अन्वे चित्तमसि व्योतिर्विदन्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ८ ॥

स सव्येन यमति ब्राधतश्चित्स दक्षिणे संगृभीता कृतानि ।

स कीरिणा चित्सनिता धनानि मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ९ ॥

स ग्रामेभिः सनिता स रथेभिर्विदे विश्वाभिः कृष्टिभिर्नृच ॥

स पौत्येभिरभिभूरशस्तीर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १० ॥

स जामिभिर्यत्नमजातिमीळहेऽजामिभिर्वा पुरुहूत एवैः ॥

अपां तोकस्य तनयस्य जेपे मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ११ ॥

स वज्रभृदस्युहा भीम उग्रः सहस्रचेताः शतनीथ ऋग्भा ॥

चम्रीषो न शवसा पाञ्चजन्यो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १२ ॥

तस्य वज्रः क्रन्दतिस्मत्स्वर्षा दिवो न त्वेषो रोवथः शिमीवान् ॥

तं सचन्ते सनयस्तं धनानि मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १३ ॥

यस्याजस्रं शवसा मानमुक्थं परिमुजद्रोदसी विरवतः सीम् ॥
 स परिषत्कतुभिर्मन्दसानो महत्वात्रो भवत्विन्द्र उती ॥ १४ ॥
 न यस्य देवा देवता न मर्ता आपट्चन शवसो अन्तमापुः ॥
 स परिका त्वक्षसाक्षमो दिवश्च मरुत्वात्रो भवत्विन्द्र उती ॥ १५ ॥
 रोहिच्छया वा सुमदंशुर्ललामीर्द्युत्ताराय ऋज्रश्वस्य ॥
 वृषण्वन्तं विभ्रती धूर्धुरथं मन्त्राचिकेतनाहुषीषु विह्वु ॥ १६ ॥
 एतस्यत्त इन्द्र वृष्ण उक्थं वार्षागिरा अभिगृणन्ति राव ॥
 ऋज्राश्वः प्रष्टिभिरन्वरीषः सहदेवोभयमानः सुराधाः ॥ १७ ॥
 दस्यूञ्छिम्यूंश्च पुरुङ्गत एवेर्हत्वा प्रथिव्यां शयां निवर्तन्ति ।
 सनत्सेत्रं सखिभिः शिल्पेभिः सनत्मूर्यं सनद्यं तुपन ॥ १८ ॥
 विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्त्वपरिहृता ननुयाम वाजम् ।
 तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदिति मिन्धुः प्रथिवी द्यौ रौ ॥ १९ ॥

इतः परं कुत्सवदन्येषामप्यार्याणां यत्र प्रमहे धन्यवादरूपाः प्रवराः ।

कुत्स वदन्येषामप्यार्याणामूतिरिन्द्रेण ।
 काले काले बहुधा कृतेति तेऽप्यागमन् प्रमहे ॥ १ ॥
 किंस्वेषामखिलानां ये यावन्तः प्रतिष्ठिता प्रवराः ।
 आसन् त एव सूक्तान्यवेदयितुं नियोजिता अभवन् ॥ २ ॥
 तत्र हिरण्यस्तूपः सव्यभरद्वाजवामदेवाश्च ।
 अपि दुर्मित्रः कौत्सो बृहदुक्थो वामदेव्यश्च ॥ ३ ॥
 वत्सश्रुष्टिगुमेध्यागर्गसुहोत्रौ च शुनहोत्र ।
 गौतमनोधः कक्षीवन्तस्तद्वन् परुद्धेप ॥ ४ ॥
 गृत्समदोऽद्यावत्सुर्वभ्रुर्गातुस्तथाऽगम्यः ।
 विश्वामित्रो विमद संवरणो वा मज्जपते एव ॥ ५ ॥
 अपि च वसिष्ठो वसुकृद् बाह्वृको गौरिकेति च ।
 अष्टादंष्ट्रोऽन्वोऽन्वः शतपभेदन र्भौ तु व मर्षौ ॥ ६ ॥
 वैखानसस्तु वभ्रो मरुन् नितरसीर्गुलानो वा ।
 एषां पञ्चादिन्द्र किञ्चिदुपाग्रे धामदेवता ॥ ७ ॥

इत्थं तत्र सभायामार्यनृपाः सप्तगोत्रजा ऋषयः ।

असुरा मरुतो देवाः सर्वे भक्त्या सभाजयामासुः ॥ ८ ॥

एते तत्र तदानीं घटान् सहस्राणि सोमानाम् ।

गाश्चोपायनविधया सर्वस्वं च न्यवेदयन्तास्मै ॥ ९ ॥

विनिमयनव्यवहारोऽस्त्यर्थं राजशासनात् सिद्धम् ।

अद्य यथा पश्यामस्ताम्रपणं रौप्यकं स्वर्णम् ॥ १० ॥

एवं देवयुगे प्राग् 'गो' नाम विनिमयद्रव्यम् ।

गौर्वा तच्च हिरण्यं चाऽन्यद् वेत्येवमनुभाव्यम् ॥ ११ ॥

अद्यैव पूर्वकाले क्रयविक्रयवत् प्रभूपहारेऽपि ।

विनिमयनीयद्रव्याण्यवेद्यन्ते स्म ता गावः ॥ १२ ॥

कवयोऽमी खलु तामै चक्रुर्विजयाभिनन्दनं हर्षात् ।

प्रत्यक्षं च परोक्षं च नृगुणकीर्तनं तस्य ॥ १३ ॥

यद्वत् कुत्सस्तद्वदन्त्येऽपि भूपाः काले काले स्वस्वरक्षोपलक्षे ।

आहूयेन्द्रं सोमयज्ञोत्सवेऽस्मै सोमं सुत्वाऽवेदयन् भक्तिसूक्तम् ॥ १४ ॥

यद्वत् कुत्सोऽयं स्वसूक्ते परेषां राजामिन्द्राद्रक्षणं विब्रवीति ।

अन्येष्वेवं कुत्सरक्षां त्रुवाणा दस्योर्युद्धं चक्षते स्वस्वकोष्ये ॥ १५ ॥

यद्यत्पूर्वं यच्च दस्युप्रवाधे कर्मर्याणामिन्द्र उक्त्या अकार्षीत् ।

सर्वं तत्तद्वर्णयामासुरार्याः स्मारं स्मारं सव्यमुख्याः स्वसूक्ते ॥ १६ ॥

बार्हस्पत्या गाव आसन् कदाचिद्दुष्टैर्द्विचोरैर्दस्युर्भिलुं णिठताः प्राक् ।

तच्च अत्वा देवराजः सवीरो दस्यून् हत्वा प्रापयद् ब्रह्मणे तां ॥ १७ ॥

एवं ये ये चोपकाराः कृता प्राग् देवेन्द्रेणानेन तानत्र सर्वान् ।

स्मारं स्मारं कीर्तयन्त स्वकाव्यैरार्याः प्रोक्षुः स्वं कृतज्ञत्वमस्मै ॥ १८ ॥

दस्योर्युद्धादल्पकालेन पूर्वं भूयोऽप्यासंश्चोरिता गाव एतैः ॥

तासां भूयान्वेपितानामलामात्केचिद्देवा विह्वलास्तत्र चोसन् ॥ १९ ॥

दस्युग्रामध्वंसनादिन्द्रवीर्यं प्राशस्त्यार्थेऽत्युत्सवेऽस्मिन् प्रवृत्ते ।

गोरक्षार्थं दैवतैः प्रार्थनापि स्तुत्यैवोपस्थापिताऽस्मै तदानीम् ॥ २० ॥

तेषां काव्ये दस्युद्वप्रसङ्गो दृष्टो यावानुल्वणो यत्र वाक्ये ।

तावद्वाक्यं दर्शयते संगृहीतं सर्वं सूक्तं नावतैवोपलक्ष्यम् ॥ २१ ॥

तत्र तावद्विरण्यस्तूपो नामाङ्गिरसो ब्रह्मपिरार्थपञ्चाय देवेन्द्रायामिनन्दयितुं पतगमान् ।

आङ्गिरसोऽयं विद्याविशेषतः प्रीत्यन्निन्दम् ।

स हिरण्यस्तूपत्वं लेभे चेन्द्रेण शाश्वतं सरयम् ॥ १ ॥

महती पुरा प्रतिष्ठाऽसीदिन्द्रेण सरयताप्तिर्वा ।

तद्ध्या हेमनः स्तोमं स हिरण्यस्तूप इत्यभून् प्रथित ॥ २ ॥

स इदानीमिह कुत्सप्रमहे संमन्त्रितः समागम्य ।

अनुकुत्सं भगवन्तं देवेन्द्रं तमभिनन्दयामास ॥ ३ ॥

हिरण्यस्तूपः ।

१ । ३२ “इन्द्रस्य तु वीर्याणि प्रबोचं यानि चकार प्रथमानि यस्तो ।

अहन्नहिमन्वपस्ततर्द्धं प्रवक्षणा अभिनत्पर्वतानाम् ॥ १ ॥

अहन्नहि पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टाम्ने वज्रं स्वयं तनज ।

वाभ्रा इव घेनवः स्यन्दमाना अजं मनुजगजगस्तार ॥ २ ॥

वृषायमाणोऽवृणीत स्तोमं त्रिकटुकैष्यपिदत्तुतम्य ।

आं सायकं मघवादत्त वज्रमहन्नेनं प्रथमजा महीनाम् ॥ ३ ॥

यदिन्द्राहन्प्रथमजा महीनामान्मायिनाममिना प्रोनमान ।

आत्सूर्यं जनयन् द्यामुपासं ताद्रीक्षा मघं न त्स्निगिन्ति ॥ ४ ॥

अहन्वृत्र वृत्रतरं व्यंसमिन्द्रो वज्रेण मघना वयेन ।

स्कन्धांसीव कुलिगेनाविवृक्णादि मघं ३ ॥ ५ ॥

अयोद्धेव दुर्मद आदि जुम्हे महावीर तु दिवाऽमर्तमम् ।

नातारोदस्य समृतिं वधाना नंस्ताना निषि इन्द्राय ॥ ६ ॥

अपादहस्तो अमृतन्यदिन्द्रमान्य वज्रमग्निं भानौ जगात् ।

वृष्णो वधो प्रतिमानं बुभूषन्पुच्छं पुच्छो वज्रमग्निम् ॥ ७ ॥

नदं न भिन्नमनुपाशयानं मनोन्मत्ता पर्वतस्यधरा ।

याश्चिद्भूतो महिना पर्वतिपुत्रानाना ॥ ८ ॥

नीत्वा वया अभवद्बृहस्पतिरेन्द्रो वज्रं ॥ ९ ॥

वत्तरा मृगधरं पुत्रं आनीरातुं तदेतन्मघं न ॥ १० ॥

अतिष्ठन्ती नाम निवेशनानां काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम् ।
 वृत्रस्य नरायं विचरन्त्यापो दीर्घं तम आशयदिन्द्रशत्रुः ॥ १० ॥
 दासपत्नीरहि गोपा अतिष्ठन्निरुद्धा आपः पणिनेव गावः ।
 अपां बिलमपिहितं वदासीवृत्रं जघन्वा अप तद्ववार ॥ ११ ॥
 अश्व्यो वारो अभवस्तदिन्द्रसूके यत्त्वा प्रत्यहन् देव एकः ।
 अजयो गा अजयः शूरसोममवासृजः मर्तवे सप्तसिन्धून् ॥ १२ ॥
 नास्मै विद्युन्न तन्यतुः सिपेध न यां मिहमकिरद्धादुनि च ।
 इन्द्रश्च यद्ययुधाते अहिश्चोतापरीभ्यो मघवा विजिग्ये ॥ १३ ॥
 अहेर्यातारं कमपश्य इन्द्र हृदि यत्ते जघ्नुषो भीरगच्छत् ।
 नव च यन्नवति च स्रवन्तीः श्येनो न भीतो अतरो रजांसि ॥ १४ ॥
 इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा शंसस्य च शृङ्गिणो वज्रबाहुः ।
 सेदु राजा क्षयति चर्पणीनामरात्रेभिः परि ता वभूव ॥ १५ ॥

१ । ३३ 'एतायामोपगव्यन्त इन्द्रमस्माकं सुप्रमतिं वावृधाति ।
 अनामृणः कुविदादस्य रायो गवां केत परमावर्जते नः ॥ १ ॥
 उपेदहं धनदामप्रतीतं जुष्टां न श्येनो वसतिं पतामि ।
 इन्द्रं नमस्यन्नपमेभिरर्केभ्यः स्तोतृभ्यो हव्यो अस्ति यामन् ॥ २ ॥
 नि सर्वसेन इषुधीं रसक्त समर्यो गा अजति यस्य वष्टि ।
 चोष्कृयमाण इन्द्र भूरि वामं मा पणिभूर् रस्मदधिप्रवृद्ध ॥ ३ ॥
 वधीर्हि दस्युं धनिनं धनेनैकश्चरन्नपशाकेभिरिन्द्र ।
 धनोरधिविपुणक्ते व्यायन्नयज्वानः सनकाः प्रेतिमीयुः ॥ ४ ॥
 पराचिच्छीर्षा ववृजुस्त इन्द्रायज्वानो यज्वभिः स्पर्धमानाः ।
 प्र यद्विवो हरिवः स्थातरुग्र्यं निरव्रतो अधमो रोदस्योः ॥ ५ ॥
 अयुयुत्सन्नवद्यस्य सेनामयातयन्त क्षितयो नवग्वाः ।
 वृषायुधो न वध्रयो निरष्टाः प्रवद्विरिन्द्राच्चिन्तयन्त आयन् ॥ ६ ॥
 त्वमेतान्नुदतो जज्ञतश्चायोधमो रजस इन्द्र पारे ।
 अवाद्दहो दिव आ दस्युमुच्चा प्रसुन्वतः स्तुवतः शंसमोवः ॥ ७ ॥
 चक्राणासः परीणहं पृथिव्या हिरण्येन मणिना शुम्भमानाः ।
 न हिन्वानासस्तितिरुस्त इन्द्रं परिस्पशो अदधात्सूर्येण ॥ ८ ॥

परि यदिन्द्र रोदसी उभे अनुभोजीर्गहिना विधत् सौम ।
 अमन्यमानो अभिमन्यमानैर्निर्गहाभिरयमो इन्दुमिन्द्र ॥ ६ ॥
 न ये दिवः पृथिव्या अन्तर्मापुर्न मावाभिर्धनदां पर्यभूचन ।
 युजं वज्रं वृषभश्चक्र इन्द्रो निर्व्योतिषा तमसो गा प्रदुक्षन् ॥ १० ॥
 अनुस्वधामक्षरत्रापो अस्यावर्धतमध्या आनाय्यानाम् ।
 सध्रीचीनेन मनसा तमिन्द्र ओजिष्टेन हन्मना हन्मिद्वन् ॥ ११ ॥
 न्याविध्यदिलोविशस्य हलहा वित्तङ्गिणमभिनन्दुषणमिन्द्रः ।
 यावत्तरो मघवन्यावदोन्नो वज्रेण शत्रुमवधीः पृतन्युष ॥ १२ ॥
 अ भेसिध्यो अजिगादस्य शत्रून्वितिग्मेन वृषभेणापुरोऽभेत् ।
 सं वज्रेणासृजद्वत्रमिन्द्रः प्रस्थां मतिमतिरच्छाशशन ॥ १३ ॥
 आवः कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाक्रन्प्रायो युध्यन्तं वृषभं दृग्धम् ।
 शफच्युतो रेणुर्नक्षत चासुच्छर्ध्वत्रेयो नृपाणाय तथौ ॥ १४ ॥
 आवः शमं वृषभं तुन्यासु क्षेत्रजेपे मघवद्विद्यस्य गाम् ।
 ल्योक् चिद्वत्र तस्थिवांसो अकञ्चद्वयतामसरा वेदनाम् ॥ १५ ॥

सव्यः ४ ।

सव्यो नामाङ्गिरसो राजर्षिर्गर्ग्योपक्राणिणे स्वराजे कृतज्ञताश्रमादेशितुः ॥ १६ ॥

पुत्रो मे स्यादिन्द्रतुल्यो मनीषीन्वेवसानोऽनन्तरणेऽदिरा ॥ १७ ॥
 तस्मात्पुत्रः सोऽयमिन्द्रावतार सव्यो उदो न न उदो मन्त्रिणि ॥ १८ ॥
 शृग्वेदाद्ये मण्डले काममृक्तादिन्द्र नद्य नामान्तामन्त्रिणि ॥ १९ ॥
 तेभ्यो दासायोधनं रूपयन्ती मन्दर्पन्ते गन्धिद्वयं त्वा ॥ २० ॥

१५१ “त्वमपामपिधानावृणोरपाधारय पर्वते दानुमन्त्र ॥

वृत्रं यदिन्द्र शवसावधीरतिगादिन्मयं विन्दारो मे मे ॥ १ ॥
 त्वं मायाभिरप मायिनोऽयम दयधाभिर्धे मन्त्रिणि ॥ २ ॥
 त्वं पिप्रोक्त मणः प्रारुजः पुरः प्र अजिगरान् दानुमन्त्रिणि ॥ ३ ॥
 त्वं कुत्सं शुष्णहृत्पेष्ठाविधारन्वयोऽनिर्दिग्गय मन्त्रिणि ॥ ४ ॥
 महान्तं चिद्वुष्टं निव्रमी पदा मन्त्रिणि मन्त्रिणि ॥ ५ ॥

विजानीह्यार्यान्ते च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान् ।
 शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत्ता ते सधमादेषु चाकन ॥ ८ ॥
 अनुव्रताय रन्धयन्नपव्रताना भूमिरिन्द्रः शनथयन्नो भुवः ।
 वृद्धस्य चिद्वर्धतो द्यामिनक्षतः स्तवानो वज्रो विजघान संदिहः ॥ ९ ॥
 तक्षद्यत्त उशाना सहसासहो विरोदसी मध्मना वा धत्ते शवः ।
 आत्वा वातस्य नृमणो मनोयुज आपूर्यमाणमवहन्नभिश्रवः ॥ १० ॥
 मन्दिष्ट यदुशने काव्ये सचाँ इन्द्रो बड्क् बड्क् कुतराधितिष्ठति ।
 द्यो ययि निरपः स्रोतसा स्रजद्विशुष्णस्य दंहिता ऐरयत्पुरः ॥ ११ ॥
 इदं नमो वृषभाय स्वराजे सत्यशुष्माय तवसेऽवाचि ।
 अस्मिन्निन्द्रवृजने सर्ववीराः स्मत्सूरिभिस्तव शर्मन्त्याम ॥ १५ ॥

१।५२ “स पर्वतो न धरुणेष्वच्युतः सहस्रमूर्तविपीषु वावृधे ।
 इन्द्रो यद्वन्नमवधीन्नदीवृतमुज्जन्नणींसि जहृ पाणो अन्धसा ॥ २ ॥
 जघन्वाँ उ हरिभिः संभृतक्रतविन्द्र वृत्रं मनुषे गातुयन्नप ।
 अयच्छथा बाह्वोर्वज्रमायसमधारयो दिव्या सूर्य दशे ॥ ८ ॥
 बृहत्स्वअन्द्रममवद्यदुक्ध्यमकृण्वत भियसा रोहणं दिवः ।
 यान्मानुषप्रधना इन्द्रमृतयः स्वनृ पाचो मरुतोऽमदन्ननु ॥ ९ ॥
 द्यौरिचिदस्यामवाँ अहेः स्वनादयो यवीद्वियसा वज्र इन्द्र ते ।
 वृत्रस्य यद्वद्वधानस्य रोदसी मदे सुतस्य शवसाभिनच्छिरः” ॥ १० ॥

१।५३ “न्यूषु वाच प्र महे भरामहे गिर इन्द्राय सद्ने विवस्वतः ।
 नू चिद्धि रत्नं ससत मिवाविदन्न दुष्टतिर्द्रविणोदेषु शम्यते ॥ १ ॥
 एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभिनिरुन्धानो अमति गोभिश्चिना ।
 इन्द्रेण दस्युं द्रयन्त इन्दुभिर्युतद्वेपसः समिषा रभेमहि ॥ ४ ॥
 त्वं करञ्जमुत पर्णयं वधोस्ते जिष्ठया तिथिग्वस्य वर्तनी ।
 त्वं शता बड्ग्दस्याभिनत्पुरोऽनानुदः परिपूता ऋजिश्चना ॥ ८ ॥
 त्वमेताब्जनराज्ञो द्विर्दशावन्धुना सुश्रवसोप जग्मुषः ।
 पष्टि सहस्रा नवति नव श्रुतो निचक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक् ॥ ९ ॥
 त्माविथ सुश्रवसं तवोतिभिस्तव त्रामभिरिन्द्र तूर्धयाणम् ।
 त्वमस्मै कुत्समतिथिग्वमायुं महे राज्ञे यूने अरन्धनायः ॥ १० ॥

य उद्वचीन्द्र देवगोपाः सत्वायस्ते शिवतमा अस्मान् ।

त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रनरं दधानाः ॥ १६ ॥

१।५४ "त्वं दिवो बृहत् सानु कोपयोऽव त्मना धृपता शंदरं भिनन् ।

यन्मायिनो ब्रन्दिनो मन्दिना धृपच्छितां गभम्भिनशानि पृतन्यग्नि ॥ १ ॥

नियदृणक्षि श्वसनस्य मूर्धनि शुष्णम्य चिद्ब्रन्दिनो रोन्वद्वना ।

प्राचीनेन मनसा वर्हणावता यदद्याचित्कृत्स्व कस्त्यपरि ॥ ४ ॥

त्वमाविथ नर्यं तुर्वशं यदुं त्व तुर्वीति वय्यं जतन्नो ।

त्वं रथमेतशं कृत्वये धने त्व पुरो नवति दन्भयो नव ॥ ६ ॥

अपामतिष्ठद्वरुणहरं तमोऽन्तर्ध्वं जठरेषु पथेत ।

अभीमिन्द्रो नद्यो वत्रिणा हिता विट्वा अनुष्टा प्ररौषु जिनने ॥ ६ ॥

१।५६ "स तुर्वणिर्महां अरेणु पौंस्ये गिरेर्धृष्टिर्न आजने तुजा गज ।

येन शुष्णं मायिनमायसो मदे दुद्र आभूषु रानप्रक्षिगमनि ॥ ३ ॥

१।५७ "त्वं तमिन्द्र पर्वतं महासुरुं वज्रेण वज्रिन्यर्धगधर्निद ।

अवाप्तुजो निवृता सर्तवा अप नश विन्यं दरिरे रररे नर ॥ ५ ॥

गृत्समदो दस्युवधं कीर्तयन्निन्द्रं महयति ।

२।११ 'सुजो महीरिन्द्र या अपिन्व परिष्ठिता गहिना नृः पर्वी ।

अमर्त्यं चिदासं मन्यमानमवाभि न दुर्धयन्तु गान ॥ २ ॥

शुभ्रं तु ते शुष्मं वर्धयन्त शुभ्रं वसं चातोः गान ।

शुभ्रत्त्वमिन्द्र वाद्युधानो जग्मे शानं जिह्मं नृपते गान ॥ ४ ॥

गृहा हितं गृह्यं गृह्णन्पृथगीकृतं नादिनं शिवाय ।

उतो अपो द्यां तस्तन्मन्मद्वज्रि गृह्णीयन् ॥ ४ ॥

इन्द्रो महा सिन्धुनाशयान मानयिन् द्रुममर्गन्

अरेजेतां रोदसी भिराने जनिगन्तो नृपते गान ॥ ५ ॥

अरोरवीदृष्टो अन्य वरुणोऽनातुष रम्भान् नि नृपते ।

निमायिनो दानदत्त नारा पृथग्वर्गन्तो गान ॥ ६ ॥

धिष्वा शवः शूरे येन द्रुममन्मद्वज्रि गान ॥ ७ ॥

आपवृणोर्जीतिरायं निगन्तो नृपते गान ॥ ८ ॥

सनेम ये त ऊतिभिस्तरन्तो विश्वाः स्पृध आर्थेण दस्यून् ।

अम्मभ्यं तत्त्वाष्टं विश्वरूपमरन्धयः साख्यस्य त्रिताय” ॥ १६ ॥

२ । १२ “यो हत्वाहिमरिणात्सप्तसिन्धून् यो गा उदाजदपधा वलस्य ।

यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान संवृकूसमत्सु स जनास इन्द्रः ॥ ३ ॥

येनेमा विश्वच्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं गुहाकः ।

श्वघ्नीय यो जिगोवां लक्ष्माददर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः ॥ ४ ॥

यः शश्वतो मर्हानो दधानानमन्यमानाञ्छ्रवां जघान ।

यः शर्धते नानुदाति शृध्यां यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः ॥ १० ॥

यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरघन्धविन्दत् ।

ओजायमानं यो अहिं जघान दानुं शयानं स जनास इन्द्रः ॥ ११ ॥

यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मानवासजत्सर्तवे सप्त सिन्धून् ।

यो रौहिणमस्फुरद्वज्राहुर्धामारोहन्तं स जनास इन्द्रः ॥ १२ ॥

यः शंवरं पर्य्यतरत् कसीभिर्यो चारुकास्नापिवत् सुतस्य ।

अन्तर्गिरौर्यजमानं बहुजनं यस्मिन्नामूर्च्छत् स जनास इन्द्रः ॥ १३ ॥

यः सोमकामो हर्यश्वः सूरिर्यदस्माद् रेजन्ते भुवनानि विश्वा ।

यो जघान शंवरं यश्च शुष्णं य एकवीरः स जनास इन्द्रः ॥ १४ ॥

२ । १४ “अध्वर्यवो यो अपो वज्रिवांसं वृत्रं जघानाशन्येव वृक्षम् ।

तस्मा एतं भरत तद्वशाय एष इन्द्रो अर्हति पीतिस्य ॥ २ ॥

अध्वर्यवो यो दृभीकं जघान यो गा उदाजदप हि वलं वः ।

तस्मा एतमन्तरिक्षे न वातमिन्द्रं सोमैरोर्णुत जूर्न वस्त्रैः ॥ ३ ॥

अध्वर्यवो य उरणं जघान नव चखांसं नवतिं च वाहून् ।

यो अर्बुदमव नीचा ववाधे तमिन्द्रं सोमस्य भूथे हिनोत ॥ ४ ॥

अध्वर्यवो यः स्वश्वं जघान यः शुष्णमशुषं यो व्यंसम् ।

यः पिबुं नमुचिं यो रुधिरां तस्मा इन्द्रायान्वसो जुहोत ॥ ५ ॥

अध्वर्यवो यः शतं शम्बरस्य पुरो विभेद श्मनेव पूर्वीः ।

यो वचिनः शतमिन्द्रः सहस्रामपावपद्रता सोममस्मै ॥ ६ ॥

अध्वर्यवो यः शतमा सहस्रं भूम्या उपस्थेऽवपञ्जघन्वान् ।

कुत्सस्यायोरतिथिग्वस्व वीरान्यवृणुगभरता सोममस्मै” ॥ ७ ॥

- २।१५ “प्रधान्वस्य महतो महानि सत्या सत्यस्य करणानि वोचम् ।
त्रिकटुकैष्वपि त्रस्तुतस्यास्य मदे अहिमिन्द्रो जघान ॥ १ ॥
श्वप्नेनाभ्युष्या जुमुर्नि धुनि च जघन्य दन्युं प्रदभीतिमायः ।
रन्मी चिदत्र विविदे हिरण्यं सोमन्य ता मद इन्द्रश्चकार” ॥ ६ ॥
- २।१६ “स सुन्वत इन्द्र मूर्यमा देवोरिणद् मर्त्याय स्तवान ।
आयद्रथि गुहद्वयमस्मै मरदंश नैतशो वशस्यन् ॥ ४ ॥
स रन्धयत्सदिव सारथये शुष्णमशुषं कुचं कुन्नाय ।
दिवोदासाय नवर्ति च नवेन्द्रः पुरो ज्यैरन्ध्रान्धरस्य” ॥ ६ ॥
- २।२० “सो अङ्गिरसामुचधा जुजुष्वान्द्रा तूतोदिन्द्रो गानु मिन्न ।
मुष्णन्नुषसः सूर्येण स्तवानरनम्य चिन्त्रिरनयन्व्याति ॥ ४ ॥
स ह श्रुत इन्द्रो नाम देव ऊर्ध्वो मुञ्चन्मुपे वामनम् ।
अव प्रियमर्शस्तानस्य स्नाह्वाञ्छरो मरदास्य भगवान् ॥ ६ ॥
स वृत्रहेन्द्र कृष्ण योनीः पुरन्दरो वाम रैरस्य ।
अजनयन्मनवे क्षामपश्च सत्रा शनं यजमानस्य तूतोद ॥ ७ ॥
तस्मै तवस्य १ मनुदापि सत्रेन्द्राय देवेभिरर्चनादौ ।
प्रति यदस्य वज्रं बाहोर्धुर्हत्वी दस्युर्गुराणां निन्दते” ॥ ८ ॥

वामदेवः ४

वामदेवो दस्युवधमनुकीर्तयन्निन्द्रमभितन्त्रयाम् ।

- ४।१६ “आदम्युधो मनस्ता बाह्वन्त भुयने वृत्तं नृपे निन्न ।
स्वे योनौ निपद्यतं सरूपायिना चिन्त्रिन्मन्त्रिणम् ॥ १० ॥
यासि वृत्तेन सरथमवर्युम्बोने वानस्य हर्षोभितम् ।
अज्ञावाजं न गधं मुपूषन्व विदेहान्धराणां भूतम् ॥ ११ ॥
कुत्साय शुष्णमशुषं निवर्ति प्रानि ये वा दस्युः सन्तम् ।
सद्यो दस्युर्गुराणां वृत्तेन प्रमुञ्चयन् दस्युर्गुराणां ॥ १२ ॥
त्वं पिबुं मृगयं गुरुवांसगुह्युः देवेभिरर्चनादौ ।
पञ्चाराष्ट्रं नि वर सरूपाय न दाने नृपे निन्दते” ॥ १३ ॥

- ४।१७ “त्वं महौ इन्द्र तुभ्यं ह त्वा अनुत्तमं मंहना मन्यत-द्यौः । त्वं वृत्रं शवसा जघन्वान्सृजः सिन्धू रहिना जघ्रसानान् ॥ १ ॥ त्वमथ प्रथम जायमानोऽमे विश्वा अधिथा इन्द्र कृष्टीः । त्वं प्रतिप्रवत आशयानमहि वज्रेण मघवन्विवृश्चः ॥ ७ ॥ अयं चक्रमिषणत् सूर्यस्य न्येतशः रीरमत्ससुमाणम् । आकृष्ण ईं जुहुराणो जिघर्ति त्वचो वुध्ने रजसो अस्य योनौ ॥ १४ ॥
- ४।१८ “ममच्चन ते मघवन्व्यसो निविविध्वाँ अप हनू जघान ॥ अधा निविद्ध उत्तरो-वभूवाब्जिरो दासस्य सपिणग्वधेन ॥ ६ ॥
- ४।१९ “अतृपूणुवन्तं वियतमवुध्यमवुध्यमानं सुपुपाणमिन्द्र । सप्त प्रति प्रवर्त आशयानमहि वज्रेण-विकीरिणा अपर्वन् ॥ ३ ॥ अतोदयच्छवसा क्षाम वुध्ने वार्णवातस्तविषोभिस्त्रिन्द्रः । दलहा न्यौभ्नादुशमान ओजोऽवाभिनत्ककुभः पर्वतानाम् ॥ ४ ॥ अभि प्रदृर्जनयो न गर्भं रथा इव प्रययुः सांकमद्रयः । अतर्पयो विसृत उज्ज ऊर्मीन्त्वं वृताँ अरिणा इन्द्रसिन्धून् ॥ ५ ॥ त्वं महीमवर्नि विश्वधेनां तुर्वीतये वय्यार्य क्षरन्तीम् । अरमयो नमसैजदणः सुतराणो अकृणोर्निन्द्र सिन्धून् ॥ ६ ॥ इन्द्रस्य वामदेवः प्रियतम आसीदयं हि देवस्य । इन्द्रस्य मूर्त्तिपूजां प्रचारयामास लोकेऽस्मिन् ॥ १ ॥ ऋक्संहिता तुरीयकमण्डलसूक्ते चतुर्विंशे । दशमर्च्यैन्द्रप्रतिमां व्यक्रीणाद् धेनुभिर्दशभिः ॥ २ ॥ सर्वप्रथमं मन्ये देवयुगे वामदेव एवायाम् । देवप्रतिमापूजां प्रचारयामास मानुषे लोके ॥ ३ ॥ यद्यपि ततोऽपि पूर्वं सारस्वतसूर्यसदनेऽभूत् । अपि सूर्यचक्रमूर्त्तैरुपासनारम्भ इत्याहुः ॥ ४ ॥ विज्ञानार्थां सेयं किन्त्वासीत् सूर्यचक्रस्य । दृष्टिपरीक्षोपासा देवप्रतिमार्चना नैवम् ॥ ५ ॥ योगस्त्रिधा क्रियाया भक्तेर्ज्ञानस्य भेदेन । भक्ते स्ते चत्वारो हठलयसन्मन्त्रराजयोगाख्याः ॥ ६ ॥

देवप्रतिभोपासा प्रकल्पिता मन्त्रयोगविधा ।

मन्त्राराधितदेवः प्रत्यासन्नोऽवति प्रायः ॥ ७ ॥

‘देवानामिदं महत् तदावृणीमहे वचम् ।

वृष्णामस्मभ्यमूतये’ ॥

उत्कृष्टं बहुमूल्यं विक्रीणन् द्रव्यमल्पमूल्येन ।

पूजाफलोपलब्धौ समयं प्रत्यर्पणाय चक्रे म. ॥ ८ ॥

कृत एवेन्द्रस्तमृषिं महयितुमिव वामदेवस्य ।

प्रमहोत्सवेऽभिगरन्तु वक्तुं प्रतिगरमिहान्तरोत्तम्यौ ॥ ९ ॥

वामदेवं प्रतीन्द्रः स्वं चरितमनुवर्णयति ।

४।२६ ‘अहं मनुरभवं सूर्यश्चाहं कक्षीयो ऋषिरस्मि विप्र ।

अहं कुत्समार्जुनेयं न्यूञ्जेऽहं कविरुशना पश्यताम् ॥ १ ॥

अहं भूमिमदवामार्यायाऽहं वृष्टिं दातुमे मर्त्याय ।

अहमपो अनयं वावशाना मम देवानो अनुकृतायन ॥ २ ॥

अहं पुरो मन्दसानो व्यैर नवसाकं नयती गन्धर्वम् ।

शततमं वेद्यं सर्वताता दिवोदासमनिधिद्वयं ददाम् ॥ ३ ॥

अथवा देवेन्द्रस्य व्याहृतिमयनेव वामदेव ऋषिः ।

प्रतिनिधितयेन्द्रभाव स्वस्मिन्नारोप्य वक्ति ॥ ४ ॥

पुनर्वामदेवोऽनुर्नययिन्द्रं मयति ।

४।२८ “त्वा युजा तव तत्सोम सान्य इन्द्रो देवो गन्धर्वम् ।

अहन्नहिमरिणात्सप्त सिन्धूनपादणोर्निधित्वेन म. ॥ १ ॥

त्वा युजा नि खिद्यत्सूर्यत्येन्द्रश्चरं सान्ना सप्त नद्यः ।

अधिष्णुता बृहता वर्तमानं मणोद्वेहो न्य सिन्धुना दातुः ।

अहन्निन्द्रो अदहदग्निरिन्द्रो पुरा सन्धुना यं सप्तनदीः ।

दुर्गे दुरोणे कृत्वा न यानां एव सान्ना इन्द्रो नि ददाम् ॥ ३ ॥

विश्वस्मात्सीनधनो इन्द्र दन्धुनिन्द्रो न न्यो सप्तनदीः ।

अदाधेयाममृणातं नि ददाम्निन्द्रो न्ययति सान्ना ॥ ४ ॥

४।३० “नकिरिन्द्र त्वदुत्तरो न व्यायो अस्ति वृत्रहन् ।

नकिरेवा यथा त्वम् ॥ १ ॥

सत्रा ते अनुकृष्टयो विश्वो चक्रेव वावृतुः ।

सत्रा महौ असि श्रुतः ॥ २ ॥

विश्वे चनेदना त्वा देवास इन्द्र युयुधः ।

यदहा नक्तमातिरः ॥ ३ ॥

यत्रोत बाधितेभ्यश्चक्रं कुत्साय युध्यते ।

सुषाय इन्द्रसूर्यम् ॥ ४ ॥

यत्र देवो ऋधायतो विश्वो अयुष्य एक इत् ।

त्वमिन्द्र वनूर्हन् ॥ ५ ॥

यत्रोत मर्त्याय कमरिणा इन्द्रसूर्यम् ।

प्रावः शचीभिरेतशम् ॥ ६ ॥

किमादुतासि वृत्रहन् मघवन्मन्युमत्तमः ।

अत्राह दानुमातिरः ॥ ७ ॥

एतद्वेदुत वीर्यमिन्द्र चकर्थ पौंस्यम् ।

स्त्रियं यदहर्णाशुधं वर्धीदु हितरं दिवः ॥ ८ ॥

दिवश्चिद्घा दुहितरं महान्महीयमानाम् ।

उपासमिन्द्र सम्पणक् ॥ ९ ॥

अपोषा अनसः सेरत्सन्पिष्टादह विम्युपी ।

नियऽसीं शिशनथद्वपा ॥ १० ॥

एतदस्या अनः शये सुसम्पिष्टं विपाश्या ।

ससार सीं परावतः ॥ ११ ॥

उत सिन्धुं वित्राल्यं वितस्थानामधि क्षमि ।

परिष्ठा इन्द्र मायया ॥ १२ ॥

उत शुष्णस्य धृष्णया प्रमृक्षो अभिवेदनम् ।

पुरो यदस्य सार्म्पणक् ॥ १३ ॥

उत दासं कौलितरं बृहतः पर्वतादधि ।

अबाहन्निन्द्र शम्बरम् ॥ १४ ॥

उत दासस्य वर्चिनः सहस्राणि शतावधीः ।

अधि पञ्च प्रधीरिव ॥ १५ ॥

उत त्यासद्य आर्या सरयोरिन्द्रपारतः ।

अर्णां चित्ररथावधीः ॥ १८ ॥

शतमश्मन्मयीनां पुरामिन्द्रो व्यास्यत् ।

दिवोदासाय दाशुपे ॥ २० ॥

अस्वापयद्भीतये सहसा त्रिशतं हयैः ।

दासानामिन्द्रो मायया" ॥ २१ ॥

४ ३२ "प्रते वोचाम वोर्याश्या मन्दसान आरुजः ।

पुरोदासीरभीत्य ॥ १० ॥

ता ते गृणन्ति वेधसो यानि चकर्थ पौस्या ।

सुतेष्विन्द्र गर्वणः ॥ ११ ॥

सहस्रं व्यतीनां युक्तानामिन्द्र मीमहे ।

शतं सोमन्य स्वार्य ॥ १७ ॥

सहस्रा ते शता वयं गवामा च्यावयामसि ।

अस्मन्ना राध एतु ते ॥ १८ ॥

दश ते कलशानां हिरण्यानामधीमहि ।

भूरिदा असि वृत्रहन् ॥ १९ ॥

भूरिदा भूरि देहि नो मा वञ्च भूर्या भर ।

भूरि घेदिन्द्र दित्ससि" ॥ २० ॥

जेतामाधुच्छन्दसः स्तौति ।

"पुरां भिन्दुयु वा कविरमितौजा अजायत ।

इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुषुत" ॥ १ ॥ (११ । ४)

"मायाभिरिन्द्र मायिनं त्वं शुष्णमवातिरः ।

विदुष्टे तस्य मेघिरास्तेषां श्रवोऽस्युत्तिरः" ॥ २ ॥ (११ । ७)

सुमित्रो दुर्मित्रो वा कोत्सः स्तौति ।

१० । १०५ "शतं वा यदसुर्य प्रतित्वा सुमित्रा इत्थान्तौद्दुर्मित्र इत्यास्तौन ।

आवो यदस्युहत्ये कुत्सपुत्रं प्रावो यदस्युहत्ये कुत्सवत्सम्" ॥ ११ ॥

वभ्रुरात्रेयोऽभिनन्दयति ।

५।३० “परो यत्त्वं परम आजनिष्ठाः परावति श्रुत्यं नाम विभ्रत् ।
 अतश्चिदिन्द्रादभयन्त देवा विश्वा अपो अजयद्दासपत्नीः ॥ ५ ॥
 तुभ्येदेते मरुतः सुशेवा अर्चन्त्यर्कं सुन्वन्त्यधः ।
 अहिमोहानमप आशयानं प्रमोयाभिर्मायिनं सद्दिन्द्रः ॥ ६ ॥
 वि धू मृधो जनुषा दानमिन्वन्नहन्वा मघवन्त्सञ्चकानः ।
 अत्रादासस्य नमुचेः शिरो यदवतेयो मनवे गातुमिच्छन् ॥ ७ ॥
 युजं हि मामकृथा आदिदिन्द्र शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन् ।
 अश्मानं चित्स्वर्थं वर्तमानं प्रचक्रियेव रोदसी मरुद्भ्यः ॥ ८ ॥
 स्त्रियो हि दास आयुधानि चक्रे किमा करन्नवला अस्य सेनाः ।
 अन्तर्ह्यस्यदुभे अस्य घेने अथोप प्रैद्युधये दस्युमन्द्रः ॥ ९ ॥

अवस्युरात्रेयोऽभिनन्दयति ।

५।३१ “इन्द्रो रथाय प्रवतं कृणोति यमध्यस्थान्मघवा वाजयन्तम् ।
 यूयेव पश्वो व्युनोति गोपा अरिष्टो यातिप्रथमः सिंघासन् ॥ १ ॥
 अनवस्ते रथमश्वाय तक्षन् त्वष्टावज्रं पुरुहूत द्युमन्तम् ।
 ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अर्कैरवर्द्धयन्नहये हन्तवा उ ॥ ४ ॥
 वृष्णे यत्ते वृषणो अर्कमर्चानिन्द्र प्रावाणो अदितिः सजोषाः ।
 अनश्वासो ये पवयोऽरथा इन्द्रेषिता अभ्यवर्तन्त दस्यून् ॥ ५ ॥
 प्र ते पूर्वाणि करणानि वोचं प्रनूतना मघवन्या चकर्थ ।
 शक्तीवो यद्विभरा रोदसी उभे जयन्तपो मनवे दानुचित्राः ॥ ६ ॥
 तदिन्नु ते करणं दत्तं विप्राहिं यद् धन्न्तोर्जो अत्रामिमीथाः ॥
 शुष्णस्य चित्परि माया अगृभ्णाः प्रपित्वं यन्तप दस्यूं रसेधः ॥ ७ ॥
 त्वमपो यदवे तुर्वशाथारमयः सुदुघाः पार इन्द्रे ।
 उग्रमयातमवहो ह कुत्सं सं ह यद्दामुशनारन्त देवाः ॥ ८ ॥
 इन्द्राकुत्सा बहमाना रथेना वामत्या अपि कर्णे बहन्तु ।
 निःषीमद्भ्यो भमथो निःपेधस्थान्मघोनो हृदो वरथस्तमांसि ॥ ९ ॥

गातुरात्रेयोऽभिनन्दयति

- ५।३२ “अददरुत्समसृजो वि खानि त्वमर्णवान्वद्वधानां धरन्त्या ।
महान्तमिन्द्रपर्वतं वियद्वः सृजो विधारा अब दानवं हन् ॥ १ ॥
त्वमुत्सो ऋतुभिर्वद्वधानां अरंह ऊधः पर्वतस्य वज्रिन् ।
अर्हि चिदुग्र प्रयुतं शयानं जघन्वो इन्द्र तविपीमघत्या ॥ २ ॥
त्यं चिदेषां त्वधया मदन्तं मिहो नपातं सुवृध तमोगाम् ॥
वृषप्रभर्मा दानवस्य भामं वज्रेण वप्नी निजघान शुष्णम् ॥ ४ ॥
त्यं चिदस्य क्रतुभिर्निपत्तममर्मणो विवदिदस्य मर्म ।
यदी सुक्त्र प्रभृता मदस्य युयुत्सन्तं तमसि हर्म्य धा ॥ ५ ॥
त्यं चिदिस्था कल्पयं शयानमसूर्ये तमसि वावृधानम् ।
तं चिन्मन्दानो वृषभः सुतस्योच्चैरिन्द्रो अपगूर्या जघान ॥ ६ ॥
त्यं चिदणं मधुपं शयानमसिन्वं वज्रं मर्याददुग्र ।
अपादमत्रं सहता वधेन निदुर्योण आवृणङ्मृधवाचम्” ॥ ८ ॥

संवरणः प्राजापत्योऽभिनन्दयति ।

- ५।३३ “गुरु यत्त इन्द्र सन्त्युक्था गवे चक्रधोर्विरासु युध्यन् ।
ततक्षे मूर्याय चिदोफसि स्वे वृषा समत्सु दासस्य नामचिन्” ॥ १ ॥
५।३४ “न पञ्चभिर्दशभिर्बैष्ट्यारभं नासुन्वता स च ते पुप्यतो चन ।
जिनाति वेदमुया हन्ति वा धुनिरा देवय भजति गोमति व्रजे ॥ ५ ॥
वित्वक्ष्णः समृतौ चक्रमासजोऽसुन्वतो विपुण सुन्वतो वृध ।
इन्द्रो विश्वस्य दमिता विभीषणो यथावशं नयति दासमार्गः” ॥ ६ ॥
विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद् वामुक्तो वाऽभिनन्दयति ।

- १० २२ “आन इन्द्र वृक्षसेऽस्माक ब्रह्मोद्यनम् ।
तत्त्वा याचामहेऽवशुष्णं यद्वन्नागानुयम् ॥ ७ ॥
अकर्मादन्युरभि नो अमन्तुरन्यत्रतो अमानुष ।
त्वं तस्या मित्रहन्वधर्दासस्य दन्भय ॥ ८ ॥
मक्ष ता त इन्द्र दानाप्नस आजाणे शूर वज्रिन् ।
यद्व शुष्णस्य दन्भयो जातं विष्टवं सचार्यभि ॥ १० ॥

अहस्ता यदपदी वर्धत चाः शचीभिर्वेद्यानाम् ।
शुष्णं परि प्रदक्षिणिद्विश्वायवे नि शिञ्जथः” ॥ १४ ॥

वसुक्रोऽभिनन्दयति ।

१० । २६ “प्र ते अस्या उपसः प्रापरस्यानृतौ स्याम नृतमस्य नृणाम् ।
अनु त्रिशोकः शतमावहन्नुन्कुत्सेन रथो यो असत्ससवान्” ॥ २ ॥

अष्टादंष्ट्रो वैरूपो महयति ।

१० । १११ “इन्द्रो दिवः प्रतिमानं पृथिव्या विश्वा वेद सवना हन्ति शुष्णाम् ।
महीं चिद्यामातनोत्सूर्येण चास्कम्भ चित्कम्भनेन स्कभीयान् ॥ ५ ॥
वज्रेण हि वृत्रहा वृत्रमस्तरदेवस्य शूशुवान्तस्य मायाः ।
वि धृष्णो अत्र धृषता जघन्याथाभवो मघवन्वाह्वोजाः ॥ ६ ॥
सचन्त यदुपसः सूर्येण चित्रामस्य केतवो रामविन्दन् ।
आयन्तक्षत्रं ददृशे दिवो न पुनर्यतो न किरद्धानु वेद ॥ ७ ॥
दूरं किल प्रथमा जग्मुरासामिन्द्रस्य याः प्रसवे ससुरापः ।
क्व त्विदग्र क्व बुध्न आसामापो मध्यं क्ववो नूनमन्तः ॥ ८ ॥
सृजः सिन्धूँ रदिना जग्रसानाँ आदिदेताः प्रविविज्रे जवेन ।
मुमुक्षमाणा उत या मुमुञ्चे ऽवे देता न रमन्ते नितित्ताः ॥ ९ ॥
सग्रीचीः सिन्धुमुशतीरिवायन्तसनाज्जार आरितः पूर्भिदासाम् ।
अस्तमा ते पार्थिवा वसून्यस्मे जग्मुः सृनृता इन्द्र पूर्वीः” ॥ १० ॥

शतप्रभेदनो वैरूपो महयति ।

१० । ११३ “वृत्रेण यदहिना विभ्रदायुधा समस्थिता युधये शंसमाविदे ।
विश्वे ते अत्र मरुतः सह त्मना वर्धन्नुग्रमहिमानमिन्द्रियम् ॥ ३ ॥
भूरि पक्षेभिर्वचनेभिर्ऋक्वभिः सग्न्येभिः सख्यानि प्रवोचत ।
इन्द्रो धुनिं च चुसुरिं च दम्भयञ्छुद्धामनस्या शृणुते दभीतये” ॥ ६ ॥

बृहदुक्त्यो वामदेव्यः श्लाघते ।

१० । ५४ “तां सु ते कीर्तिं मघवन्महित्वा यत्वा भीते रोदसी अह्वयेताम् ।
प्रावो देवां आतिरो दासमोजः प्रजार्थं त्वस्यै यदक्षिं इन्द्र ॥ १ ॥

यदचरस्तन्वा वावृधानो वलानीन्द्र प्रब्रुवाणो जनेषु ।
मायेत्सा ते यानि युद्धान्याहुर्नाद्यः शत्रुं ननु पुरा विविस्ते ॥ २ ॥
क उनु ते महिमानं समस्यास्मत्पूर्वं ऋषयोऽन्तमापुः ।
यन्मातरं च पितरं च साक्रमजनयथास्तन्वः त्वायो ॥ ३ ॥

वत्सः काण्वोऽभिनन्दयति ।

८।६ 'विचिद्धत्रस्य दोधतो वज्रेण शतपर्वणा ॥
शिरो विभेदं वृष्टिणा ॥ ६ ॥
नि शुष्ण इन्द्र धर्णसि वज्रं जघन्य दत्यवि ।
वृषा ह्यग्रं मृषिबपे' ॥ १४ ॥

श्रुष्टिगुः काण्वोऽभिनन्दयति ।

८।५१ "प्र यो ननक्षे अभ्योजसा क्रिवि वधैः शुष्णं निघोपयन् ।
यदेदस्तम्भीत्प्रथयन्नमं दिवमादिज्जनिष्ट पार्थिव ॥ ८ ॥
यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेषधिपा अरिः ।
तिरश्चिदयं रुशमे पवीरवि तुभ्येस्सो अज्यते रयिः" ॥ ६ ॥

मेध्यः काण्वोऽभिष्टौति ।

८।५३ "य आयुं कृतसमतिथिग्वमर्हयो वावृधानो दिवे दिवे ।
तं त्वा वयं ह्यर्यश्वं शतक्रतुं वाजयन्तो हवामहे" ॥ २ ॥
गोषूक्त्यश्वसृक्त्तिनौ काण्वायनावभिनन्दयतः ।

८।१४ 'अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तय ।
विश्वा यदजयः स्पृधः ॥ १३ ॥
मायाभिरुत्सिस्त्सत इन्द्र दामारुरुजतः ।
अवदस्यैरूधूनुया" ॥ १४ ॥

नोधागौतमोऽभिनन्दयति ।

१।६१ "अस्मा इदुत्यदनु दाय्येयामेजो यद्वज्जे भूरेरीतानः ।
प्रेतशं सूयं पस्पृधान सौवर्च्ये सुप्विमायदिन्द्रः" ॥ १५ ॥

१।६३ “त्वं सत्य इन्द्र धृष्णुरेतान्त्वममुना नयस्त्वं षाट् ।
त्वं शुष्णं वृजते पृथ आणौ यूने कुत्साय द्युमते सचाहन्” ॥ ३ ॥

अङ्ग औरवोऽभिनन्दयति १—६ ।

१०।१३८ “तव त्य इन्द्र सख्येषु बहय ऋतं मन्वाना व्यदर्दिरुर्वलम् ।
यत्रादशस्यन्नुषसो रिणन्नपः कुत्साय मन्मन्नह्यश्च दंसयः ॥ १ ॥
अवासजः प्रश्वः श्वञ्चयो गिरीनुदाज उस्त्रा अपिवो मधु म्रियम् ।
अवर्धयो वनिनो अस्य दंससा शुशोच सूर्य ऋतजांतया गिरा ॥ २ ॥
वि सूर्यो मध्ये अमुचद्रथं दिवो विददासाय प्रतिमानमार्थः ।
हलहानि पिप्रोरसुरस्य मायिन इन्द्रो व्यास्यच्चकृवो ऋजिश्वना ॥ ३ ॥
अनाधृष्टानि धृपितो व्यास्यन्निधीरदेवो अमृणदयास्य ।
मासेव सूर्यो वसु पुर्यमाददे गृणानः शत्रूरशृणाद्विरुक्मता ॥ ४ ॥
अयुद्धसेनो विभ्वा विभिन्दता दाशद्वृत्रहा तुज्यानि तेजते ।
इन्द्रस्य वज्रादिविभेदभिरनथः प्राक्रामच्छुन्ध्यूरजहादुषा अनः ॥ ५ ॥
एता त्या ते श्रुत्यानि केवला यदेक एकमकृणोरयज्ञम् ।
मासां विधानमदधा अधि यवि त्वया विभिन्नं भरति प्रधि पिता” ॥ ६ ॥

कृतज्ञतास्तुतिष्कृपाठानन्तरमिन्द्रेण कुत्साय वेशभूपापरिच्छदैः स्वसारूप्यं सोमसग्धिरु-
द्विविधं प्रीतिप्रसाददानम् ।

इत्थं तत्र सभायां सभासदै राजभिर्मनुष्यैश्च ।
ऋषिभिर्देवैरसुरैः सभाजितोऽभून्महोत्सवे स्वाराट् ॥ १ ॥
आराध्याः संभ्रान्ताः संभावितसज्जनाश्च समवेत्य ।
सप्रश्रयं सविनयं न्यवेदयन् श्रद्धया कृतज्ञत्वम् ॥ २ ॥
तेषां कृतज्ञतां तामभिनन्द्य हृदा स्वभक्तिभावत्वम् ।
प्रतिपद्य च सौहार्द्यं दर्शयितुं समयमनुमेने ॥ ३ ॥
महसि च मघवानिन्द्रो महसा परितोषितः प्रददौ ।
कुत्साय तत्र तस्मै सोमे सग्धिं स्वसारूप्यम् ॥ ४ ॥

तत इन्द्राकुत्साभ्यां संहभावं सह च सोमसवम् ।
 भूयावेषपरिच्छदपरिचरसाम्यं च तत्राभूत् ॥ ५ ॥
 इत्थं महःसमाप्तौ विश्वामित्रः समां विसर्जयितुम् ।
 मन्त्रं विसर्जनीयं प्रत्युत्थायेन्द्रमन्वाख्यत् ॥ ६ ॥
 इन्द्रेण कृतो यावानुपकारस्तं पुनः प्रथयन् ।
 स्वीयां कृतज्ञतां च प्रदर्शयन्निन्द्रमस्तौत्सः ॥ ७ ॥

देवेन्द्रस्य पुनः स्वर्गे गमनम् ।

सभाविसर्जनावसरे जिगमिषु' देवेन्द्रं प्रति विश्वामित्रस्य प्रणयवचनम् ।

३ । ५३ "इन्द्रापर्वता बृहता रथेन वामीरिप आ बहतं सुवीरा ।
 वीतं हव्यान्यध्वरेषु देवा वर्धेयां गीभिरिच्छया मदन्ता ॥ १ ॥
 तिष्ठो सु कं मधवन्मा परागा' सोमस्य तु त्वा सुंपुतभ्य यक्षि ।
 पितुर्न पुत्रः सिचमा रभेत इन्द्र त्वाग्निष्ठया गिरा शचीवः ॥ २ ॥
 शंसावाध्वर्यो प्रति मे गृणीहीन्द्राय वाहः कृणावाव जुष्टम् ।
 एदं वर्धिर्यजमानस्य सीदाथा च भूदुक्थमिन्द्राय शस्तम् ॥ ३ ॥
 जायेदस्तं मधवन्त्सेदु योनिस्तदिच्छा युक्ता हरयो वहन्तु ।
 यदा कदा च सुनवाम सोममग्निष्ट्वा दूतो धन्यात्यच्छ ॥ ४ ॥
 परा याहि मधवन्ना च पाहीन्द्र भ्रातरुभयत्राते अर्थम् ।
 यत्रारथस्य बृहतो निधानं विमोचनं वाजिनो रासभन्ध ॥ ५ ॥
 अपाः सोममस्तमिन्द्र प्रयाहि कल्याणीर्जाया मुरगं गृहेत ।
 यत्रा रथस्य बृहतो निधानं विमोचनं वाजिनो वसिष्ठाजन ॥ ६ ॥
 इमे भोजा अङ्गिरसो विरूपा दिवस्पुत्रासो अनुरस्य वारा ।
 विश्वामित्राय ददतो मघानि सहस्रसावे प्रतिरन्त 'त्रायु' ॥ ७ ॥
 रूपं रूपं मघवा वोभवीति मायाः कृण्वानत्तन्वं परिन्वाप ।
 त्रिर्यदिव' परिमुहूर्तमागात्तर्बैर्मन्त्रैरनृतुपा अनाया ॥ ८ ॥
 महो अर्पिर्देवजा देवजूतोऽन्तभान् सिन्धुमर्णनं नृचक्ष ।
 विश्वामित्रो यद्वहत्सुकासमप्रियायत दुग्धिकेभिरिन्द्र ॥ ९ ॥

हंसा इव कृणुथ श्लोकमद्रिभिर्मदन्तो गीर्भिरध्वरे सुते सचा ।
 देवेभिविप्रा ऋषयो नृचक्षुर्यो वि पिवध्वं कुशिकाः सोम्यं मधु ॥ १० ॥
 उप प्रेत कुशिकाश्चेतयध्वमश्वं राघे प्रमुञ्चता सुदासः ।
 राजा वृत्रं जङ्घनत्प्रागपागुदगथा यजते वर आ पृथिन्याः ॥ ११ ॥
 य इमे रोदसी उभे अहमिन्द्रमतुष्टवम् ।
 विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जनम् ॥ १२ ॥
 विश्वामित्रा अरासत ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे ।
 करदिन्नः सुराधसः ॥ १३ ॥
 किं क्ते कृण्वन्ति कीकटेपु गावो नाशिरं दुह्ने न तपन्ति धर्मम् ।
 आ नो भर प्रमगन्दस्य वेदो नैचाशाखं मघवन्नन्धया नः ॥ १४ ॥

इन्द्राकुत्सयोर्वेषादिसाम्यकृतसारूप्ययोः स्वर्गाय सह प्रस्थानम् ।

कुत्सः सदानुगन्तुं मनो दधे शक्रसत्कृत्यै ।
 इन्द्रोपि तत्र कुत्सं सत्कतुं पथि पुरश्चक्रे ॥ १ ॥
 इन्द्रसमानैर्मनैः कुत्सस्याभूत् पुरो यानम् ।
 तत्पश्चात् पथि शक्रः स्वपरिकरैर्यानमारभे ॥ २ ॥
 अस्ति सहस्रास्त्रीने पथि लोकः स्वर्ग इत्येवम् ।
 व्याचष्ट ऐतरेयः सहस्रमेतत्त्वनेकार्थम् ॥ ३ ॥
 इन्द्राकुत्सौ त्वश्वेत्त्रिभिर्दिनैर्लभ्यतुः स्वर्गम् ।
 सह च सहस्रं हरयः किञ्चित् पश्चात्तु मारुती सेना ॥ ४ ॥
 अमरावत्यां देवाः श्रुत्वा वैकुण्ठमागमिष्यन्तम् ।
 पुरतः कृत्वेन्द्राणीमुपह्वरे स्वागतायागुः ॥ ५ ॥
 अभ्यायान्तौ दूराद् दृष्ट्वेन्द्रौ द्वौ शचीन्द्राणी ।
 चकितातिविस्मिता सा प्रे पितपत्यर्चने च संमुमुहे ॥ ६ ॥
 मरुदुद्बोधितवृत्ता स्वाभिनमवधार्य पूजयामास ।
 सारूप्यदानविषये संवाद् केन्द्रतश्चक्रे ॥ ७ ॥

स्वर्गे विजयाभिनन्दनीयः प्रमहः ।

अमरावत्यामिन्द्रः स्वीय सदनं समासाद्य ।
 सत्कारदानमानैः कुत्सं सभाषयामास ॥ १ ॥
 मानुषलोके कुत्सप्रस्थान दस्युसंहारम् ।
 इन्द्रविजयमुपलक्ष्य च महोत्सवः कल्पितो देवैः ॥ २ ॥
 तत्र बृहस्पतिनुन्नः सप्तगुरिदिन्द्रं महोत्सवे प्रमुखः ।
 विजयितमभितुष्टाव प्रोच्य विजयसिद्धनेतदुत्कर्षम् ॥ ३ ॥
 आर्य्यं वर्य्यं दस्युभिरुपद्रुतं यो द्रुतं समाश्वास्य ।
 उदजापयत् तमिन्द्रं सप्तशमुखतः सुराभ्युदगाऽभ्यगुणन् ॥ ४ ॥

तत्रन्द्रस्तुतिविधानाय नृमेघपुरुमेधौ देवेन्द्रसात्वेयं मरुद्गणमभिलक्ष्य मन्त्रयतः ।

८८६ “बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम् ।
 येन ज्योतिरजनयन्नुतावृधो देवं देवाय जागृवि ॥ १ ॥
 अपाधमदभिशास्तीरशग्निहाथेन्द्रो वन्म्याभवन् ।
 देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे बृहद्भानो मरुद्गण ॥ २ ॥
 प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत ।
 वृत्रं हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा ॥ ३ ॥
 अभि प्रभर धृपता धृपन्मनः श्रवश्चित्ते असद्बृहन् ।
 अर्पन्त्वापो जवसा वि मातरो हनो वृत्रं जया त्व ॥ ४ ॥

अथैतौ नृमेघपुरुमेधौ देवेन्द्रमेवाभिलक्ष्य मह्यतः स्म ।

“यज्जायथा अपूर्वर्य मवचन्वृत्र हत्याय ।
 तत्प्रथिवीमप्रथयस्तदन्तः ३३ वाम ॥ ५ ॥
 तत्ते यज्ञो अजायत नष्टर्क उत हस्तृति ।
 तद्विश्वमभि भूरसि यज्जात यज्ञ जन्वम ॥ ६ ॥
 आमातु पक्कमैरय आ नूर्य रोहयो देवि ।
 धर्म न सामन्तपता सुवृक्तिभिर्जुष्टं निर्वाण्ये हृतम् ॥ ७ ॥

पुनरेतौ नृमेघपुरुमेधौ देवेन्द्रमभिवर्णयतः ।

८१० “आनो विश्वासु हव्य इन्द्रः समत्सु भूषतु ।

उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहा परमज्या ऋचोपमः ॥ १ ॥

त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यसि सत्य ईशानकृत् ।

तु विद्युन्स्य युव्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः ॥ २ ॥

ब्रह्मा त इन्द्र गिर्वणः क्रियते अनतिदूभुता ।

इमा जुपस्व हर्यश्च योजनेन्द्र या ते अमन्महि ॥ ३ ॥

त्वं हि सत्यो मघन्ननानतो वृत्रा भूरि न्यूञ्जसे ।

स त्वं शविष्ठ वज्रहस्त दाशुपेऽर्वाञ्च रयिमा कृधि ॥ ४ ॥

त्वमिन्द्र यशा अस्पृजीपी शवसस्पते ।

त्वं वृत्राणि हंस्यप्रतीन्येक इदनुत्ता चर्षणीधृता ॥ ५ ॥

तमुत्वा नूनमसुर प्रचेतसं राधो भागमिवेमहे ।

महीव कृत्तिः शरणां त इन्द्र प्रते सुम्ना नो अभवन्” ॥ ६ ॥

तिरश्चीर्धुतानो वा मरुतोऽभिनन्दयति ।

८१६ “अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदियानः कृष्णो दशभिः सदस्त्रैः ।

आवत्तमिन्द्रः शच्या धमन्तमप स्नेहितीर्नृमणा अधत्त ॥ १३ ॥

द्रप्समपश्यं विपुणे चरन्तमुपह्वरे नद्यो अंशुमत्याः !

नभो न कृष्णमवतस्थिवांसमिज्यामि वो वृषणो युध्यताजौ ॥ १४ ॥

अथ द्रप्सो अंशुमत्या उपस्थेऽधारयत्तन्वं तित्विपाणः ।

विशो अदेवोरभ्या चरन्तीवृ हस्पतिना युजेन्द्रः ससाहे ॥ १५ ॥

त्वं ह त्यत्सप्तभ्यो जायमानोऽशत्रुभ्यो अभवः शत्रुरिन्द्र ।

गूळहे द्यावापृथिवी अन्वविदो विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो रणं धाः ॥ १६ ॥

प्वं हत्यदप्रतिमानमोजो वज्रं ए वज्रिन्धृपितो जघन्थ ।

त्वं शुष्णास्यावातिरो वधत्रैस्त्वंगा इन्द्र शच्येदविन्द्रः ॥ १७ ॥

त्वं ह त्यद्वृषभ चर्षणीनाङ् घनो वृत्राणां तविपो वभूथ ।

त्वं सिन्धूँ रसृजस्तस्तभानान् त्वमपो अजयो दासपत्नीः” ॥ १८ ॥

वभ्रो वैखानसः स्तौति ।

१०।६६ “स द्रुहणे मनुष ऊर्ध्वसान आ साविषदर्शसानाय शरुम् ।

स नृतसो नहुषोऽमत्सुजात पुगेभिनदर्हन्द्स्यु हत्ये ॥ ७ ॥

सो अभ्रियो न यवस उदन्यन्क्षयाय गातुं विदन्ना अत्से ॥

उप यत्सीददिन्दुं शरीरैः श्येनोऽयोपाट्ठिहन्ति दस्यून् ॥ ८ ॥

स ब्राधतः शवसानेभिरस्य कुत्साय शुष्णं कृपणे परादान् ॥

अयं कविमनयच्छस्यमानमत्क यो अस्य सन्तितो नृणाम् ॥ ९ ॥

अस्य स्तोमेभिरौशिज ऋजिश्वा ब्रज द्रद्वृषभेण गिप्रो ।

सुत्वा यद्यजतो दीदयद्गी पुर इयानो अभि वर्षमाभूत् ॥ ११ ॥

अथ प्रमहप्रमुखः सप्तगुः स्वर्णरः प्राधान्येनेन्द्रं महयति ।

१० । ४७ “जगृम्भते दक्षिणमिन्द्र हस्तं वसुयवो वसुपते वम्नताम् ।

विद्वा हि त्वा गोपतिं शूर गोनामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिञ्च ॥ १ ॥

त्वायुधं स्ववसं सुनीथं चतुः समुद्रं धरुणं रयीणाम् ।

चकृत्स्यं शंस्यं भूरिवारमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिञ्च ॥ २ ॥

सुव्रद्धाणं देववन्तं बृहन्तमुरुं गभीरं पृथुवुध्नमिन्द्र ।

श्रुत ऋपिमुग्रमभिमातिपाहमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिञ्च ॥ ३ ॥

समद्वाजं विप्रवीरं तरुत्रं धनस्पृतं शूशुवांसं सुदक्षम् ।

दस्युहन्तं पूभिदमिन्द्र सत्यमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिञ्च ॥ ४ ॥

अश्वावन्तं रथिनं वीरवन्तं सहस्रिणं शतितं वाजमिन्द्र ।

भद्रज्जातं विप्रवीरं स्वर्पामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिञ्च ॥ ५ ॥

प्र सप्तगुमृतधीतिं सुमेधां बृहस्पतिं मतिरच्छा जिगाति ।

य आङ्गिरसो नमसोपसयोऽस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिञ्च ॥ ६ ॥

वनीवानो ब्रम दूतास इन्द्रं स्तोमाश्चरन्ति सुमतीरिवाना ।

हृदि स्पृशो मनसा वक्ष्यमाना अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिञ्च ॥ ७ ॥

यत्वा यामि दद्वि तत्र इन्द्र बृहन्तं क्षयमसमं जनानाम् ।

अभि तद् द्यावापृथिवी गृणीतामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिञ्च ॥ ८ ॥

अभिगरप्रतिगर्नियमः

सदसि पुरातनसमये संवादेऽभ्यर्थनानु वा नतनाम् ।

प्रथमं यद्वक्तव्यं सोऽभिगरं प्रतिगरन्तु तत्र पर ॥ ९ ॥

यं प्रत्यभिगार उक्तः सोऽभ्युपयन् प्रतिगारं कुरुते ।

सोऽपगरोऽभिगारं चेदाक्षिपति त्रुटिमुदाहरस्तस्य ॥ २ ॥

स्वर्गे विजयमहोत्सव-संसदि सप्तगुहृतेऽर्थनाऽभिगारे ।

प्रतिगारतया महेन्द्रोऽभ्युपयन्नूचे पुराकृतं त्राणम् ॥ ३ ॥

सप्तगुमुखेन देवानामभिगारे देवेन्द्रस्य प्रतिगारः ।

१० । ४८ “अहं भुवं वसुनः पूर्यस्यतिरहं धनानि सं जयामि शश्वतः-

मां हवन्ते पितरं न जन्तवोऽहं दाशुपे विभजामि भोजनम् ॥ १ ॥

अहमिन्द्रो रोधो वक्षो अथर्वणस्त्रिताय गा अजनयमहेरधि ।

अहं दस्युभ्यः परिनृम्णमाददे गोत्रा शिञ्जन् दधीचे मातरिश्वेने ॥ २ ॥

मह्यं त्वष्टा वज्रमतक्षदायसं मयि देवासोऽवृजन्नपि क्रतुम् ।

ममानीकं सूर्यस्येव दुष्टरं मामार्थन्ति कृतेन कर्त्वेन च ॥ ३ ॥

अहमेतं गन्धयमश्व्यं पशुं पुरीषिणं सायकेना हिरण्ययम् ।

पुरु सहस्रा निशिशामि दाशुपे यन्मा सोमास उक्थितो अमन्दिषुः ॥ ४ ॥

अहमिन्द्रो न परा जिग्य इद्धनं ग मृत्यवेऽवतस्थे कदाचन ।

सोममिन्मा सुन्वन्तो याचता वसु न मे पूरवः सख्ये रिपायन ॥ ५ ॥

अहमेताञ्छाश्वसतो द्वाद्वेन्द्रं ये वज्रं युधयेऽकृण्वत ।

आह्वयवानो अव हन्मनाहनं दृळ्हा वदन्ममस्युर्नमस्विनः ॥ ६ ॥

अभीदमेकमेको अस्मि निष्पालभी द्वा किमु त्रयः करन्ति ।

खले न यर्यान् प्रति हन्मि भूरि किं मा निन्दन्ति शत्रवोऽनिन्द्राः ॥ ७ ॥

अहं गुङ्गुभ्यो अतिथिग्वमिष्करमिपं न वृत्रतुरं विजु धारयम् ।

यत्पर्णयन्त उत वां करस्त्रहे प्राहं महे वृत्रहत्य अशुश्रवि ॥ ८ ॥

प्र मे नमी साप्य इपे भुजे भृद्रवामेपे सख्या कृणुत द्विता ।

दिद्युं यदस्य समिथेपु मंहयमादिदेनं शंस्यमुक्थ्यं करम् ॥ ९ ॥

प्र नेमस्मिन्दृशे सोमो अन्तर्गोपा नेमपाविरस्था कृणोति ।

स तिमशृङ्गं वृषभं युयुत्सन् द्रुहस्तस्थौ बहुले वद्धो अन्तः ॥ १० ॥

आदित्यानां वसूनां रुद्रियाणां देवो देवानां न मिनामि धाम ।

ते मा भद्राय शवसे ततश्चुरपराजितमस्तृतमपालहम् ॥ ११ ॥

स्वर्गप्रमहेण दस्युविजयनीयेन्द्रचरितपूर्णताख्यानम् ।

इत्थं स्वाराट् दस्युनाशं व्यधात् प्राग् वैकुण्ठेन्द्रो नैपवेऽद्रोस्थित न्न ।
 कुत्सं राज्ये स्थापयित्वा स दस्यु नायो राष्ट्रे तान्निगृह्य स्वरागान् ॥ १ ॥
 कुत्सो राजाऽन्ये च राजान एते सिन्धोः प्रत्यन् नीदृति प्राग् यथाऽऽसन् ।
 सर्वे सभ्या आर्यराजास्त एते स्वं स्वं राज्यं प्राग्वद्वशाच्चतिष्ठन् ॥ २ ॥
 अथोदयनीयं परिशिष्टाख्यानम् ।

अथ दस्युभिः सारस्वतसूर्यापहरणम् ।

इत्थं देवस्वाराट् प्रतापतः सर्वरूपायाम् ।
 विहितायामपि शान्तौ नातिष्ठत् सा चिरं शान्तिः ॥ १ ॥
 धृष्टा उद्धृतद्वयाः कुर्वाणा पुनरुपद्रव भूय ।
 आक्रममाणाः सूर्यस्थाने पुनरप्यशातिमातेनः ॥ २ ॥
 वैकुण्ठद्विषि हन्तुं देवकुलं प्रस्थितेऽसुराधीशे ।
 प्रह्लादे त्वार्याणां क्षोभाद् दस्युभिरयं हत सूर्य ॥ ३ ॥
 गान्धारस्थं सूर्यं विद्वेपाद् ध्वंसयन्तोऽन्ये ।
 असुरा यवनप्रान्ते पुनरैच्छन् त निधापयितुम् ॥ ४ ॥

सीरियादेशे बालवक्रभवननिर्माणम् ।

शामो रोमकतनयस्तदायः शामदेशो य ।
 स च पश्चादवरुद्धः सुरैस्ततः सीरिया नाम ॥ ५ ॥
 तस्मिन् देशे हेलिः पौलस्त्यो निर्ममे सौरम् ।
 भवनं बालवक्राख्यं तस्मिन्शालाऽद्भुतम् ॥ ६ ॥
 अद्याप्येकः स्कम्भः श्वेताश्ममयोऽत्र दृश्यते भुग्न ।
 चत्वारिंशत् सप्त च हस्ता ऊर्ध्वं परिस्तृतौ तु नव ॥ ७ ॥
 तैरिदमद्भुतमासीत् सुदृढविशालं शिलागम्भम् ।
 भवनं तत्र च शाला विहितासीन् पूर्वसान्धेन ॥ ८ ॥
 नासीत्तत्र तु चक्रं शालैवासीद्विशालैषा ।
 चक्राभावात् तस्मिन् प्रतिविम्बार्थं च नयुरग्राणि ॥ ९ ॥

ॐ अचरन् देवाश्चक्रं शालं त्वसुराः समाश्रिता आसन् ।

इत्थं शतपथ उक्तं काण्डे षष्ठेऽष्टमाध्याये ॥ १० ॥

संपाऽस्ति हि परिभाषा सर्वत्रैवोऽनीयते तस्मात् ।

चक्रमनस्तच्छालं कुम्भीत्येवं हविर्ग्रहणे ॥ ११ ॥

चक्रं त्वश्मा पृथिनः शालं यन्त्रं तु सूर्य्यविज्ञाने ।

चक्रं परित्यजन्तः शालामेवाऽसुरा व्यदधुः ॥ १२ ॥

सरस्वत्याख्यब्राह्मीसूर्य्यप्रतिनिधेनाब्राह्मीसूर्य्यप्रतिष्ठापना ।

सिन्धुसरस्वत्योः प्राक्कृलात् प्राच्यां पुरा स्थितः सूर्य्यः ।

सिन्धोरब्राह्मया अपि नद्याः प्राच्यां प्रतिष्ठितः पश्चात् ॥ १३ ॥

भूमध्यसागरस्य प्राक्कृले वहति या नाम्ना ।

इवरिम नदीयमेवाब्राह्मो तां क्वचिदङ्गो निसं चाहुः ॥ १४ ॥

संवत्सरे कदाचिच्चलमब्राह्मया भवत्यस्याः ।

नद्या लोहितमचिरात् तत्र न जानन्ति कारणं केचित् ॥ १५ ॥

अब्राह्मो तु नदी या बालवकं नाम यद् भवनम् ।

क्रोशा विंशतिरन्योरनन्तरमस्तीह पश्चिमेऽस्ति नदी ॥ १६ ॥

उज्जयिनमध्यरेखापश्चिमदेशान्तरे स्थितं तदिदम् ।

चत्वारिंशप्राये धाम चतुस्त्रिंशकेऽक्षांशे ॥ १७ ॥

ऊनचत्वारिंशकेऽंशे सप्तविंशतिसाधिके ।

(३६ । २७ । भारतीयपश्चिमदेशान्तरे)

उज्जयिन्याः पश्चिमतः स्थानं बालवकं स्थितम् ॥ १८ ॥

तद् ग्रीनवीचस्तु प्राच्यां षट्त्रिंशके सपादंशे ।

(३६ । १५ ग्रीनविचपूर्वदेशान्तरे)

बालवकाख्यं सौरं सद्भाङ्गतमसुरनिर्मितं रेजे ॥ १९ ॥

तत्र च बालवकाख्ये भवने यं स्थापयामासुः ।

सूर्य्यमदेवाः सोऽपि च तत्रागारे तमोमये विवर्भौ ॥ २० ॥

ॐ देवाश्चक्रनुचरन् शालमसुरा आसन् । ते देवाश्चक्रेण चरन्त एतत्कर्मापश्यन्—(वनीव — हनम्) । तस्मादनन्तर एव पौराण्येण यजूर्पि—अनसोऽनौ—(शत० ६ । ५ । ५ । १)

पूर्वभारतस्य पश्चिमसीम्नि सूर्योऽस्तमिते पश्चिम भारतस्य पश्चिमसीम्नि
क्रिश्चिक्कालं सूर्यदर्शनम् ।

सूर्योऽस्ति यत्र दिशि तत्र भवन्ति देवास्तत्पृष्ठदिशुपनमन्त्यसुराः पृथिव्याम् ।
सूर्योऽसुराक्रमणातोऽस्तमितेऽथ पश्चात् तामासुरीं दिशमनृदयनेन मर्त्ये ॥ १ ॥
इयं वैज्ञानिकी संस्था नित्यं दृष्टाऽविदैवतम् ।
साम्यं तथाविभूतं च प्रकृतेहानुवर्तते ॥ २ ॥
असुरैः प्रत्याक्रमणात् सूर्यः सारन्वतो जगामास्तम् ।
भूमध्यसागरस्य प्राची कूले पुनः स उदियाय ॥ ३ ॥
स्वभावतः सूर्यः उदेति पूर्वतः प्रातः प्रतीचीं न हतोऽन्नमेति च ।
पुनः पुरस्तात् स उदेति चक्रवत् क्रमान् पुनर्भारतमेव एष्यति ॥ ४ ॥

भारतवर्षीयवैदिकधर्मस्योत्थानपतनयोर्द्वौ हेतुः ।

पश्चिमदेशीयसूर्योदयानन्तरं पुनः पूर्वदिशासूर्योदयः ।

अथ गान्धारे देशे क्षोभणतः क्षोभणादित्यम् ॥
 आर्य्याः क्षोभस्मृत्यै मार्त्तण्डं स्थापयामासुः ॥ १ ॥
 स्कान्दे प्रभासखण्डे कथितोऽयं शीलयाध्याये ॥ (१३६)
 ❀ चित्रादित्यस्तवने गान्धारे क्षोभणादित्यः ॥ २ ॥
 गान्धारे चित्रपथा चित्रा वा ब्रह्मकुण्डसंनिहिता ॥
 नद्यस्ति सुप्रसिद्धा प्रवृट्काले वहत्येषा ॥ ३ ॥
 चित्रादित्य इहासीच्चित्रेण स्थापितः सोऽयम् ॥
 चत्वारिंशशतेऽस्मिन्नध्याये (१४०) वर्णितः स्कान्दे ॥ ४ ॥
 कश्मीरे श्रीनगराग्निदिशि काव्यदूरवद्देशे ॥
 मट्टनसाहिबनाम्ना कुण्डः कोऽप्यास्त तीर्थमार्याणाम् ॥ ५ ॥
 तत्रैव पूर्वमासोदन्यन्मार्त्तण्डमन्दिरं तस्य ॥
 भग्नावशेषमद्य तु कौरवपाण्डवमिति प्रोक्तुः ॥ ६ ॥
 अर्चामन्दिरमेतन्न तु तद्विज्ञानमन्दिरं सौरम् ॥
 अनृपिभिरेव च जुष्टं तदपि यशःशेषतां यतम् ॥ ७ ॥
 अन्तर्हितोऽत्र सूर्योऽप्यभवत् काले स दस्युनिकृतत्वात् ॥
 स यथा राहुप्रस्तो दिवि सूर्योऽन्तर्हितो भवति ॥ ८ ॥
 विज्ञानकूप आसीत् तमिदानो चोह वाविलेत्याख्यम् ॥
 म्लेच्छा विदुरिह निगडवद्वी हारुतमारुतौ ॥ ९ ॥
 विज्ञानकुण्डमपि तं मटनेत्याख्यं वदन्ति ते म्लेच्छाः ॥
 वैज्ञानिकी व्यवस्था सर्वा विभ्रंसिताऽनार्य्यैः ॥ १० ॥

*चित्रादित्यं ततो गच्छेद् ब्रह्मकुण्डमपि ॥ तत्र गच्छेत्ततः पूर्वं नदीं चित्रपथामिषाम् ॥ १ ॥
 ब्रह्मकुण्डसमीपस्था चित्रादित्यस्य मध्यतः ॥ प्रतिष्ठा सागरे चित्रा नदी चित्रपथोच्यते ॥ २ ॥
 तस्मिन्कलियुगे सेयमन्तर्दानगता नदी ॥ प्रावृट्काले तु दृश्येत दुर्लभं तत्र दर्शनम् ॥ ३ ॥
 यदैव दृश्यते तत्र चित्रा चित्रपथा नदी ॥ प्रमाणदर्शनं तस्या न कालस्तत्र कारणम् ॥ ४ ॥
 मुक्तो वाऽप्ययवा मुक्तो रात्रौ वा यदि वा दिवा ॥ पूर्वकालेऽथवाऽकाले पवित्रो वाऽथताशुचिः ॥ ५ ॥
 तस्या स्नात्वा नरो यस्तु चित्रादित्यं प्रपश्यति ॥ स याति परमं स्थानं यत्र देवो दिवाकरः ॥ ६ ॥

[स्कान्दे प्रमासा ३६ अ०]

नीचप्रकृतिर्दस्युः परकीर्तिव्यसकृद् भवति ॥

प्रतिपन्थो जगतामयमकारण द्वेषमाचरति ॥ ११ ॥

नैदेशिकदस्युभिः परिपीडितानां भारतीयानां स्वदेशीयानामन्ततो विजयः ।

त्रेधा लोकं कल्पितऽयं यदामोदिन्द्रः स्वर्गे पूवकाले तदानीन् ॥

आसन्नस्मिन् भारत तर्हि विद्या शौर्यं लक्ष्यं सिद्धयश्चानवद्याः ॥ १ ॥

ब्रह्मवीर्यपरिवृद्धिहेतवः सूर्यसोमरसयत्रवेनवः ॥

क्लेशसिन्धुतरणाय सेवतं संहता अथ विधर्दधे नव ॥ २ ॥

क्षत्रियाय इह सूर्यसोमजा ब्राह्मणाय इह यज्ञमूत्रिणः ॥

विड्भ्रजा य इह धेनुगलकास्तेषु सन्ति विजया विजयः ॥ ३ ॥

ग्रन्थसंपूर्तिः ।

इतिवृत्तं सदसद्वा रजस्तथाऽऽकाशमपरं च ॥

आवरणं च तथाम्भोऽथामृतमृत्यु अशोरात्रौ ॥ १ ॥

दैव संशयवादः सिद्धान्तश्च श्रुताबुद्धिता ॥

द्वादशवाङ्गं विहिताः शास्त्रेऽस्मिन् ब्रह्मविज्ञाने ॥ २ ॥

तेष्वर्था विज्ञानेतिवृत्तवदे प्रकरणानि ॥ (५)

ब्राह्म दैवं भारतमार्प विज्ञानसूत्रं च ॥ ३ ॥

तत्र च भारतवृत्ते पञ्च निरुक्ताः परिच्छेदाः ॥

भारतपरिचय आद्यस्तथार्थदासोय इत्यन्यः ॥ ४ ॥

विज्ञानभवनसंज्ञो दस्युवयो विजयकीर्तनप्रमहः ॥

पञ्चप्रसङ्गमित्थं भारतवृत्तं शुभायानु ॥ ५ ॥

इति मधुसूदनविद्यावाचस्पतिप्रणीतस्य ब्रह्मविज्ञानतन्त्रसंग्रहस्य विज्ञानेतिवृत्तस्य
द्वितीयपर्वणि भारतवर्गीयार्थोपाख्यानं इन्द्रविजयाभिनन्दनं नाम पञ्चमः प्रक्रमः समाप्तः

मधुसूदनकृतमार्थविजयकाव्यं सम्पूर्णम् ॥



* शुद्धि-पत्रम् *



पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	६	अग्निलोक	अग्निलोक	११	२०	पार धानं	पारधानं
"	"	इन्द्रलोक	इन्द्रलोकः	"	"	पु तना	पुरतना
"	१४	वार्यमुवाः	स्वायमुवाः	"	२४	पठ न सना	पठेत्तन्निना
२	२१	भारतवर्ष	भारतवर्ष	"	२५	शपरिच्छेद पंथ	शपरिच्छेदपंथ
३	४	विष्टप	विष्टपं	"	"	अत्रापि	अत्रापि
"	२४	सम्प्रति	सम्प्रति	१२	११	भृहोद्दिशो	भृहोद्दिशो
४	१७	सर्व	सर्व	"	२३	तत्रान्वारिज्य-	तत्रान्वारिज्य-
"	३१	अस्माल्लोक	अस्माल्लोका			नागनेता	नागनेता
"	३३	लोक	लोक	१३	८	मच्छा	मच्छा
५	१२	ऋषभो	ऋषभो	"	१८	अत्रिदासि	अत्रिदासि
"	१६	ऋषभाद्	ऋषभाद्	१४	३	नन्दिन्या तु	नन्दिन्या तु
६	१	यमुनामनु	यमुनामनु	"	"	मूल्यादाय	मूल्यादाय
"	६	यत्वार्ष	यत्वार्ष	"	२३	यैर्ज्ञा	यैर्ज्ञा
"	१५	(३०)	(३३)	१५	१०	निजिन नाना	निजिन नाना
७	८	समुद्रैर्व्यमा	समुद्रैर्व्यमा	"	१५	कानिद्या	कानिद्या
"	६	ऋग्वेदस्य	ऋग्वेदस्य	१६	१	निजिने	निजिने
"	७	देवेमर्भानुपे	देवेमर्भानुपे	"	२०	मौद्रान्ता	मौद्रान्ता
"	८	सप्तमानुप	सप्तमानुप	"	२५	देवदत्त	देवदत्त
"	१२	विश्रपति	विश्रपति	१८	४	गन्तव्य	गन्तव्य
"	१४	यत्तेधीति	यत्तेधीति	२०	"	निर	निर
६	२०	हिन्दुस्तान दागत	हिन्दुस्तानदागत	२१	१८	महान्त	महान्त
११	४	अनयोरति	अनयोरति	२४	२०	न निजि	न निजि
"	१६	सिन्दुस्थानाख्य	सिन्दुस्थानाख्य ।	२५	२	इन्द्र	इन्द्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२५	१५	रुत्तजितेन	रुत्तेजितेन	३६	२२	द्विभवम्	विभवम्
"	१८	वृद्धानं	वृद्धानां	४०	१०	उपश्रित	उपश्रित
"	२२	अप्राथितः	अप्राथितः	"	१३	परक्शोद्धूतं	परक्शोद्धूतं
२६	५	तस्मिन्निन्द्रभटा	तस्मिन्निन्द्रभटा	"	"	तत्कालजे	तत्कालजं
"	२३	अनिद्रा	अनिद्रा	"	२२	वर्षित्रे	वर्षित्रे
२७	१८	वैरिभक्तः	वैरिभक्तः	"	"	भत्रे	भत्रे
२८	१६	वलजाता	वलजात	"	२४	अन्नवर	अन्नवन्
३०	२४	सरन्त्वो	सरन्त्वो	"	"	क्वः	क्व
३१	२२	अपस्वर्गि	अपस्वर्गि	"	"	उपगनः	उपगतः
"	२३	प्रयंक्ष्व	प्रयुंक्ष्व	४१	४	सिद्धो	सिद्धौ
"	"	निरूपण	निरूपणम्	"	८	पस्पशरिन्द्रा	पस्पशरिन्द्रा
"	"	प्रवर्ग्याय	प्रवर्ग्याय	"	१८	उपेमस्थुर्जोष्टार	उपेमस्थुर्जोष्टार
"	२४	अपूवेपुः	अपूयेपु	"	२१	विप्रस्य	विप्रस्य
३२	१	नवीनवारं	नीवीनवारं	४२	२	सुष्टुति	सुष्टुति
३३	२०	यानिस्थाना	यानिस्थाना	"	६	सूर्यमैरय	सूर्यमैरयतं
"	२३	सौभाग्ययाय	सौभाग्यस्य	"	७	मायितो	मायिनो
३४	१४	पूर्णं शक्त	पूर्णयशस्कं	"	१८	अग्नेरिहापि	अग्नेरिहापि
"	१७	प्रोच्चारयः	प्रोच्चारय	४६	५	पद्म	पद्म
३५	६	वृद्धिवाद्या	वृद्धिवाया	"	८	पद्म पुराणेषु	पद्मपुराणेषु
३६	२०	प्रविषं	प्रशिषं	"	१८	याम्यायां	याम्यायां
"	२६	स्तमितं	स्तभितं	४७	१७	कशेरुभास्ताम्रपर्णो	कशेरुभास्तम्रपर्णो
३७	६	देवेष्वधि	देवेष्वधि	४८	८	कसेरु	कसेरुः
"	७	दिव	दिवं	"	२४	दधिकशोत्तरा	दधिकदशोत्तरा
"	१५	स्त्रिमात्रा	स्त्रिमात्रा	४९	१८	भारतीयत्वं	भारतीयत्वं
"	१६	राचित	राचितं	५०	१२	भावात्	भावात्
३८	१	सीमाभिषवार्थ	सीमाभिषवार्थ	"	"	भारतीयत्व	भारतीयत्व
३९	१२	काले	काले	५१	१४	प्रतिज्ञाय	प्रतिज्ञाय
"	२०	द्विमोचयतु	विमोचयतु	"	१६	व्यवहृता	व्यवहृता
"	२१	करणेश्व च	करणे न च	"	२०	द्वेधाः	द्वेधा

पृष्ठ पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५१	२१ लक्ष्मिमा	लक्षिता	६५	११ धारावगाह	धारावगाह
"	२२ गान्धारणां	गान्धारणां	"	२२ तू	न
५२	५ अथोत्तर	अथोत्तर	"	२३ तूरात्पत्र	तूरास्तत्र
"	" इत्येव	इत्येवं	६७	२२ रथाग्रयम्	रथाग्रयम्
"	२४ विजयानापशु	विजयानाशु	"	२४ नोभिनत	नाभिनन्
५३	२५ मार्कण्डेयो	मार्कण्डेयं	६८	१० निम्मितान्धा	निम्मितान्धा
५४	६ पर्वता	पर्वता	"	११ अद्भुताया	अद्भुताया
"	१३ वासिम्य	वासिभ्यः	६९	३ इलाहृत्तता	इलाहृत्ता
"	१५ नापलपितं	नापलपितं	"	५ तेन	तेन न
"	१७ केचम	केचन	"	७ देवेद्विभि	देवेद्विभि
"	२४ ऋजिश्च	ऋजिश्च	"	८ मर्त्य	मर्त्य
"	" भगजातीय	भगजातीय	"	२२ स्कारान्द	स्कारान्द
५५	१० ऋग्वेदोऽथ	ऋग्वेदोत्थ	७०	४ ब्रीलादिषु	ब्रीलादिषु
५६	६ भारतस्थ	भारतस्थ	"	६ दश	दश
"	१५ लाहित	लोहित	७२	१४ सिन्धुत्यानय	सिन्धुत्यानय
"	२७ क्रस्मात्	कस्मात्	७४	१७ द्वीपानदिष्ट	द्वीपानदिष्ट
५७	६ श्रुतेर्हेलिरयं	श्रुतेर्हेलिरय	"	१९ इन्द्रशुन्नेदगो	इन्द्रशुन्नेदगो
"	१८ चक्र	चक्र	७५	८ ऋषभा	ऋषभा
"	२८ वर्षपूर्वा	वर्षपूर्वा	"	१३ ययार्य	ययार्य
५८	३ प्रत्यत	प्रत्यन्त	"	१८ प्रस्वीना	प्रस्वीना
"	१७ इत्येव	इत्येव	७७	८ स्मर्यते	स्मर्यते
६०	१७ ऋषिवत्	ऋषिवत्	"	१७ रावणराज	रावणराज
६२	११ सर्वत्र	सर्वत्र	"	२३ भारतीय	भारतीय
"	१४ स्यान्नो	स्यान्नो	७८	७ माय	माय
"	१८ वरुद्धो	वरुद्धो	"	१९ धर्मार्थ	धर्मार्थ
६३	१२ भूमीस्पृक	भूमिस्पृक	"	१३ अन्तर्गत	अन्तर्गत
"	२१ स्थातं	स्थातुं	"	१८ अन्तर्गत	अन्तर्गत
"	२६ दन्वेजाज्ञो	दन्वेजाज्ञो	"	२० देवप्रसिद्ध	देवप्रसिद्ध
६४	२६ अयसै	अयसै	"	२१ अन्तर्गत	अन्तर्गत

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७६	२	भारतवर्ष	भारतं वर्ष	"	"	कण्ठस्यसुष्ठु	कण्ठस्यसुष्ठु
"	१०	एघ	एव	६०	६	ऋषिः	ऋषिः
"	२१	इत्यवश्यं	इत्यवश्यं	"	६	खरोष्ट्री	खरोष्ट्री
८०	६	दीव	दीवा	"	१३	मतानुगा	मतानुगा
"	११	प्रात्ता	प्रान्त	"	१४	भ्येत्य	भ्येत्य
८१	१०	अशक्नुवन्सस्ते	अशक्नुवन्सस्ते	"	२४	वामार्ति	वामार्ति
"	१६	तद्वल	तद्वल	"	"	जन्मदी	जन्मदी
"	२३	कालेनी	कालेनो	६१	१०	पुरातनेके	पुरातने काले
"	२७	दीवादि	दीवादि	"	१८	सिपयो	लिपयो
८२	१२	यार्थ्य	यार्थ्य	"	२७	तुसं हिता	तु संहिता
"	२२	भेदाः	भेदः	६२	५	राजशोकात्	राजाशोकात्
८३	२	खिधा	खिधां	६३	५	देशानो	देशाना
"	४	पःणिने	प्रणिनेः	"	८	सर्वमानवाः	सर्वमानवाः
"	"	समथे	समथे	"	११	ज्ञानं	ज्ञानं
"	६	द्रचलिता	प्रचलिता	६४	१६	प्रपीडिता	प्रपीडिता
"	७	मुच्छेदादुच्छि	मुच्छेदादुच्छि	"	२४	विभति	विभति
"	२३	वाक्	वाक्	६४	८	भरत	भारत
"	२४	त्वनौ	त्वानौ	"	१३	धर्मा	धर्मा
८४	१२	हैन्दवी	हैन्दवी	"	२	शान्ति	शान्ति
८६	७	दृष्टि	दृष्टिः	६५	१	योगा	योगा
८८	४	विलिखेन	विलिखने	"	११	यजयेत	यजेत्
"	७	कस्या	कस्या	"	१२	धनाढ्य	धनाढ्ये
"	"	चिच्छायां	चिच्छायां	"	१६	शुक्तनया	शुक्तनया
"	१२	विष्टारपंक्ति	विष्टारपंक्ति	"	१८	ब्राह्मणो	ब्राह्मणो
"	१५	वाङ्मय	वाङ्मय	"	१६	स्वराजो	स्वराजौ
"	१६	बृहस्पति	बृहस्पति	"	२१	अनयोरपि	अनयोरपि ब्रह्म
८९	४	कुत्स	कुत्स	"	२४	ब्रह्मत्वं	ब्रह्मत्वं
"	१६	हरिभरूप	हरिभरूप	"	२५	प्रातपन्थि	प्रातपन्थि

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६५	२६	ज्ञात्र	ज्ञात्र	१०२	८	वर्षेऽपि	वर्षेऽपि
"	"	च्युतो	च्युतो	"	१८	विरुन्मय	विरुन्मय
"	२७	यितु	यितुं	"	२२	विज्ञानागौर्य	विज्ञानागौर्य
"	"	विप्रति	विप्रति	"	२५	वाच्या	वाच्या
६६	१	तहि	तर्हि	१०३	५	धर्म	धर्म
"	"	च्युतो	च्युतो	१०४	४	प्रवर्तते	प्रवर्तते
"	"	धर्म	धर्म	"	"	वोर्व्य	वोर्व्य
"	३	मण्डल	मण्डलं	"	५	प्राणेत्या	प्राणेत्या
"	६	गृहीतारस्वेते	गृहीतास्त्वेते	१०५	११	वेदित्स्मिद्धे रानति	वेदित्स्मिद्धे रानति
"	७	समाजामा	समाजात्मा	"	१२	विप्रभेदा	विप्रभेदा
"	१४	प्रतिस्विक्को	प्रतिस्विधो	"	१५	प्रगर्भाय	प्रगर्भाय
"	२१	तीर्थाप्रयाणां	तीर्थाप्रयाणां	"	"	जिग	जिग
६७	१६	जीवन्निव	जीवन्निव	"	१८	मौमाना	मौमाना
"	२०	ध्रुवं	ध्रुवं	"	२२	जगन्निनि	जगन्निनि
"	२३	विकर्म	दुःखप्राप्त्यै विकर्म	"	२३	गुरुगुरुं	गुरुगुरुं
"	२७	भारतीयै	भारतीयैः	"	२५	विप्रभेदा	विप्रभेदा
६८	४	सर्वमपीदं	सर्वमपीदं	१०६	६	जगन्निनि	जगन्निनि
"	८	सर्वो	सर्वा	"	१३	पंखीचा	पंखीचा
६९	१६	घनिष्ट	घनिष्ट	"	१५	पुराणनिनि	पुराणनिनि
१००	६	हेतु	हेतु	"	१६	नतिना मृग	नतिना मृग
"	१३	शय्यं	शय्य	"	१६	धनुः	धनुः
"	१७	धनेना	धनेन	"	"	गान्ध	गान्ध
"	२२	धनोन्नतेनि	धनोन्नतेनि	१०७	१०	निनि	निनि
"	२४	सर्वो	सर्वा	"	२३	जगन्निनि	जगन्निनि
१०१	१	धनोन्नतिर्भूत	धनोन्नतिर्भूत	१०८	२५	जगन्निनि	जगन्निनि
"	"	वास्तविकी	वास्तविकी	"	२६	जगन्निनि	जगन्निनि
"	१२	त्याद्वन	त्याद्वन	१०९	३	जगन्निनि	जगन्निनि
"	१४	सुपैत्य	सुपैत्य	"	४	जगन्निनि	जगन्निनि
"	२०	मान्ना	मान्ना	"	१३	जगन्निनि	जगन्निनि

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०६	२२	भावद्धनम्	भारवद्धनम्	११६	१८	दुर्वोत्थया	दूर्वोत्थया
"	२५	राक्षसै नुत्थाप्य	राक्षसैरनुत्थाप्य	"	१९	संज तां	संजप्तां
११०	४	पनाधारेण	पवनाधारेण	"	२१	कविस्व	कवित्व
"	"	सुल्ललघे	सुल्ललंघे	"	२२	दैवष	दैव
"	५	त्यत्र	न्यत्र	"	२३	व्यूहः	व्यूहः
"	११	मनोवृत्त्य	मनोवृत्त्य	"	२७	सवेदनाच्च	संवेदनाच्चद
"	१७	रौधित	रोधित	११७	१	शंकराचार्या	शंकराचार्यो
"	"	तरये	तस्यै	"	३	वेनस्य	वेनस्य
१११	२	नवासौ	नैवासौ	"	"	उन्मार्ग	उन्मार्ग
"	१५	ननुमत्स्यो	मनुमत्स्यो	"	४	योऽपजह्नु	योऽपजह्नुः
"	२४	अतिता	अतीता	"	५	संधनम्	सन्धानम्
"	"	चिरकाल	चिरकाला	"	८	पयामास	पयामास
११२	१४	वेदव्य स	वेदव्यास	"	९	परित तो	परितप्तो
"	१५	ष्टय	ष्टाय	"	१८	ब्रह्मवंध्या	ब्रह्मवंध्या
"	२७	यंकल्प	संकल्प	"	२१	पृष्ठ	पृष्ठ
११३	६	प्रजापत्य	प्राजापत्य	११८	६	मप्यैव	मप्यत्रैव
"	१३	लोकं	लोका	११९	६	स्त्रीण	स्त्रीणां
"	२७	अतं	अयं	"	१६	तहावलाः	महावलाः
११४	४	कतिचिद्	कंचिद्	१२०	१	ओषधिः	ओषधिः
"	८	किं	किं	"	४	परिस्तु	परित
"	१४	मवलुञ्चयाग्नौ	मवलुञ्च्याग्नौ	"	"	पस्तीर्य	पस्तीर्य
"	१५	जटकारा	जटाकारा	"	१४	क्षय्य	क्षय्य
११५	३	मुनि	मुनि.	"	२३	युधिष्ठिरं	युधिष्ठिरं
"	६	सभासद्भ्या	सभासद्भ्यो	"	२५	न्मात्रेणैक	न्मात्रेणैक
"	१५	कातरया	कातराया	"	"	तपिते	तपिते
"	"	स्तस्या	स्तस्याः	"	"	मात्यनां	मात्मनां
"	२०	निविषादः	निर्विषादः	१२१	४	दृष्ट्वायान्तं	दृष्ट्वायान्तं
११६	२	तयो	तयो	"	२१	कण्टेऽथ	कण्टेऽथ
"	१०	मध्ये	मध्ये	१२२	६	द्वारानुग्रह	द्वारानुग्रहं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२२	१२	लक्ष्मणादी	लक्ष्मणादी	११५	६	सुवर्ण	सुवर्ण
"	२२	मूढ छनया	मूर्च्छनया	"	११	महोष	महोष
"	"	नश्रीम	नश्रीय	"	२३	द्वये	द्वये
"	२५	नदी	नदी	१२६	१	दक्षिण्ये	दक्षिण्ये
"	२८	विराम	विरामनिषेध	१२७	४	बृहक्ति	बृहक्ति
१२३	२	भृतम् ।	भृतम् ।	"	२६	बधाय	बधाय
"	६	आमासीय	आगामीय	१२८	४	त्कारं	त्कारं
"	११	महोषधि	महोषधि	"	५	द्रालगो	द्रालगो
"	१४	कचः	कचः	"	१३	निपुणैर्निमित्तं	निपुणैर्निमित्तं
"	१७	पुनश्चैत	पुनश्चैत	"	२०	पक्षित्पम	पक्षित्पम
"	२१	तानाज्ञां	तानार्ता	"	"	ऋभुमि	ऋभुमि
"	२४	विज्ञानन्ति	विज्ञानन्ति	१२९	१	कर्म	कर्म
"	२७	तत्र	तत्र	"	७	प्रयोगादि	प्रयोगादि
१२४	३	महोषधि	महोषधि	"	१४	एके	एके
"	"	मिहामय	मिहानय	"	१५	संभवम्यत्र	संभवम्यत्र
"	४	विशल्यक	विशल्य	"	२२	पुनपन्नुत्त	पुनपन्नुत्त
"	५	संधानी	संधानी	१३०	४	यज्ञान	यज्ञान
"	६	लक्ष्मणस्थ	लक्ष्मणस्थ	"	२०	प्रीपय	प्रीपय
"	"	त्वमानय	त्वमानय	३१	१	वीर्य	वीर्य
"	८	ददो	ददी	"	१७	न्याट	न्याट
"	९	गंधमाग्राय	गन्धमाग्राय	"	२३	वायने	वायने
"	१२	महोषधिः	महोषधिः	"	२५	देवदेवेन	देवदेवेन
"	१७	ऋषिः	ऋषिः	१३२	२	प्राप्तेर्गति	प्राप्तेर्गति
"	१९	प्रीगाति	प्रीवाति	१३३	१९	निर्गन्तव्य	निर्गन्तव्य
"	"	शस्त्र	शस्त्र	"	२४	प्रेतपुत्रा	प्रेतपुत्रा
"	२१	चिदभिप्रियः	चिदभिप्रियः	१३४	१०	निपुणपद	निपुणपद
"	२३	शिश्ने	शिश्ने	"	२०	निर्गन्तव्य	निर्गन्तव्य
"	२४	कृत्वाशिरः	कृत्वाहयशिरः	१३५	१	नन्दन	नन्दन
"	"	संयोज्य	संयोज्य	"	१३	कर्मरूपोः	कर्मरूपोः

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२१	२५	सशतघ्ना	सशतघ्नी	६	१४	चक्रेऽसौ	चक्रेऽसौ
१३६	१७	कासः	कासूः	"	१८	स्वर्ग-	स्वर्ग
१३७	५	क्वा	क्व	१०	१८	यो-य-	योऽयं
"	६	हस्तेः	हस्तैः	१२	१	चावन्न	चार्वन्न
"	१०	मौष्ण्यं	मौष्ण्यं	"	२४	देवनि	देवान
"	१६	भारतवर्षे	भारतवर्षे	१६	१	पुरोहित	पुरोहित
"	१६	वीर्या	वीर्या	"	४	स्वार्थेक	स्वार्थैक

❀ द्वितीय प्रकरण ❀

— आर्यदासीयाख्यः । —

१	७	धेनुर्गङ्गा	धेनुर्गङ्गा	"	२६	इत्येतरस्य	इत्येतरस्य
"	११	पूर्वाऽस्या	पूर्वाऽस्या	"	"	ब्राह्मणस्य	ब्राह्मणस्य
२	१२	पाणि	पाणि	२१	६	प्राधिनिध्येन	प्रातिनिध्येन
"	१८	वर्णितं	वर्णितं	"	१३	नीति	निति
"	२०	यदुपोद्वल	तदुपोद्वल	"	२३	वित्तस्य	वित्तरस्य
"	२६	भूयसास	भूयसासन्	२२	१	ज्योतिर	ज्योतिर-
३	४	प्रत्रौकस्तद्	प्रत्रौकस्तद्	"	१८	प्रतिरन्त्र	प्रतिरन्त
"	१८	प्राचमेपां	प्राचामेपां	२३	६	चतुर्विंशति	चतुर्विंशति-
४	२	अखिला	अखिला	"	१२	वितस्तो	वितस्तो-
"	१७	पाणिभि	पाणिभि	"	१८	वादुः	स्वादुः
५	१	माय्यैः	माय्यैः	२४	४	सोक	सोम-
"	१४	गीडु	वीडु	"	२३	महान्त	महान्तं
"	२२	निषेदु	निषेदुः	२५	४-	कहा	महा
६	१०	विदुनोति	विदुनोति	"	६	यप्रारयन्त	दपारयन्त
"	२६	रात्रि	रात्रि	"	६	निमित्त	निमित्त
८	२	गन्तं	गन्तुं	२६	१२	युध	युधि

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२६	१३	गणानुत्सव	गणानुत्सव	३५	७	विधं	विधं
"	२४	गुह्यकर	गुह्यकर	"	१०	क्रध्यन्नवोषत	क्रुध्यन्नवोषत
२७	३	हरो	हीरो	"	११	च्छावयितुं	च्छावयितुं
"	२३	घोरो	घोरा	"	१२	व्यतकयन्	व्यतर्कयन्
"	"	द्रहश्च	द्रुहश्च	"	१६	त्वष्ट	त्वष्टु
"	"	योद्धं	योद्धुं	"	२१	यश्चयम	यश्चम
२८	४	कुयव	कुयव	"	२३	प्रोत्सनाहाय	प्रोत्सनाहय
"	७	सर्व	सर्व	३६	६	वाहनानी	वाहनानि
"	६	पर्वता	पर्वता	"	२३	गिल्हानी	गिल्हानि
२९	५	इम	इम	३७	८	प्रवाचन	प्रवाचन
"	८	प्रचर्या	प्राचर्या	"	१५	यदेया	यदेय
"	१७	वनये	वर्णनये	३८	२४	द्वधीचो	द्वधीचो
"	२०	समन्वे त	समन्वेति	"	२६	र्ध्या	र्ध्या
३०	१	हिरण्यावतीम्	हिरण्यवतीम्	३९	५	त्यर्ग	त्यर्ग
"	"	सुवास्तं	सुवास्तु	"	७	परनिष्ठि	परनिष्ठि
"	१२	राय्याणाम्	राय्याणाम्	"	१०	देय न	देय
"	१८	मितिहासीत्	मिहासीत्	"	१३	पृष्टांश्च	पृष्टांश्च
३१	८	सीमाचतुष्टयी	सीमाचतुष्टयी	४०	५	पाददेन	पाददेन
"	११	मध्यग	मध्ये	"	१२	भनर्द्धन	भनर्द्धन
"	१८	सीमाचतुष्टयं	सीमाचतुष्टयं	"	१३	कृतकनद	कृतकनद
"	२५	भारतवर्षे	भारते वर्षे	"	१४	नाम देय	नाम देय
३२	१५	भारत	भारत	४१	१	यत्न	यत्न
"	२०	युद्ध	यद्ध	"	६	यो रक्षितार	यो रक्षितार
३३	६	व्रचते	व्रचते	"	१५	वर्धनी	वर्धनी
"	१४	श्रुतर्थाद्यैः	श्रुतर्थाद्यैः	"	२६	नन्तर्गत	नन्तर्गत
"	२५	ध्वंसन्ति	ध्वंसन्ति	४२	३	देव	देव
३४	११	कानत्रिने	कानत्रिने	"	५	मनुजान	मनुजान
"	२५	त्वष्टुः	त्वष्टुः	"	१०	ने	ने
"	"	रुपा	रुपो	"	१६	शक्तिरूपे	शक्तिरूपे

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
"	२०	अहमिमा	अहामिमा
४३	२	घत्त	घत्त
"	८	एक	एकं
"	१३	कर्त्त	कर्त्त
"	१८	संभृभिः	सभृभिः
"	२३	परिवर्तते	परिवर्तते
"	२७	अभगन्म	अभवन्
४४	१	निश्चर्मणो	निश्चर्मणो
"	६	रायत्पोषं	रायत्पोषं
"	८	विषश्चित	विपश्चित
"	१५	घृत	घृत
"	१६	पीत्रो	पीत्रो
४५	१२	ऽयमासीत्	ऽयमासीत्
"	१५	वासाकार्षुः	वासानकार्षुः
"	१८	त्पूर्वनेवात्र	त्पूर्वमेवात्र

❀ तृतीयप्रकरण ❀

—विज्ञानभवनम्—

४७	६	वेत्तं	वेत्तुं
"	२३	स्तप्सर	स्तत्सर
४८	२	तस्य	तस्या
४९	२७	गयः	स्यः
५०	१६	मिपातोत्र	निपातोत्र
"	१८	यास्तंभावे	थास्तंभावे
५१	३	द्वे	द्वे
"	१०	सोते	सोम
५२	१	गर्भो	गर्भा
"	२१	पदार्थाः	पदार्थाः
५३	१५	ऋग्वेद्	ऋग्वेद्

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५५	१६	लम्पटस्येति	लम्पटस्येति
"	२३	छद्धाना	छद्धाना
५८	१२	वह्व्यः	वह्व्यः
५९	१६	पूर्ण	पूर्ण
"	२०	सौभगम्	सौभगम्
६०	६	वर्णा	वर्णाः
"	"	याजसो	पाजसो
"	१५	वियाजो	विपाजो
"	१६	ऋतावरी	ऋतावरी
"	१६	पुरत्रा	पुरत्रा
६१	१६	केपुरुषसः	केतुरुषसः
"	१७	वदुला	वदुला
६१	१०	यूय	यूयं
"	२३	सषितेव	सषितेव
६३	२	यूयं	यूयं
"	१८	भुनजामहै	भुनजामहै
६५	२३	तमसाप	तमसाप
"	२४	विषुरूपे	विषुरूपे
"	२६	सदृशीरिदु	सदृशीरिदु
६७	८	व	व
"	११	परीहरणम्	परोहरणम्
"	२२	मार्गयामास	मार्गयामास
५०	६	मनुष्य	मनुष्य
७२	१५	इतिमा	इतीमा
"	२०	विष्टपस्तत्र	विष्टपस्तत्र
"	२२	धरुणाख्य	धरुणाख्य
७३	४	मही	मही
"	"	सूर्य्येण	सूर्य्येण

❀ चतुर्थ प्रकरण ❀

— दस्युनिग्रह —

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७६	१४	कृष्णा	कृष्णा
"	१५	नौम्यो	नौभ्यो
"	२१	च	स
८०	२४	सर्वदुष्ठां	सर्वदुष्ठां
८४	११	स्थिरम्	स्तिरम्
"	१४	अत्वा	आत्वा
"	"	शेष्या	शेष्या
"	१७	पत्यते	पत्यते
"	१८	दसना	दसना
"	२०	त्वं	त्वं
"	"	वधैः	वधैः
"	२२	प्रतित्वे	प्रापत्वे
८३	१३	गव्य	गव्या
८४	२	न किहि	नकिहि
"	११	पपासो	प्यपासो
"	१२	यदिन्विन्द्र	यदिन्विन्द्रं
८५	२	द्वियं	द्विदयं
८६	२१	तन्मध्यादिपु	तन्मध्यादिपु
८८	१६	वर्णन्	वर्णम्
९०	१६	वृत्रहा	वृत्रहा
९३	१७	अस्माकेभिन्नृभि	अस्माकेभिन्नृभि
९४	२३	च	वद्वोदाना मार्गं च
९५	६	नरुयन्	नरुयन्
९७	६	भवन्तत्तो	भवन्तरत्तो
"	६	म्रज	म्रज
९८	२०	शबलस्यते	गजन्मस्यते
९९	२	दावा	दावा
"	८	प्रवर्णो	प्रवर्णो

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१००	६	दगिदुसा	दगिदुसा
"	६	दगि	दगि
१०२	८	निम्य	निराम्य
"	१६	साहय्येन	साहाय्येन
"	२३	वक्षयो	वक्षयो
१०३	२	विवर	विवरं
"	१०	दष्टा	दष्टा
१०४	१२	श्रुण्ण	शुष्ण
"	२१	निर्हृत्य	निर्हृत्य
"	२२	पुरिताः	पुरिता
"	२७	यासानो	यत्मानो
१०५	१२	उमोऽक्तं	उमोऽदनुतं
"	२७	प्रशसन्	प्रशंसन्
१०६	२	मान्यि	मान्यि
१०७	११	मृद्धः	मृद्धः
"	१२	जोरदानवे	जीरदानवे
१०८	१७	दल	दलं
११०	३	प्रत्यष्टोपि	प्रत्यष्टपि
"	११	दुप्युग्धं	दुप्युग्धं

❀ पञ्चम प्रकरण ❀

—:विजयाभिनन्दनम्:—

१११	११	दीनयित	दीनयित
११३	६	न	न
"	२८	प्रमज्जतां	प्रमज्जतां
११४	१७	दग्ना	दग्ना
११५	१०	उदभरन्ते	उदभरन्ते
"	१३	मूर्ध्नि	मूर्ध्नि
"	१६	त्यदुदय	त्यदुदय
"	"	सुदय	सुदय

पृष्ठ पंक्ति अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ पंक्ति अशुद्ध	शुद्ध
११७ १७ सूक्तान्य	सूक्तान्या	" २४ दुन्दु	दुन्दु
११८ ११ तस्मै	तस्मै	" २५ केन्द्र	केन्द्र
११९ ६ वज्रो	वज्री	१३७ ६ नेतदुत्कर्षम्	नेतदुत्कर्षम्
" ११ अहन्नहि	अहन्नहि	" ६ तत्र	तत्र
१२१ ५ आनाय्यानाम्	आनाय्यानाम्	" १८ वेवेन्द्र	देवेन्द्र
" ६ अभिसिध्यो	अभिसिध्यो	१३८ १२ मिवेमहे	मिवेमहे
१२२ १४ सूर्य	सूर्य	" २१ शत्रुरिन्द्र	शत्रुरिन्द्र
" २१ निरुन्धानो	निरुन्धानो	" २३ ज्वं	ज्वं
" २७ त्माविथ	त्वमाविथ	१३९ ४ विदन्तो	विदन्तो
१२३ २७ आपवृणो	आमावृणो	" १७ समद्वाजं	समद्वाजं
१२४ ६ इवध्नीय	इवध्नीय	१४० ६ स्पति	स्पति
" १४ रजमानं	यजमानं	" १४ ग	ग
१२५ १ वोचम्	वोचम्	१४३ १२ ध्रुवं	ध्रुवं
१२६ १० प्रवर्त	प्रवर्त	" १५ धर्म	धर्म
१२८ १३ यद्दृष्टा	यद्दृष्टा	" १६ च्छाययन्	च्छाययन्
" २० नियऽसी	नित्यसी	" १६ धर्म	धर्म
" २७ पर्वता	पर्वता	" २३ ध्रुवं	ध्रुवं
१३१ १ अदद्	अदद्	१४४ २२ समपितः	समीपतः
" ४ अहिं	अहिं	" २६ वाऽथता	वाऽथता
" ८ हर्म्य	हर्म्य	१४५ १५ तेष्वाद्ये	तेष्वाद्ये
" २२ यद्वनागानुपम	यद्वनमानुपम	" २१ शास्त्र	शास्त्र
१३६ २३ प्रेषित	प्रोषित		

॥ इतीः ॥



